लेखिका

लीलावती मुंशी

किताब महल

इलाहाबाद

प्रथम संस्करण
१९५२
अनुवादक
शिवचंद्र नागर एम० ए०
संशोधक
सत्यनारायण व्यास
आवरण चित्र
हरिदास चाटुर्ज्य
प्रकाशक
किताब महल
इलाहाबाद
मुद्रक
ए० डब्ल्यू० आर० प्रेस, इलाहाबाद

मेरे जीवन में

पिता जैसा प्रेम

रखनेवाले

और

रस लेनेवाले

मु० लल्लु काका को

निवेदन

भिन्न-भिन्न समय पर लिखे हुए रेखाचित्रों का यह संग्रह भाई जीवन-लाल के प्रयास से इस समय इस रूप में प्रकाशित हो रहा है। इन रेखाचित्रों के विषय में एक बात स्पष्ट रूप से कह देना आवश्यक हो जाता है। जब-जब ये रेखाचित्र लिखे गये तब और आज के बीच काफी समय का अंतर पड़ गया है। जिनके विषय में ये लिखे गये थे, उनमें से अनेकों के जीवन में भी परिवर्तन—कितने ही व्यक्तियों के विषय में तो महान् परिवर्तन—हुए हैं। फिर 'धारा सभा में दो दिन' जैसे उड़ते चित्र तथा घटनाएँ देखने का शीशा भी हमने बदल दिया है। बहुत सी घटनाओं और लोगों के विषय में जो उस समय कहा गया वह आज नहीं कहा जा सकता। पर उसके दो कारण हैं। एक तो ऊपर बताया मेरा—हम सब का—व्यक्तियों तथा घटनाओं की ओर देखने का दर्पण बदल गया है और दूसरे मनुष्य की जैसे वय बढ़ती है और शरीर के अवयवों की रेखाओं में घट बढ़ होती है उसी प्रकार इसमें चित्रित व्यक्तियों की रेखाओं के विषय में भी हुआ होगा—हुआ है। बहुतों की रेखाओं में, यदि मैं आज लिखूँ तो बहुत फेरफार करनी पड़े, ऐसा मुझे लगता है। पर मैंने इन मूल लेखों में परिवर्तन नहीं किया; क्योंकि जिस समय ये लिखे गये थे उस समय की रेखाओं का प्रतिबिम्ब ये ठीक प्रकार से व्यक्त करते हैं, यह मेरी धारणा है। उस समय की रेखायें ग्रहण करने की मेरी शक्ति-मर्यादा का भी इसमें पता लगता है। यह बात स्पष्ट करने के लिये ठीक समयानुसार विभाग भी इसीलिये किये गये हैं।

तदुपरांत लेखों की भाषा में निहित त्रुटियाँ, उस-उस समय की मेरी भाषा के प्रतिबिम्ब रूप हैं और वे भी मैंने ज्यों के त्यों सीमा-चिह्न के रूप

में रहने दिये हैं। फिर मैं लिखूँ तो मेरी भाषा की उन्नति या अवनति की माप इन्हीं से आत्म-परीक्षण के लिए निकाल सकूँ, ऐसी धारणा इसमें समाहित है।

ये तथा और दूसरी जो त्रुटियाँ दिखाई दें उसके लिए पाठक सद्भाव-पूर्वक क्षमा करेंगे, ऐसी आशा रखती हूँ।

—लीलावती मुन्शी

विषय सूची

प्रथम भाग

दूसरा भाग

जीवन चित्र

तीसरा भाग

स्व० अमृतलाल पढ़िआर

बचपन में पढ़िआर के कितने ही 'स्वर्ग' पढ़े थे और तभी अनेक कल्पनायें की थीं कि इन 'स्वर्गों' का स्रष्टा कैसा होगा ? पर जब चोरवाड़ गाँव में अतिथियों के लिए बिस्तर का प्रबन्ध करने के लिए हाथ में लालटेन लेकर इधर-उधर फिरते हुए वृद्ध को देखा, उस समय तो यह तनिक भी न सूझा कि यही पढ़िआर होंगे, बल्कि उस वृद्ध को देखकर अपने दादा के यहाँ बचपन में देखे हुए छोटेलाल मुनीम याद आये। इस सूखी हुई देह में बसी हुई सुन्दर आत्मा से परिचय प्राप्त करने का सौभाग्य तो फिर प्राप्त हुआ।

चोरवाड़ में हम चार दिन तक श्री नानालाल कवि के मधुर आतिथ्य का अनुभव करते रहे, पर इस मीठी मेहमानदारी में यदि हमने बाबाजी की सुन्दर बातें तथा 'ॐ' की ध्वनि न सुनी होती तो बहुत कुछ खो दिया होता।

इनमें एक वृद्ध का विवेक और वैराग्य, युवा की रसिक वृत्ति और बल; बालक का-सा उत्साह और आनन्द छलके पड़ते थे। चोरवाड़ की पान की बेलों में उलझाते, कुएँ और तालाबों में नहलाते, बड़ की लटकती हुई शाखों पर कुदाते बगीचे में घुमाते हुए, पूर्णिमा की रात्रि में समुद्र के रसगीत सुनाते और छत पर कवि ललित के भजनों का रस चखाने वाले के संसारी होने पर भी असंसारी के संस्मरण बहुत समय तक बने रहेंगे। सुन्दरता इनके प्रत्येक शब्द से छलकी पड़ती थी। इनका जीवन ही सौंदर्यमय था। मुझे ऐसा लगा, इनमें कभी उदासीन वृत्ति आती होगी ?

प्राचीन होने पर भी प्राचीन को नवीन स्वरूप में ये देख सकते थे। रूढ़िदेवी को दूर से ही नमस्कार करना इन्हें आता था। लोकमत का सम्मान करते हुए भी ये उसके उपासक नहीं थे। इस बात के समर्थन में जूनागढ़ में एक मित्र के यहाँ भोजन करने गये, उस समय का एक प्रसंग याद आ जाता है, तो सच्ची बात को बिना किसी हिच-किचाहट के कह डालने की इनकी अपूर्व शक्ति का सहज ही ध्यान हो आता है।

मृत्यु से पहले ये अहमदाबाद आये थे। वहाँ एक दिन मेरे साथ घूमने गये। वह प्रसंग भी भुलाया नहीं जा सकता। पश्चिम की भाषा के संस्कार इन्हें छुए तक न थे, पर फिर भी वहाँ के सुधरे हुए विचारों को ये सहज ही पचा सकते थे। ग्रेज्युएट हो जानेवाले विद्यार्थी भी जरा-जरा-सी बातों से भड़क जाते हैं और यह मनुष्य इन्हीं विचारों को इस प्रकार ग्रहण करे और इससे भी अधिक साहसिक विचारों को शान्ति से व्यक्त करे यह देखकर मुझे आश्चर्य ही हुआ।

परन्तु ऐसे आनन्दी हृदय को भी कभी-कभी उदासीन वृत्तियाँ (Moods) घेर लेती थीं। वनिता-विश्राम में भाषण देने के बाद अंतिम बार ये घर पर मिलने आये तब मैंने देखा, किसी अकथनीय उदा-सीनता से उनका हृदय अभिभूत हो उठा था। ऐसी भावनाओं से सभी का मन ग्रसित होता है, परन्तु आत्मबल के परिमाणानुसार इनका प्रभाव किसी पर कम तो किसी पर अधिक होता है, केवल इतना ही।

निराश व्यक्ति को प्रोत्साहन देनेवाले, जन-स्वभाव के पारखी, अनेक प्रकार की वनस्पतियों का रस जानने और चखानेवाले, ॐ शब्द की ध्वनि करने और सौंदर्यानन्द की सृष्टि करनेवाले उस साधु का चित्र अंतर के चित्रपट पर उज्ज्वल रंगों से सदा ही चित्रित रहेगा।

किसी ने कहा है, सौराष्ट्र 'साधु-रहित होता जा रहा है।' कितना कटु और दुःखद सत्य है!

श्री नानालाल कवि

बहुत समय पहले 'नाना नाना रास', 'इंदुकुमार' तथा 'जयाजयंत' पढ़े थे। उस समय इस शब्दरूपी फूलों की माला गूँथनेवाले उस चतुर माली के प्रति बड़ा आकर्षण उत्पन्न हुआ। गुजराती के अतिरिक्त उस समय मुझे किसी दूसरे साहित्य का ज्ञान न था। पहले दस-बारह वर्ष की उम्र में श्री नरसिंहराव की 'हृदय वीणा' में आकर्षण उत्पन्न हुआ था, उसके बाद 'कवि' की पुस्तकों जैसी दूसरी पुस्तकें आकर्षक नहीं लगीं। उन दिनों निर्णय करने की शक्ति न थी; प्रकाश से चौंधिया जानेवाले बालक की-सी वृत्ति ही थी।

यात्रा से लौटते समय हम सब राजकोट गये। कवि से पुरानी मित्रता की याद आई तो उनसे मिलने का निश्चय किया। मुझे बड़ी जिज्ञासा थी। कवि उस समय राजकोट में अकेले ही थे। परिवार कहीं बाहर गाँव गया था।

साधारणतया जब पुरुष पुरुषों से मिलने जाते हैं तो स्त्रियों को साथ ले जाने का रिवाज अपने हिन्दू-जगत् में नहीं है। पर जिसकी पुस्तकों ने मुझे आश्चर्य-चकित कर दिया था, एक बार उसके दर्शनों का अवसर प्राप्त हो तो क्यों न उसका लाभ उठाया जाय, यह सोचकर सब के साथ मैं भी गई।

राजकोट में कवि के यहाँ जो गये होंगे वे देहली में प्रवेश करते ही दाहिने हाथवाली कोठरी से अवश्य परिचित होंगे। मेज के पास गंभीरता से बैठा हुआ व्यक्ति वही श्री नानालाल कवि हैं।

कितनी ही पुरानी बातें याद आने पर बीच में " 'इंदुकुमार' का दूसरा भाग कब प्रकाशित हो रहा है?" जब मैंने यह पूछ लिया तो 'नहीं

पुस्तकों में रस लेनेवाला भी कोई है' यह तो कवि ने सोचा ही होगा, क्योंकि उसके बाद कवि मुझसे और अधिक रस से बातें करने लगे। यह था कवि से मेरा प्रथम परिचय। इसके बाद तो मुझे कवि से भेंट करने के कई अवसर मिले, उनके विषय में बहुत कुछ अच्छा-बुरा सुनने को मिला। उठते-उठते कवि ने 'उषा' दी, (जो उन दिनों प्रेस में थी) और कहा कि इस पुस्तक में मुझे औरों से अधिक रस मिलेगा।

कवि में कल्पना और शब्द-योजना बड़ी सरस है। स्वभाव विनोदी है, आँखों में एक प्रकार का उग्र तेज है। साथी की तरह यह अच्छे लगें, ऐसे हैं, परन्तु मित्र की तरह 'exacting' अधिक हैं। आग्रह—हठ या दुराग्रह जितना कहा जा सके, इनमें अधिक है और क्रोधित होने में बहुत कम समय लेते हैं। प्रतिस्पर्धी की ओर उदार भाव से नहीं देख सकते और अनुयायियों तथा आश्रितों से घिरे रहना इन्हें अच्छा लगता है—दयालु हैं और गर्वीले भी। वह स्वयं नहीं जान सकते हों, फिर भी उनमें 'अहं' है।

इनके प्रति मेरे हृदय में अधिक श्रद्धा थी और अब भी है...... इनके कितने ही संकीर्ण विचारों के कारण काठियावाड़ में अधिक समय तक रहना तो हानिकर नहीं हो सकता !

इनमें भावना-प्रधान प्रकृति अधिक है। अतिथि-सत्कार कवि का विशेष गुण है। मैंने किसी से इनके गृह-संसार को अतिथि-सत्कार के लिए तपोवन से उपमा देते हुए सुना है।

गृहस्थ के रूप में—मित्रों और प्रवृत्तियों के कारण परिवार के प्रति अपने कर्तव्यों को घड़ी भर के लिए भुला भी सकते हैं। कवि के रूप में—इनमें कल्पना है, रस है, भाव है, शब्द-सौंदर्य है, कवित्व भी है। परन्तु सब जगह कविता नहीं जान पड़ती। इनमें कोई कमी है, कौन-सी यह समझ में नहीं आता।

इनके मानसिक निर्झर से प्लवित प्रवाह का अपव्यय अधिक होता

है। जल का प्रवाह है, गति है, पर कूलों का बन्धन नहीं। आख़िर कवि जो ठहरे !

कवि में आनन्द का सृजन करने की अद्‌भुत शक्ति है। आनन्द के कई प्रसंगों के लिए मैं इनकी बहुत ऋणी हूँ। जब अहमदाबाद आते तो हमारे हॉल में एकत्र हुई मंडली में आनन्द छा जाता। चोरवाड़ का आतिथ्य, गिरनार की मुलाक़ातें, डा० खाँडावाला के यहाँ का चप्पल-प्रकरण और ऐसे ही दूसरे प्रसंगों में प्रदर्शित इनकी गम्भीर सद्भावनाएँ —ये इनके परिचय की इतनी विविधताएँ हैं कि आनन्द और आभार के साथ बिना याद किये नहीं रहा जा सकता।

श्री चंद्रशंकर पण्ड्या

श्री चन्द्रशंकरजी से मेरा परिचय प्रत्यक्ष की अपेक्षा परोक्ष अधिक है। इनसे भेंट के अवसरों पर मैंने जितना अवलोकन किया है उससे अधिक इनके विषय में मित्रों द्वारा सुना है। इनकी वास्तविक प्रसिद्धि के दिनों में तो मैंने इन्हें देखा भी न था, इसलिए कदाचित् अधूरा या एकदेशीय ही इनके विषय में कहा जा सके, यह स्वाभाविक है।

श्री चन्द्रशंकर पंड्या सौ० वसंत बा के पति के रूप में सर्वप्रथम मेरे ध्यान में आये होंगे। इनकी एक छोटी सी कविता पहले-पहल मैंने कहीं पढ़ी थी, तब महात्वाकांक्षी पत्नी का अनुकरण करते हुए अथवा अपने को उसके योग्य बनाने का प्रयास करते हुए पति का मुझे ध्यान आया। बेचारे चन्द्रशंकर!

यह तो हुई बहुत वर्ष पहले की बात! इसके बाद श्री चन्द्रशंकरजी की छोटी-छोटी कविताएँ और भी दृष्टि में पड़ने लगीं। उनकी 'स्टाइल' (शैली) के विषय में भी सुना। उस समय आज की अपेक्षा मेरे विचार संकुचित बहुत थे। चन्द्रशंकर की कुछ कविताएँ ही मुझे कविता की तरह अच्छी लगतीं। इनके लेख मुझे अधिक अच्छे लगते। आज भी इनकी कविताओं के विषय में मेरे मन में थोड़ा-सा ही परिवर्तन हुआ है। एक बार तो इनकी कविताओं पर आलोचना भी लिखी थी, पर परमेश्वर से दूसरा नम्बर कदाचित् श्री चन्द्रशंकर का है यह बात श्री रमणीयराम के मन में हो इस कारण से अथवा 'समालोचक' में श्री चन्द्रशंकर पर आलोचना लिखने की धृष्टता करने का अवसर किसी

को न दिया जाय इस कारण से या किसी दूसरे कारण से यह आलोचना रमणीयराम नहीं छाप सके। इसमें उन्हें व्यक्तिगत तत्त्व अधिक लगा, यह उन्होंने मुझे बताया। इनकी सम्मति के प्रति संपूर्ण सम्मान होने पर भी आज तक मुझे ऐसा लगा नहीं।

श्री चन्द्रशंकर स्वभाव से स्नेहशील हैं। इन्हें स्नेह चाहिए भी अधिक। गुण-दोष-परीक्षा ये अच्छी कर सकते हैं। स्वभाव से ही ये एक अच्छे विवेचक हैं। चन्द्रशंकर के सभी मित्रों को इनकी गोष्ठी और उसमें चलनेवाली विविध प्रकार की विवेचनाएँ, गुण-दोष-परीक्षाएँ, व्याख्यान और इन सबके साथ होनेवाले मीठे विनोद, साथ ही हृदय के भावपूर्ण सत्कार तथा उदारता अवश्य याद होंगे।

इनमें नागरपन तो नहीं पर नागरिकता है। आत्म-सम्मान अधिक है। स्त्रियों को इनकी मित्रता अधिक अच्छी लगती है—ऐसा इनके विषय में कहा जाता है। लाड़ इन्हें आवश्यकता से अधिक मिला है। लाड़ले कहे जा सकते हैं या नहीं, यह मालूम नहीं।

हमारी स्त्रियाँ गीतों में गाती हैं उसके अनुसार किसी दिन ये छैला रहे होंगे! भले ही ये एक नन्हें से तारे हों पर विशाल व्योम में उनके लिए स्थान है अवश्य!

श्री कन्हैयालाल मुन्शी

अधिकतर मेरा परिचय लेखकों की अपेक्षा उनकी कृतियों से पहले रहता है। श्री मुन्शी के सम्बन्ध में भी ऐसा ही हुआ।

'गुजराती' के दीपावली अंक में प्रकाशित हुई 'कोकिला', उसमें प्रत्येक सप्ताह प्रकाशित होनेवाला 'वेरनी वसुलात' और उसके बाद 'मेरी कमला, तथा दूसरी कहानियाँ', 'पाटन की प्रभुता' और 'गुजरात का नाथ' एक के बाद एक पढ़ने में आये तब गुजरात के साहित्याकाश में एक नवीन ग्रह चमचमाने लगा है, ऐसा मुझे सहज अनुभव था। लेखक रूप में तो श्री मुन्शी ने बहुतों को मोहित किया है।

उसके बाद दो महीने एक ही बिल्डिंग में रहने का सुयोग मिला तब इन्हें अधिक समीप से देखने का अवसर मिला।

श्री मुन्शी देखने में कोमल और नम्र हैं। मेरी भाषा में छोटे आदमी हैं। अन्नदेव के साथ इनकी अधिक मित्रता नहीं है, पर पैसा कमाने के के लिए ये सवेरे से शाम तक खूब परिश्रम कर सकते हैं। अपना लेखन-कार्य इस समय में से बड़ी उदारतापूर्वक निकाली हुई कुछ मिनटों में ही करते हैं।

मनुष्य-स्वभाव परखने की इनमें अद्भुत शक्ति है। बुद्धि का चमत्कार इनमें चमकता है, पर साथ ही अहं की चमक भी उतनी ही है। बुद्धि के शिखर पर से ही संसार पर दृष्टि डालते हैं। इनके पात्रों में अकड़ बहुत है, किसी ने ऐसा कहा है। इनके विषय में भी यही कहा जा सकता है। विज्ञानशास्त्री की तरह ये जनता के साथ सामञ्जस्य स्थापित

करते हैं—वह भी पृथक्करण करने के लिए। स्वभाव के सभी तत्वों का ये अध्ययन करते हैं और निर्दयी की तरह उनका वर्गीकरण। और मैं यह कर सकता हूँ यह भी भली भाँति समझ सकते हैं।

ऐसे मनुष्य की बुद्धि को संसार नमस्कार करता है पर प्रेम नहीं कर सकता। आत्मसम्मान और भी अधिक है। दूसरों की ओर तिरस्कार-पूर्वक देखने की प्रवृत्ति भी कुछ-कुछ है। रहन-सहन और व्यवहार सभ्य तथा सुसंस्कृत है। एक प्रकार की छटा भी है।

संसार के प्रति ये उदासीन हैं। इन्होंने संसार से कुछ माँगा था पर मिला नहीं ऐसा लगता है। गर्व के कारण उसके लिए ये किसी से शिकायत नहीं करते, परन्तु तिरस्कार करते हैं और अपने अंतर में ही निर्दयी की तरह उसके टुकड़े-टुकड़े कर डालने में आनन्द का अनुभव करते हैं। इन्हें सहानुभूति अच्छी नहीं लगती, क्योंकि उसके मिलने पर गौरव भंग हो जायगा ऐसी इनकी धारणा है।*

परन्तु कदाचित् इस बाह्य बुद्धि की कठिन चट्टान के नीचे हृदय-कूप में से भावनाओं का मीठा स्रोत बहता होगा। किसी ने उस जल का पान किया होगा, परन्तु यह जल दुर्लभ है अवश्य।

हृदय का उपयोग करने पर ही उसका मूल्य बढ़ता है।

---

* He is indifferent to the world, because he could not get, something from it which he wanted. In his pride he does not complain before it but despises it all the more; and takes a delight in criticising it and tearing it to pieces before his mental eye. He does not like sympathy because he thinks it lowers his dignity.

श्री ललित

श्री ललित के काव्यों में भाव की अपेक्षा शब्द-माधुर्य अधिक है। श्री ललित यथाशक्ति सबके अनुकूल होने का प्रयत्न करते हैं। पर जो सबको प्रसन्न करना चाहता है वह किसी को भी नहीं कर पाता यही नियम इन पर भी लागू होता है। संसार इनको हमेशा अन्यायी लगा होगा और लगेगा।

श्री ललित मजीरों के साथ भजनों का आनन्द सदैव लेते आये हैं। जो इनके परिचित हैं वे इनके मजीरों को भी अच्छी तरह जानते होंगे। मजीरों के साथ इनकी मित्रता 'यावच्चंद्रदिवाकरौ' तक की है।

चन्द्र-सूर्य के मोह में दुनिया जिस प्रकार गृहदीपक को भुला देती है उसी प्रकार बहुत से लोग महाकवियों की खोज में, सुन्दरियों के रास में तथा बालकों की क्लास में गाये जा सकें ऐसे श्री ललित के गीतों को भुला देते हैं।

'ब्लेंकवर्स' लिखने का मोह इन्हें अभी नहीं हुआ। श्री ललित केवल कविता ही नहीं करते, वरन् उपदेश भी देते हैं, भाषण भी देते हैं और समाज-सेवा में यथाशक्ति अपना सहयोग देने से भी नहीं चूकते।

इनमें सृजन शक्ति की अपेक्षा शब्द-चयन अधिक है। इन्होंने कितने ही नवीन लेखक रूपी साहित्य-प्रांगण के निभृत आम्रकुंजों में शब्दों रूपी कोकिला की मीठी कुहु-कुहु कुहुका दी है।

इनके मजीरों की झंकार, और धोबिन के गीत की लय कभी-कभी स्वयं ही याद आकर श्री ललित के संस्मरण जगा देती है।

इनकी भावनाओं के अनुरूप ही परिस्थितियाँ यदि मिली होतीं तो ललित न मालूम क्या-क्या करते ?

काका साहब (श्री कालेलकर)

अँधेरी रात में भर नींद से जागने पर सहसा-दृष्टि किसी की खोज करती हो, इस प्रकार आकाश-पट पर घूमती हुई किसी एक तेजस्वी तारक मणि को चमकता देखकर वहाँ ठहर जाय, उसी प्रकार गुजरात के छोटे-बड़े सभी विचारकों तथा शिक्षा-शास्त्रियों में विचरण करती हुई दृष्टि काका साहब पर ठहर जाती है। भारत भूमि के गर्भ में अनेकों बहुमूल्य रत्न हैं, पर इनकी चमक केवल इनके अपने स्थान को ही दीप्त करती है। गुजरात के सौभाग्य से पूज्य गांधीजी सदृश रत्नपरीक्षक इन्हें मिले और परिणामस्वरूप कितने ही रत्नों को पहिचानने का सौभाग्य गुजरात को प्राप्त हुआ। इन रत्नों में से एक महामूल्यवान् रत्न है—काका साहब।

ज्ञान को सभी दिशाओं से और जितनी विस्तृतता से देखा जा सके उतना अध्ययन करना तथा उसे ग्रहण करना, बुद्धि के गहन तत्वों का विश्लेषण करना, यह काका साहब की जीवन-साधना है। पर यह इतने से ही समाप्त नहीं हो जाता। संसार को ये शिक्षा-शास्त्री की दृष्टि से देखते हैं, पर इनकी दृष्टि वहीं ही नहीं रुक जाती। बुद्धि इनका साथ नहीं छोड़ती, परन्तु भावना तथा आदर्श भी इन पर शासन करते हैं। बालक की-सी कौतुक वृत्ति इनमें है। युवक की-सी गति और वृद्ध का-सा संयम भी है। और सर्वत्र अपना मार्मिक विनोदी रस भर देते हैं।

बुद्धिमान् पुरुषों का पारिवारिक जीवन वास्तव में बड़ा शुष्क होता है। उपकार कहिये या दया, ये अपने अशिक्षित कुटुम्बियों को निभा लेते हैं। पर काका साहब विद्वानों की साधारण मिट्टी से नहीं बने। कालों से अस्पर्श्य बुद्धि के शिखर पर विचरण करते हुए भी ये उनकी साधारण सी बातों का ज़रा भी ऊबे बिना, रस लेते हुए सुन लेते होंगे। पुत्र के प्रति इनका प्रेम, इनके विश्वप्रेम का केन्द्र होगा, और संसार के छोटे

बड़े सभी बालकों के प्रति भी उनका धैर्य तथा आकर्षण कुछ कम नहीं है।

संसार को इन्होंने खूब देखा और अनुभव किया है और वह भी द्रष्टा के कौतुक भरे हास्य सें या प्रेक्षक के अट्टहास से नहीं, बल्कि संसार में प्रवेश कर तथा उसका एक सदस्य बनकर—फिर भी प्रेक्षक का-सा दूरत्व रखकर।

आदत—यह इनके लिए पैदा नहीं हुई है। बंधन मानते हैं, पर यह बंधन इन्हें बाधक नहीं होते। अपने शिष्यों के ये प्रिय गुरु हैं, मित्रों के ये मार्ग-दर्शक सखा हैं, साक्षरों के ये समवयस्क साथी हैं।

सागर का-सा ज्वार-भाटा इनमें नहीं, गंभीर सरोवर का अक्षुब्ध जल इनमें भरा है। ये चक्षुओं को आकर्षित करने वाले चंद्रमा नहीं, पर हृदय में छिपे हुए शुक्र तारे का-सा तीखा प्रकाश है।

संसार के ये मित्र हैं, पर संसार के कोलाहल से दूर रहते हैं। आत्मा के ये उपासक हैं, पर साथ ही स्थूल के चिकित्सक। कर्मयोग इन्होंने ग्रहण किया है, फिर भी योगी का-सा वैराग्य इन्हें अधिक प्रिय है। राजयोगी के प्रताप की अपेक्षा तपस्वी का तप इनमें अधिक है।

अधिकतर सभी को निर्जीव लगनेवाली वस्तुओं में ये अद्भुतता का दर्शन करते हैं और उन्हें अद्भुतता अर्पित भी करते हैं। मनुष्यों की बालवृत्ति इनमें एक मुस्कराहट के अतिरिक्त दूसरी भावना को कदाचित् ही जाग्रत करती हो। शुष्क तत्वज्ञान में ये कल्पना के रंगों का एक अपूर्व मिश्रण कर देते हैं।

विषयों का विवेचन करते समय इनके जैसे सुन्दर दृष्टान्त कोई नहीं दे सकता। महाराष्ट्री होने पर भी गुजराती भाषा पर इनका अधिकार गुजरातियों को भी लजा देनेवाला है। कला की सूक्ष्म परख इनमें है।

किसी संत पुरुष ने कहा है कि सत्संग जितना किया जा सके, करना चाहिए। परन्तु सत्पुरुषों का समागम जीवन-पथ पर कितन विरल है!

श्री महादेवभाई

पिछली नागपुर-कांग्रेस के अवसर पर हम विषय-विचारिणी समिति में दर्शक की तरह गये थे। वहाँ महादेवभाई भी आये थे। महादेवभाई को देखने पर मैं पहिचान लेती थी पर इनके प्रति अधिक जिज्ञासा वृत्ति तो तभी से हुई। किस प्रकार हुई यह बताती हूँ।

विषय-विचारिणी समिति में मेरी एक सखी ने महादेवभाई के विषय में मुझसे पूछा, 'ये कौन हैं?' मैंने कहा, 'गांधीजी के सेक्रेटरी—महादेव-भाई देसाई हैं।' 'अच्छा! मैं तो समझती थी कि महादेवभाई बूढ़े, गंभीर और रूखे होंगे।' उनके कहने में 'ज़रा कुरूप' होंगे यह भाव भी था। 'क्यों, बहुत अच्छे लगते हैं? तेरा विवाह करने का मन हो तो कुछ विचार करें।' (दुर्गा बहिन उस समय ध्यान में न थीं, वे यदि इसे पढ़ें तो क्षमा करेंगी, ऐसी आशा है)।

गांधीजी के सेक्रेटरी का नाम सुने तो पहले कुछ दूसरा ही विचार मस्तिष्क में आयेगा और फिर जो महादेवभाई को पहली बार देखे उसे तो आश्चर्य ही होगा।

महादेवभाई कद में ऊँचे हैं। हम उन्हें पतला-दुबला नहीं कह सकते। उनके सहज गौर शरीर और भाव-दर्शक मुख-मुद्रा में आकर्षण है। ये रूखे स्वभाव के नहीं यह तुरन्त ही कहा जा सकता है। ये बुद्धि-प्रधान होंगे या भावना-प्रधान यह कठिन प्रश्न है, पर न गांधीजी का शिष्य केवल बुद्धि-प्रधान मनुष्य ही हो सकता है। शुष्क बुद्धि की कठोर छाप ने इन्हें विकृत नहीं किया और इनकी भावना अनुभव करने की शक्ति को बुद्धि ने कुंठित नहीं किया।

गांधीजी की पूजा की जा सकती है, पर महादेवभाई तो मित्र हो जायँ तभी अच्छा लगे।

ये sensitive (भावुक) बहुत हैं। स्मरण-शक्ति इनकी सरस है। ज्ञान के लिए ये अथक परिश्रम कर सकते हैं। इनके साहित्य-सृजन में एक प्रकार की मोहकता है, पर अधिकतर ऐसा लगता है, ये अमीर बनने के लिए पैदा हुए हों।

अपनी रसिकता पर ये विरक्ति का अवगुंठन डालने का खूब प्रयत्न करते हैं। महादेवभाई शुष्क तत्त्वज्ञानी हों इसकी अपेक्षा ऐसे ही रहें, क्या यह अधिक अच्छा नहीं ?

देश के लिए इनकी आत्मा सदैव जलती रहती है। परिस्थिति के अनुकूल अपने को मोड़ देने की तथा कार्य करने की शक्ति इनमें है।

श्री मणिलाल नभुभाई के उपन्यास के पात्र गुलाबसिंह से ये कुछ-कुछ मिलते हैं। संभव है, यह समता बहुत दूर की हो। ये मत्स्येन्द्र हो सकें तो इन्हें लाभ होगा—संसार को क्या ? इनके विनोद में शांति अधिक है। योगी होना इनका आदर्श होगा। गांधीजी की तरह ये बिलकुल तटस्थ नहीं हैं। विश्व के प्रति जिस प्रकार विचार करते हैं उसी प्रकार अपने प्रति भी सोचते हैं। इनमें सुरुचि है। रस, भाव और भावनाएँ भी हैं। सुन्दरता की परख करनेवाला मन और दृष्टि भी है।

इनके चरित्र में एक प्रकार का गौरव है। अंतरात्मा की ये रक्षा कर सकते हैं। यदि ये जीवन के मोह में पड़े होते तो विजय इनको अवश्य खोजती हुई आती।

देश-यज्ञ की बलिवेदी पर भारत माँ के ऐसे कितने ही सुपुत्र पड़े हैं। बत्तीस लक्षणों से युक्त पुरुषों के बिना बलिदान सफल नहीं होता। स्वतंत्रता देवी का खप्पर जब ऐसे लक्षणवाले पुरुषों से भरा जायगा तब भी क्या वह प्रसन्न नहीं होगी ?

श्री इंदुलाल याज्ञिक

इंदुभाई से परिचित हुए तो वर्षों हो गये। बहुत नहीं, थोड़े ही; पर ये थोड़े भी थोड़े नहीं लगते।

इंदुभाई अर्थात् ट्रेन की गति, इंदुभाई अर्थात् बालक की उच्छृं-खलता, इंदुभाई अर्थात् फ़ौज का सिपाही।

इंदुभाई में ऋषि-मुनियों का-सा संयम नहीं पर योद्धा का-सा निग्रह है। इनकी शक्तिशाली देह में बालक की आत्मा निवास करती है और बालक की-सी निर्दोषता भी है। बालक ही इनके प्रिय मित्र हैं। बालक की तरह इन्हें भी नवीन कार्य तथा नये-नये मनुष्यों के साथ मिलने-जुलने के अवसर पाना अच्छा लगता है। बालक की-सी अस्थिरता भी इनमें है। ये भी तो अनन्त के प्रांगण में खेलते हुए बालक ही हैं न?

देश-सेवा का असिधारा-व्रत इन्होंने ले लिया है। हनुमान की तरह इनके हृदय के आन्तरिक भाग में देश शब्द ही खुदा होगा। देश-कार्य के लिए इनका सा अथक परिश्रम थोड़े ही लोग कर सकते हैं। देश के लिए इन्होंने फ़कीरी स्वीकार कर ली है। काम करते समय में ये भूख, प्यास और आराम की ओर नहीं देखते। कितनी ही बार इनकी झप-कती हुई पलकों ने निद्रा सुन्दरी की प्रार्थना भी ठुकरा दी होगी।

ये लेखक हैं, पर इनकी लेखन-वृत्ति को दूसरे कामों के सामने जितना चाहिए उतना अवकाश नहीं मिलता। कल्पना के पंखों पर ये दूर उड़ते हैं, परन्तु बहुत-सी समितियों तथा दफ्तरों की फाइलें इन्हें स्वच्छंद नहीं होने देती। फिर भी कार्य के पिंजरे में बंद इनकी रसवृत्ति वहाँ भी पंख फड़-फड़ाकर अपना अस्तित्व प्रदर्शित किये बिना नहीं रहती।

किन्तु इन्हें व्यवहार-कुशल नहीं कहा जा सकता। व्यवहार की बात ये जानते ही नहीं, यह भी कहें तो कुछ अंशों में ठीक है। कभी-कभी ये शिष्टाचार की आवश्यकता स्वीकार नहीं करते। व्यवहार में इनका रूखा-पन कइयों को बुरा लगता होगा।

केवल स्वार्थ-त्याग और देश-सेवा मानव को जन-समाज की सामान्य भूमि से बहुत ऊपर ले जाती है, पर महान् बनना हो तो इतना ही बस नहीं। जिस देश और समाज का जो मनुष्य कार्य करता हो उसके शिष्टाचार का वह पालन न करे अथवा उसकी उपेक्षा करे, तो उसकी सेवा प्रभावोत्पादक नहीं होती। उसके शुद्ध हेतुओं पर भी संसार विश्वास नहीं करता। मित्र के दुर्व्यवहार पर यदि प्रभाव डालना हो तो उसकी भूलों की कठोर आलोचना करते हुए भी दूसरी सब बातों में उसके अनुकूल ही रहना चाहिए। इस रीति से मनुष्य जितना प्रभाव डाल सकता है उतना किसी दूसरी तरह से नहीं। समाज पर भी यही नियम लागू होता है।

स्वजनों के बन्धन तो इन्होंने कब के तोड़ डाले हैं। स्नेह के बन्धन भी अधिक नहीं रखते। परिवार और स्त्रियों का सहवास यदि इन्हें मिला होता तो इनके स्वभाव में बहुत से सुन्दर तत्त्वों का विकास हो सकता था।

स्त्रियों से चिढ़कर ये भागते नहीं। बहुत कुछ अंशों में स्त्रियों में ये मातृभाव की प्रतिष्ठा करते हैं। लड़कियों से बहिन का सम्बन्ध पाकर अपने को कृतार्थ समझते हैं। पर रखते हैं सब से दूर का ही सम्बन्ध। स्नेहमयी माँ का स्नेह इनमें ज्वार ला देता, बहिन की प्रेमभरी बातें इनमें उत्साह प्रेरित करती, पत्नी की सहृदयता और प्रेम इनके हृदय-सागर से अमृत की सृष्टि करता और इनके अंतर के तूफ़ान को शांत कर देता। बिना स्त्रियों के इनके जीवन में तथा कार्य में अभाव ही रहेगा।

बाबू क्षितिमोहन सेन

अहमदाबाद की साहित्य-परिषद में कविवर टैगोर के साथ आये हुए शांति निकेतन के दो अध्यापकों को उस परिषद में उपस्थित बहुत से व्यक्ति जानते होंगे। घुँघराले, बंगाली फ़ैशन के बाल और आवश्यकता से अधिक स्थूल शरीर वाले, उनमें से एक थे—बाबू क्षितिमोहन सेन।

बाबू क्षितिमोहन से मेरा परिचय श्री करुणाशंकर जी की कृपा से हुआ। वे फिर जब दूसरी बार अहमदाबाद आये तब भी मिले। इतने संक्षिप्त परिचय में भी इनके स्वभाव की एक से अधिक बातों के अध्ययन करने का सौभाग्य मुझे आज प्राप्त हुआ।

इनके विषय में मेरे स्मरण-पट पर इनका एक चित्र बहुत सुन्दर है। इसमें इनके अत्यन्त विनोदी और आनंदी स्वभाव का सरस दिग्दर्शन मिलता है। कथानकों द्वारा विनोद से भरपूर उपदेशों का पात्र ये हमारे सामने रख देते हैं और हम इच्छा करें कि इससे पहले ही पी लिया जाता है। इस समय इनका व्यक्तित्व प्रभावशाली की अपेक्षा आकर्षक अधिक लगता है।

परन्तु इन्होंने ही कहा था उसके अनुसार ये एक ग्रह के बहुत समीप पहुँच गये हैं। और इसी कारण ये दूसरे तेजस्वी ग्रहों का तेज उनके पूर्ण स्वरूप में नहीं देख सकते। इनकी भाषा, इनके विचार, इनके उदाहरण ये सब टैगोरमय हैं। कविवर टैगोर ने ऐसी कितनी आवृत्तियाँ उत्पन्न की होंगी?

अहमदाबाद में भी बाबू क्षितिमोहन ने कितने ही भक्त-मंडल बना

लिये थे। इनकी बातचीत करने की शक्ति संस्कारी तथा सभ्य मनुष्य को आकर्षित करनेवाली थी तथा इनके योग्य थी। व्यापार-कुशल अहमदाबाद में कुशल वार्तालाप करनेवालों का तो अभाव है ही। दूसरे प्रान्तों में जितने सरस वार्तालाप करनेवालों से मिलने का अवसर मिलता है वैसा अहमदाबाद में कदाचित् ही मिलता हो। दूसरे प्रान्तों में ऐसे मनुष्य अपवाद-स्वरूप या अपूर्व नहीं समझे जाते, परन्तु राजनगर के लिए नवीन ही हैं।

इनकी सुकोमल हृदय-वृत्ति को आवश्यकता से कुछ अधिक 'टाइट' किये हुए सितार के तार सदृश कह सकते हैं।

सबसे सुन्दर चित्रों को ही अपने संग्रह-स्थान में सुरक्षित रखा जाता है। बहुत से चित्र कला की दृष्टि से पूर्ण होने पर भी वे हमें अच्छे नहीं लगते। मानव-स्वभाव भी ऐसा ही है। इसमें विविधता के दर्शन किये जा सकते हैं। क्षिति बाबू का परिचय बहुत संक्षिप्त होने के कारण इनके विषय में सुन्दर संस्मरण भी बहुत थोड़े ही हैं। फिर इनके साथ न्याय तो किस प्रकार किया जा सकता है ?

श्री करुणाशंकर मास्टर

श्री करुणाशंकरजी की उपमा पृथ्वी के अन्दर बहती हुई सरस्वती या गुप्त गंगा से दी जा सकती है। इनका प्रवाह, इनकी गति बाहर दिखाई नहीं देती, पर प्रवाह होता है तथा पृथ्वी के हृदय में समाकर उसे रसमयी बना देता है।

श्री करुणाशंकर भी अपने बहुत से मित्रों के अन्तर में प्रवेश कर उनके हृदय को रसमय बना देते होंगे। इनकी छोटी-छोटी दिखाई देनेवाली मौन सेवाओं ने बहुतों की अन्तरात्मा को शान्ति पहुँचाई होगी।

श्री करुणाशंकर गुणग्राही अधिक हैं और सत्पुरुषों का समागम इन्हें अत्यन्त प्रिय है। इनकी गुणग्राहकता और और सत्संग की लालसा के कारण ही ये बहुत से साक्षर और सत्पुरुषों के मित्र बन गये हैं। भर्तृहरि ने कहा है वैसे ही ये दूसरे के गुणों को पर्वत के समान समझते हैं। उनके दोषों को ये राई से भी सूक्ष्म बनाकर देखते हैं। हमारी व्यवहार-बुद्धि को इनमें संतुलन का आभास नहीं हो सकता, पर इनके पास ऐसी व्यवहार-बुद्धि का कोई हिसाब ही नहीं।

इनकी स्थिति तथा संयोगों की अपेक्षा इनकी भावना बहुत ऊँची है। कुटुम्ब-वत्सलता इनमें खूब है। सेवा इनका जीवन-मंत्र है। अपने हृदय में ये बहुतों को समा सकते हैं।

इनके जैसे शिक्षक गुजरात में थोड़े ही हैं। शिक्षण को इन्होंने जीवन में ओत-प्रोत कर लिया है। शिक्षक होने के लिये ही इनका सृजन हुआ था, पर गुजरात अभी शिक्षकों को पहचानती ही कहाँ है? ऐसे शिक्षकों

के सुयोग का लाभ उठाने की इसमें तत्परता ही कहाँ है ? परिणाम-स्वरूप श्री करुणाशंकरजी के पूरे जीवन में उनके शिक्षण का फल केवल 'भारती' की संस्थापना में ही समाप्त हो जायगा।

इनके विद्वान मित्रों के समागम में रहनेवाली इनकी मित्रमंडली, खास ध्यान देने योग्य है। मुझे तो यह भक्त-मंडली सी अधिक लगती है। करुणाशंकरजी इनके हृदय-मंदिर में जिन प्रतिमाओं की स्थापना करें उन सबकी उपासना का लाभ इस मंडली को पूरी तरह मिल सकता है।

बालकों के प्रति इनकी ममता स्वाभाविक ही है। शिक्षण के विषय में ये नवीनतम गवेषणा से परिचित होने का सदैव ही प्रयत्न करते रहते हैं। इन्हें थोड़ा लज्जाशील कहा जा सकता है। समाज की नवीन रचना में शिक्षकों का स्थान कहाँ है ?

श्री वल्लभभाई पटेल

कोई जन्म से महान् होते हैं तो किसी को परिस्थितियाँ महान् बना देती हैं। आज के बहुत से नेताओं के सम्बन्ध में क्या नहीं कहा जा सकता ?

श्री वल्लभभाई पटेल गुजरात के आधुनिक नेता हैं। महात्मा गांधी गुजरात में आये तब ये इनके विरोधी थे, ऐसा कहा जाता है। परन्तु कुछ कर डालना चाहिए, ऐसा विचार तो बहुत से मनुष्यों के जीवन में कभी न कभी आता ही है और मृतवत् प्रजा में प्राण-संचार करने वाले का विरोध नहीं करना ऐसी भावना इनके हृदय में भी जाग्रत हुई होगी। जब विरोध वृत्ति अधिक ज़ोरदार नहीं होती तो 'हिप्नोटिज़्म" का-सा असर होता है—गांधीजी का शक्तिशाली आकर्षण इनको इस स्थिति में आकर्षित किये बिना नहीं रहा। हो सकता है, उस समय इस काम के लिए जीवन अर्पण करने का इनका उद्देश्य न रहा हो।

बहुधा भले मनुष्यों को जब श्रेष्ठ शिष्य मिल जाते हैं तो उनका कार्य जितना वास्तव में होता है उससे कहीं अधिक चमक उठता है। परन्तु श्रेष्ठ मनुष्यों को भले शिष्य मिलने से उनका कार्य अच्छा होता है पर चमक नहीं सकता। महात्मा गांधी को दूसरी तरह का कहूँ तो श्री वल्लभभाई क्षमा करेंगे ?

महात्मा गांधी दोषों की अपेक्षा गुणों को अधिक देखते और परिणाम-स्वरूप उन्होंने दोषों का परिमाण ठीक-ठीक नहीं देखा। श्री वल्लभभाई गुणों की अपेक्षा दोषों के प्रति अधिक सावधान रहते हैं। परिणाम-

स्वरूप इन्हें गुण कम दिखाई देते हैं। इन दोनों व्यक्तियों का साथ रहा, तब तक ठीक-ठीक संतुलन भी बना रहा। महात्माजी के कारावास में जाने पर श्री वल्लभभाई ने यह संतुलन खो दिया तब यह कमी इन्हें अधिक खटकती होगी।

इनकी भाषा सीधी, तीखी और कथाक्षपूर्ण है। पर सुसंस्कृत नहीं कही जा सकती। चाहे कोई इन्हें क्रोधी कहे पर ये विचक्षण विनोदी ही हैं।

इनमें उद्धतपन है। यह इनका जाति गुण है यही कहा जा सकता है। परन्तु इनकी सुनिष्ठा के प्रति शंका नहीं की जा सकती।

महात्मा गांधी के तेज से ये तेजस्वी हुए। महात्माजी के चरण-चिह्नों पर चलने से ये नेता हुए। गुजरात के पथ-प्रदर्शक की कुंजी अब इनके हाथ में है। किस प्रकार पथ-प्रदर्शन करेंगे यह तो भविष्य ही बतायेगा।

महात्माजी बिना सूना गुजरात इनके बिना और भी सूना हो सकता है। जनता में इनका स्थान इनके प्रति श्रद्धा और अश्रद्धा के बीच झूलता रहता है।

अपनी शक्ति के परिमाणानुसार ये काम करने में कभी भी पीछे नहीं रहते। पर संसार को किसने जीता है जो ये जीतते ?

अपने एक साक्षर मित्र के अभिप्राय का यहाँ उल्लेख करती हूँ— "He is not the best man but the best available man", ये सर्वोत्तम व्यक्ति नहीं हैं पर इस समय दिखाई पड़ने वाले व्यक्तियों में सर्वोत्तम हैं। यह अभिप्राय कदाचित् बहुतों को अधिक प्रिय न लगे; पर है यथार्थ यह कौन नहीं कहेगा ?

अध्यापक आनंदशंकर ध्रुव

यदि हिममुकुट से आच्छादित शिखरों वाले पर्वतराज हिमालय की वाणी होती, तो विश्व का कोई बालक उससे प्रश्न पूछने अवश्य जाता—'पर्वतराज ! तुम्हारे शिखरों पर दिन-प्रति-दिन हिम के पर्त चढ़ते जाते हैं और हिम पिघल कर सरिताओं के रूप में बहता है, तब इस हिम का स्वभाव कैसा है ? पिघलता है तो फिर बढ़ता कैसे है ? और पिघलता है फिर भी बढ़ता तो है ही ।' बालक पर भी गंभीरता के पर्त इतने चढ़े होते हैं कि प्रश्न में निहित मूर्खता को यह नहीं समझता और वृद्ध तथा तपस्वी पर्वतराज भी गंभीरता से गर्दन हिलाकर कह दे कि 'दोनों बातें सत्य हैं । हिममय होना और पिघलना ये दोनों ही प्रकृत सत्य हैं ।' हिम के पर्त किस प्रकार बनते हैं, इस चर्चा में उस बालक के साथ उलझने का या तो पर्वतराज को अवकाश नहीं रहता अथवा उस विषय को समझ सके इतनी शक्ति का विकास उस बालक में उन्हें दिखाई नहीं देता । बेचारा बालक पर्वतराज की अस्पष्टता की अथवा दूध और दही में पैर रखनेवाली नीति की फ़रियाद करता चला जाता है । पर्वतराज बालक की मूर्खता पर मंद स्मित कर शांत हो जाता है । कुछ ऐसी ही स्थिति आनंदशंकरभाई और जन-समाज की है ।

श्री आनंदभाई की विद्वत्ता ने उन्हें गुजरात में तथा गुजरात के बाहर एक आदरणीय स्थान दिलाया है । विद्यार्थियों के ये पूज्य गुरु हैं । केवल हिमालय और बालक जैसे प्रसंगों से बहुत से इन्हें नहीं समझ सकते यह स्वाभाविक ही है । परस्पर विरोधी मतों पर समान निर्णय देने की

इनकी वृत्ति पर कितने ही शंका की दृष्टि से देखते होंगे। आधुनिक युग प्रत्यक्षवाद का अधिक है। पर अब इनके लेखों में पहले की अपेक्षा अधिक स्पष्टता आने लगी है।

इनके बातचीत करने का ढंग सरस और आकर्षक है, और इसमें विविधता अधिक होती है। एक दर्शनशास्त्री की-सी निर्विकार दृष्टि से देखने की आदत इनमें अधिक है। जीवन के गंभीरतम भावों के मर्म से ये पूर्णतया परिचित हैं। पर ऐसे भाव इनमें पूर्ण रूप से व्यक्त नहीं होते।

पुस्तकें इनकी प्रिय मित्र हैं—उत्तमलालभाई और नरसिंहराव तो विशेषतया। साधारणतः ये जनता के साथ बहुत अंतर रखते हैं। इनमें भावावेश की अपेक्षा प्रभाव अधिक है। इसकी छाप ये मानव हृदय पर तुरन्त लगा देते हैं।

इनकी पुस्तकों और लेखों की संपत्ति गुजरात के लिए बहुमूल्य है। पर इनसे गुजरात को जो आशा थी वह अभी पूर्ण नहीं हुई। गुजरात को ये इतने भोजन से ही तृप्त नहीं कर सकते। हाँ, भिन्न-भिन्न प्रकार की मिठाइयों का स्वाद इन्होंने खूब चखाया है!

सच तो यह है कि ये मध्यस्थ अधिक रहते हैं। इनकी विनोद-प्रियता की झलक बातचीत में आये बिना नहीं रहती। गुजरात में तो इनकी श्रेणी के विद्वान् थोड़े ही हैं।

श्री अरदेशर खबरदार

'प्रभात का तपस्वी' जब 'साहित्य' के अंक में पढ़ा तो उसका लिखने वाला कौन होगा इस विषय में अपनी छोटी सी मंडली में हमने पुष्कल चर्चा की थी। कभी नरसिंहराव तो कभी ब० क० ठाकोर ही होंगे, इस निर्णय पर हम पहुँचे थे। कितने ही नवीन लेखकों के नाम भी सूझे थे। कवि के प्रति पक्षपात होने के कारण लेखक के जितने भी दोष हो सकते थे, निकाले; पर फिर भी यह कृति बहुत ही अच्छी लगी। परन्तु खबरदार का नाम तो सूझा ही नहीं।

इसके बाद फिर 'थुअर' के काँटे चुभे। मद्रास जाने का विचार कर रही थी कि एक पत्र में भाई मास्टर ने 'थुअर' के लुकाछिपी खेलनेवाले लेखक से मिलने की सूचना दी। मैंने फिर उनसे लिखकर पूछा कि तुम्हारी राय में 'थुअर' का लेखक कौन है ? उन्होंने मेरे अज्ञान पर कुछ आश्चर्य प्रदर्शित किया था, यह मुझे याद है। उस कृति का यश खबरदार को मिल रहा है, यह समाचार उन्होंने मुझे दिया।

श्री खबरदार के 'विलासिका' इत्यादि काव्य पढ़े वर्षों हो गये थे। 'कैसी सुन्दर गुजराती लिखते हैं, पारसी होने पर भी !' यह विकार क्षण भर के लिए मन में आया था। फिर भूल भी गई थी। परन्तु 'प्रभात का तपस्वी' और 'थुअर' कैसे भुलाई जा सकती थी ?

इसके बाद दक्षिण से लौटने पर नवम्बर मास में मद्रास गई। मैं गोविंदभाई के यहाँ ठहरी थी। और गोविंदभाई श्री खबरदार के मित्र ठहरे, अतः मिलने में अधिक प्रयास न करना पड़ा।

इनको देखने से पहले मैंने इनका एक चित्र अपने मन में बना रखा था। एक आनंदी वृद्ध; अधिक स्थूल नहीं ऐसा शरीर, गंगा-यमुनी बाल और चश्मे के अंदर से दिखाई देते गंभीर, तीखे पर सौजन्य-पूर्ण वाले नेत्र। खबरदार तो ऐसे ही हो सकते हैं। खबरदार की मूर्ति इसके अतिरिक्त कोई दूसरी मस्तिष्क में आती ही न थी।

एक दिन सवेरे हम इनके यहाँ मिलने गए। श्री खबरदार के कल्पित चित्र के स्थान पर जब एक ऊँची-पूरी प्रचंड कही जा सके ऐसी—वृद्धत्व के एक भी चिह्न से रहित आकृति देखी तो क्षण भर के लिये मैं दरवाजे पर ही ठिठक गई। श्री खबरदार से मिलने की कितनी तैयारी की थी? गोविंदभाई के पास से 'साहित्य' के वे अंक निकलवाकर एक बार फिर पढ़ गई थी, 'थुअर' को फिर एक बार देख लिया था, और गोविंद भाई के साथ इनके विषय में चर्चा भी कर ली थी। 'भारत की टंकार' जो पहले नहीं पढ़ी थी वह भी तुरन्त पूरी कर डाली। पर यह सब खबरदार के लिए नहीं। ये तैयारियाँ तो किसी दूसरे व्यक्ति को सामने रखकर ही हुई थीं।

क्षोभ अधिक देर नहीं टिक सका। परन्तु उसका प्रभाव कुछ-कुछ बना अवश्य रहा। 'साहित्य' में निकलनेवाली कवि की समालोचना मैंने नहीं पढ़ी थी, अतः नये-पुराने, अधिकतर इनकी आलोचना में आये हुए प्रश्न पूछकर उन्हें थकाया। बड़े धैर्य के साथ उन्होंने बातें कीं। गुजराती समालोचकों का छिछलापन, विरोधी काव्य-साहित्य, अंग्रेजी कवियों का अभिप्राय, नानालाल और नरसिंहराव, ताल और थाप, तथा ऐसे ही और दूसरे विषयों पर उन्होंने प्रकाश डाला। गोविंदभाई को जल्दी होने के कारण अंत में हमने विदा ली—संध्या को घूमने चलने का निश्चय करके।

मेरी वार्तालाप करने की शक्ति से कदाचित् ही कोई मोहित हो और उसमें भी आज! "उन बेचारों ने पता नहीं कैसे Original mind की

आशा रखी होगी ?" मैं मन ही मन हँसी।

शाम को हम फिर गये। खबरदार को सामुद्रिक शास्त्र का भी अच्छा ज्ञान है। इस विषय में भी बहुत सी बातें हुईं। काव्य-चर्चा में सामुद्रिक प्रश्न पूछनेवालों के विषय में उन्होंने क्या सोचा होगा ? अपने कितने ही अप्रकाशित सुन्दर काव्य भी उन्होंने पढ़े।

दूसरे दिन मैं वहाँ से जानेवाली थी। खबरदार उस दिन मिलने आये। लगभग तीन घंटे बैठे होंगे। उनकी अंग्रेजी कविताएँ उनके मुख से सुनीं। उनकी चर्चा थी तो बहुत सुन्दर पर अभी शक्करपारे बनाने हैं, यह भाव क्षण क्षण में हो जाता था।

यह था श्री खबरदार के साथ मेरा परिचय ! इन जैसे व्यक्ति के विषय में केवल इतने से परिचय से ही कुछ लिखना क्या साहस नहीं है ?

श्री खबरदार की आकृति को ग्राम्य विशेषण दूँ तो—दैत्याकार कह सकती हूँ। पर यह विशेषण देते ही तुरन्त ख्याल आता है कि उनमें इतनी उग्रता नहीं है। उनके विशाल नेत्र कदाचित् अंतर में जलते हों ऐसा हमें लगता है और उनमें मानव स्वभाव का अध्ययन तथा मानवता—दोनों के दर्शन होते हैं। उनके भव्य ललाट पर चिंतन की छाप है।

उनकी स्मरणशक्ति बहुत तीक्ष्ण है। उनका अध्ययन विस्तृत और विविध है। उनकी कविता उनकी भावनाओं का सहज परिणाम है। उन्हें इसमें श्रम नहीं करना पड़ता और उसमें निहित सहानुभूति स्पष्ट दिखाई दे जाती है।

उनके साथ वार्तालाप करते समय कुछ अस्वस्थता सी जान पड़ती है। उसमें भी जब दुबारा प्रश्न करना पड़े तब तो और भी।

सामुद्रिक शास्त्र में ये पारंगत माने जाते हैं। योगविद्या से उन्हें प्रेम है और पहले जब ये दमण में थे तो मानसिक बल से रोग अच्छे करते थे।

अपने निजी अभिप्रायों पर ये बहुत जोर देते हैं। इनमें अहंभाव आवश्यकता से अधिक है। परन्तु मानव स्वभाव का यह एक विशेष गुण है। कुछ अंशों में यह क्षम्य भी कहा जा सकता है।

इन्होंने गुजरात की सेवा की हैं। पर इनकी शक्तियों के परिमाणानुसार वह कुछ कम ही है। इस प्रकार इन्होंने गुजरात के साथ अथवा अपने साथ अन्याय ही किया है क्या यह नहीं कहा जा सकता ? कदाचित् गुजरात की कलह-प्रियता से दूर मद्रास के शांत जीवन में गुजरात कम याद आता हो !

कस्तुर बा गांधी

रामायण की सीता की और महाभारत की द्रौपदी की कथा भारतवर्ष के एक छोर से दूसरे छोर तक किस आर्य गृह में ज्ञात न होगी? गौरी और सावित्री का व्रत रखनेवाली कन्यायें बचपन से ही इन्हें जानती हैं। सुख-दुःख में पति के साथ सहधर्माचार के सूत्र मंत्र रूप में बालाओं के कानों में फूँक दिये जाते हैं। स्व० कस्तुर बा का जीवन ऐसे ही सहधर्माचार के साक्षी रूप में हमारे सामने है।

कस्तुर बा में ज्ञान का आडंबर या वाक्‌पटुता नहीं थी। विद्वत्ता प्राप्त करने का कभी इन्होंने प्रयत्न नहीं किया। महात्माजी के पत्नी पद का गर्व इनके मुख पर कभी भी आभासित नहीं हुआ। गांधीजी के जयनाद सुनते-सुनते भी ये सीधी-सादी कस्तुर बा ही रहीं। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी इनकी पति-भक्ति विचलित नहीं हुई। उनकी विजय तथा गौरव में इन्होंने आधा हिस्सा कभी भी नहीं माँगा। गांधीजी की महानुभावता इनकी समझ में न आने पर भी इन्होंने केवल अचल श्रद्धा से ही उनका अनुसरण किया है। फरियादों की गर्म उसाँसों से इन्होंने अपने पति को कभी भी नहीं झुलसाया।

बिना विद्वत्ता के ही इन्होंने बापू का जीवन-कार्य समझ लिया था, और बापू केजेल में रहने पर भी ये सरल भाव से इनके हृदय में जो कुछ था करती रही हैं।

कस्तुर बा ने आज तक कुछ कम त्याग नहीं किया। बचपन से ही दृढ़ हुई कितनी ही धारणाओं को तिलांजलि देते हुए इन्हें बड़ा भारी

मानसिक कष्ट सहन करना पड़ा होगा। दक्षिण अफ्रीका के महान् युद्ध में सर्वस्व होम करते हुए भी इन्होंने पीछे मुड़कर नहीं देखा। भारतवर्ष में चलनेवाले आधुनिक महान् आंदोलन में पति और पुत्रों को जेल में विदा करते हुए भी इन्होंने अपार धैर्य रखा है।

कस्तुर बा अर्थात् सौम्यता की मूर्ति। बापू के संन्यास आश्रम सदृश गृहस्थ संसार का भार इन्होंने अत्यन्त धैर्य से उठाया। गृह संसार के छोटे-मोटे काम करते हुए इन्होंने श्रम को तनिक भी नहीं गिना। इनकी सादगी के लिए तो क्या कहें। सीधी-सादी मिसेज गांधी की पदवी से तो रानियाँ भी ईर्ष्या कर सकती हैं। बापू की तरह कस्तुरबा की ओर भी लोगों ने सदैव पूज्य भाव ही प्रदर्शित किया है। वह इनकी विद्या या ज्ञान पर मुग्ध होकर या इनके कार्य शक्ति पर मोहित होकर नहीं, बल्कि स्वामी की छाया सदृश पत्नी की अविचल श्रद्धा तथा आत्म-समर्पण के कारण ही।

केवल एक ही गुण की सफलता से जीवन कितना महान् हो सकता है।

श्रीमती सरोजनी नायडू

भारतवर्ष के शिक्षित वर्ग में श्रीमती सरोजिनी देवी का नाम न सुना हो ऐसे बहुत थोड़े व्यक्ति होंगे। पूज्य गांधी जी ने इनको 'बुलबुल' की उपाधि दी। स्वयं धारण किये हुए उपनाम में तो ये मोहन की बाँसुरी बनी हैं। मीराबाई होने से भी ये नहीं चूकीं। इनके कंठ से निकलती हुई अस्खलित वाग्धारा पर जनता मुग्ध हो गई थी। भारत में किसी भी भारतीय नारी ने इनका सा स्थान प्राप्त नहीं किया।

इनके ग्रहों के सुयोग से इनकी गिनती सदैव भारत के बड़े आदमियों के साथ होती है। गोखले युग में ये उनकी मित्र थीं। जिन्ना युग में ये उनकी भी परम मित्र थीं, गांधी युग में गांधीजी की भी हो सकी हैं। सभी युगों के नक्षत्र मंडल में इनका स्थान सदैव अक्षुण्ण रहा है। और बाँसुरी सदृश मधुर स्वर से ये देश-कार्य में अपना सहयोग देती रहीं।

कलापी के पंखों के चित्र-विचित्र रंगों सदृश ये आकर्षक थीं। नृत्य के समय अतीव मनोहर लगने वाली कलापी की कला की तरह मुग्ध कर देतीं। इनका विनोद परिस्थितियों के अनुकूल नवीन स्वरूप धारण कर लेता था। अपनी चाल-ढाल में, रहन-सहन में इन्होंने कवित्वमय होने का अधिक प्रयत्न किया।

देवी सरोजिनी स्त्री कवि थी और कविता सुन्दर लिख सकती थीं। अंग्रेज़ी भाषा पर इनका अधिकार सबको चकित कर देता था। देश-सेवा के सामने इन्होंने पारिवारिक सुख की लालसा नहीं रखी। इनके

व्यवहार से, इनका स्थान कहाँ है यह ये जानती थीं, यह तुरन्त जाना जा सकता है।

सौंदर्य-पूजा की इनमें तीव्र उत्कंठा थी और शोभा के प्रति रुचि! बहुमतवाद की समर्थक होने पर भी इनमें अमीरों की-सी अहंभावना पूर्ण रूप से थी। मनुष्यों के सामान्य विकारों से इन्हें रहित नहीं कहा जा सकता। जिस प्रकार स्थूल शरीर के अवयव भी स्थूल होते हैं, उसी प्रकार क्या बड़े आदमियों के दुर्गुण या सद्गुण भी बड़े नहीं हो सकते?

जहाँ शिष्टाचार की परख होती हो वहाँ ये सुन्दर और सरस शिष्टाचार प्रदर्शित करतीं। जहाँ छटा की परख हो वहाँ छटादार बनकर रहतीं, परन्तु अंधे के आगे दर्पण की तरह उनका व्यर्थ उपयोग नहीं करती थीं।

ये व्यवहार-दक्ष और कार्य-निपुण थीं। चातुर्य का उपयोग क्षण-क्षण में करतीं। लोक-भाषा में कहें तो 'पहुँची हुई' थीं।

दूर मंदिर में बजते हुए घंटों की ध्वनि की तरह इनके कंठ की स्वर-लहरी ने तथा साथ-साथ बहते हुए इनके शब्द-प्रवाह ने बहुतों को मुग्ध किया होगा। परन्तु अब इनका स्वर पहले जैसा मधुर नहीं रह गया था।

इनके प्रत्यक्ष और परोक्ष विचारों में महान् अंतर था। कभी-कभी निर्जीव बातचीत में विचार भी निर्जीव ही आते होंगे।

सौ० सरला देवी अंबालाल साराभाई

आर्य जगत् में स्त्री-जीवन का आदर्श गृहिणी है। कुमारिका सरस्वती या संन्यासिनी मीरा का कीर्ति-गान संसार करता अवश्य है, पर अपवाद रूप में। इस आदर्श की सिद्धि के लिए हिंदू-संसार की प्रयोगशाला में नित्य नये प्रयोग होते आये हैं और होते रहते हैं। उनके स्वतंत्र व्यक्तित्व का ध्यान हमारे संसार को नहीं है यह बात नहीं, परन्तु गौण रूप में है, इतना तो स्वीकार करना ही पड़ेगा। इनके सहचार का लोभ आर्य संसार ने और भी अधिक रखा है।

सरला बहिन इस आदर्श के बहुत पास दिखाई देती हैं। श्री अंबालाल भाई को गृहसंसार के चलाने में और बाह्य जगत् की उपाधियों को तुच्छ बनाने में सरला बहिन जैसी पत्नी की मदद उनके भाग्य की उत्कर्षता का ही सूचक है। अपने भर्ता की ये प्रियतमा भार्या हैं, अपने बालकों की ये प्यारी मीठी माँ हैं और अपने मित्रों के जीवन में रस उँड़ेलनेवाली ये आदर्श आर्या हैं।

हमारे यहाँ बालकों के जीवन के प्रति अपने कर्तव्य का पूर्ण रूप से ध्यान रखनेवाले सरला बहिन और अंबालालभाई जैसे थोड़े ही माता-पिता होंगे। इनके सुशील, निरोगी और सुन्दर बालक किसी को भी मुग्ध कर लें, ऐसे हैं। धनी लोग तो बहुत हैं परन्तु उनके बालकों को मध्यम वर्ग के बालकों जितनी भी शिक्षा नहीं मिल पाती। उन्हें सभ्य और सुसंस्कृत बनाना अधिक महत्वपूर्ण बात नहीं मानी जाती। धन-वैभव में पले हुए ये संस्कारहीन बालक जंगल के पौधों की तरह बढ़ते हैं और

सूख जाते हैं। सरला बहिन के बालक अपनी माँ के श्रम और पिता की सावधानी के सुन्दर परिणाम हैं।

सरला बहिन इनके गृह राज्य की सम्राज्ञी हैं। इनकी सुव्यवस्था करने की तथा रक्षा करने की शक्ति, मित्रों के प्रति ममता, अपरिचित व्यक्तियों के साथ स्नेहमय व्यवहार किसीको भी आकर्षित करने जैसे गुण हैं। इनके मीठे—अमृत वर्षा करनेवाले—नेत्र इनके प्रति सहज में सम्मानभावना उत्पन्न कर देते हैं। व्यवस्था की रचना करनेवाले, शांति की स्थापना करने वाले और सुवास का प्रसार करनेवाले स्त्री-जीवन का आदर्श इन्होंने बहुत अंशों में सिद्ध कर दिया है। ध्रुव तारा की तरह इनका जीवन बहुतों को दिशासूचक बन सकता है।

श्रीमती अतिया बेगम

गाढ़ रात्रि में विद्युत् की चमक कितनी प्रिय लगती है ! उसकी क्षणिक चमक विस्मय पैदा करनेवाली होती है, परन्तु वह रजनी के अंधकार को और भी प्रगाढ़ बना देती है।

श्रीमती अतिया बेगम अर्थात् चमकती हुई एक विद्युत्-रेखा ! इनकी आँखों में चमक, इनकी वाणी में चमक, इनके व्यवहार में भी चमक है। इस चमक में क्षण भर की कोमलता भी अवश्य है।

अतिया बेगम वाग्जाल का प्रसार बड़े सुन्दर ढंग से करती हैं। लोग इनके वचनामृत-प्रवाह को विस्मयपूर्वक देखते रह जाते हैं। इस प्रवाह में दूर-दूर की बहुत सी वस्तुएँ तैरती चली आती हैं।

अपने मस्तिष्क के संग्रह स्थान में ये बहुत से विस्मयों को एकत्रित करती रहती हैं और अवसर पर प्रसंगानुकूल उनका प्रदर्शन भी खूब आडम्बरपूर्वक करती हैं। संगीत इनका प्रिय विषय है। साहित्य में भी इनकी प्रवीणता का पार नहीं। दर्शनशास्त्र में तो ये अपने को अद्वितीय ही समझती होंगी। प्रजा-जीवन में (जब ये भाग लेती थीं तब) अपने को आधार रूप ही मानती होंगी।

एक ही मुख से ये अनेक प्रकार के सूक्त पढ़ सकती हैं। इनकी सौंदर्य-प्रियता इनकी सादगी के आडम्बर से ढँक नहीं पाती। अवसर-अवसर पर ये देशी, विदेशी तथा स्वदेशी इस प्रकार अनेक रूपों से बहुरूपी दिखाई देती हैं। इनके व्यंग्य से कदाचित् ही कोई बच पाता हो।

संसार में सदैव छोटे आदमियों के कार्यों से बड़े आदमी यश पाते

हैं और पायेंगे। समुद्र की मत्स्य-सृष्टि अथवा वायुमंडल में जीवित जन्तु-सृष्टि से हम मनुष्य भी किसी प्रकार कम नहीं हैं। अन्तर केवल प्रमाण का है।

इनके नाम ने इनके कार्यों तथा गुणों को और भी महान् कर दिया है। किसी राज में या राजतंत्र में यदि ये होतीं तो इन्हें वहाँ इनके अनुकूल क्षेत्र मिलता। इस क्षेत्र में इनकी अधिक प्रतिष्ठा होती और उसमें ये बहुत उन्नति कर सकती थीं, यह निस्संदेह है। इन्होंने केवल एक ही भूल की है—सीधे मनुष्य की सीधी लड़ाई में भाग लेने की।

केवल भ्रूभंग या स्मित से ही कार्य सिद्ध करने की शक्ति इनमें है। मुख से भाव-परिवर्तन में भी इनकी कुशलता छिपी नहीं रहती। इनके विषय में कम से कम यह तो कहा ही जा सकता है कि ये महत्वाकांक्षिणी हैं।

इनमें स्फूर्ति है। इनसे कुछ भी किये बिना शांति से बैठा नहीं जाता। इनके साथ वार्तालाप करते हुए किसी को बोलने का अवसर बहुत ही कम मिल पाता है। सब विषयों में निष्णात होने का इनका दावा है। अपने अतिरिक्त दूसरे की बुद्धि में इन्हें अधिक श्रद्धा नहीं होती। इनके देशाटन ने इनकी बुद्धि को और भी चमका दिया है।

इब्सन की "New Woman" भी पूर्णतया इनके जैसी नहीं है!

सौ० विजयागौरी कानुगा

देश-कार्य में उलझे हुए कितने ही स्त्री-पुरुष आजकल बहुत सुन्दर कार्य कर रहे हैं। यदि इन्हें अवसर न मिला होता तो ये जहाँ थे वहाँ से एक पग भी आगे न बढ़ सकते थे। जंगल में खिल कर मुर्झा जाने वाले सुगंधित पुष्पों की तरह उनकी सुगंधि से संसार अनभिज्ञ ही रह जाता। कितनी सरिताओं का जल व्यर्थ बह जाता है। कितनी स्त्रियों के जीवन उनके घर की संकुचित दीवारों के बीच समाप्त हो जाते हैं। केवल उन्हें अवसर ही मिला होता!

सौ० नन्दुबहिन आज इसी प्रकार के उदाहरण रूप में हमारे सामने हैं। एक समय अहमदाबाद की 'घरघुसनी गृहिणी' की उपमा इनमें सार्थक होती होगी। व्यवहार में इनकी कुशलता के विषय में दो मत नहीं हो सकते। आज ये देश-कार्य में संलग्न हो अपनी व्यवस्था-शक्ति का लाभ अहमदाबाद के स्त्री-मंडल की संस्थापना करने में दे रही हैं। एक बार कार्य आरम्भ करने पर उसे पार उतारने की लगन इनमें बहुत है। ये 'आरम्भ शूरा' नहीं। इनकी शक्तियाँ मर्यादित हो सकती हैं, यह माना, परन्तु एक बार आरम्भ करने पर ये कदाचित् ही थकती हों।

कितने ही कामों में दूल्हे की बुआ बनकर फिरनेवाली कितनी ही बहिनों जैसा अविवेक या अविनय इनमें नहीं है। 'मैंने बहुत कुछ कर दिया है' यह सोच कर ये कभी फूल नहीं उठतीं।

इनकी कार्य-तत्परता, इनकी सेवा-परायणता और धैर्यशीलता तीव्र प्रभाव डालनेवाली हैं। अपने कार्यों से ही इन्होंने अपना सिक्का जमा लिया है।

श्रीमती अनसूया बहिन

भारतवर्ष के राजकीय प्रकरण में संलग्न सभी व्यक्ति 'मजदूरों की माता' समझी जानेवाली अनसूया बहिन के नाम से कदाचित् ही अपरिचित होंगे। इनकी एक संक्षिप्त रूप-रेखा यहाँ देना अनुचित न होगा।

श्रीमती अनसूया बहिन एक धनी परिवार की पुत्री हैं। देखने में जाज्वल्यमान तथा धनाढ्यता के सभी गुणों से युक्त हैं।

इनके प्रारंभिक जीवन में स्त्री-जीवन की पराधीनता इन्हें बहुत खली होगी। इनकी उग्र और स्वतंत्र प्रकृति को चाहे सोने का भी क्यों न हो, पर पिंजरे में बंद पक्षी का-सा जीवन बहुत नहीं रुचा होगा। अब तो इन्होंने सेवा की शृङ्खला स्वीकार कर ली है।

किसी समय डाक्टरी का अध्ययन करने ये यूरोप गई थीं, पर दुर्भाग्यवश उसे समाप्त नहीं कर सकीं। परन्तु वहाँ दो वर्ष रहने से वहाँ की स्त्रियों की कार्य-शक्ति का प्रभाव इन पर पड़ा।

अनसूया बहिन में इच्छा-शक्ति की अपेक्षा व्यवस्था-शक्ति कम है। परन्तु इनके मित्र इनकी इस अपूर्णता को प्रकट नहीं होने देते। इन्द्रधनुष सदृश अनेक कार्य रूपी रङ्गों से रञ्जित इनका जीवन बहुत आकर्षक है। बहुत से कामों में ये रस लेने का प्रयत्न करती हैं। परन्तु इनका उत्साह चिरस्थायी नहीं होता। ये अपने चमत्कार से चकाचौंध कर सकती हैं; पर स्थिर नहीं रह सकतीं।

स्त्री-हृदय के स्वाभाविक भाव भी इनमें होंगे पर इनका बाह्य दर्शन कभी-कभी होता होगा। इनके पास साधन हैं और साधनों के परिणाम-

स्वरूप शक्ति है। इनमें स्त्री के गुणों की अपेक्षा पुरुष के गुण अधिक हैं। मित्र रूप में कदाचित् ये अधिक कोमल हो सकती होंगी, पर स्त्रियों के साथ इनकी मैत्री भाग्य से ही हो पाती है। स्त्री-जीवन में ये उतनी ही रुचि रखती हैं जितनी इनके कार्य को अपेक्षित हो।

महात्माजी की प्रथम स्त्री-अनुयायी की पदवी ने इन्हें दो वस्तुएँ दी हैं—प्रतिष्ठा तथा कुछ अंश में स्थिरता। इनका साहस सराहनीय है।

गुजराती स्त्री वर्ग में से राजनीति की ओर झुकने वाली ये सर्वप्रथम महिला थीं। इससे पहले इस दिशा में स्त्रियों के प्रयत्न अवकाश का सदुपयोग या प्रकाश में आने के साधन रूप ही थे। परन्तु इन्होंने जितना और जो कुछ किया है उसके लिए हमें उपकार मानना ही चाहिए।

गुजराती स्त्रियों को यदि साधन मिलें और उनकी महत्वाकांक्षाओं को पोषित किया जाय तो गुजरात कितनी स्वतन्त्र स्त्रियां को उत्पन्न कर सकता है !

सौ० विद्यागौरी नीलकंठ
और
सौ० शारदा बहिन मेहता

कितने ही व्यक्तियों को देखकर अपनी पुरानी कहावत याद आ जाती है—'इसने तो परमेश्वर को पाँचों उँगलियों से पूजा है।' सौ० विद्या बहिन या सौ० शारदा बहिन को जब देखती हूँ तो ऐसा ही लगता है।

इनका पहला सद्भाग्य तो यह है कि ये नागर जाति में पैदा हुईं। दूसरा सद्भाग्य सुधारक पिता की पुत्री होने का है। इसी कारण इन्हें सुयोग मिले। तीसरी विशेष महत्व की बात यह है कि ये महिलाएँ गुजरात की प्रथम 'ग्रेजुएट' थीं। इसके बिना इनका विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। चौथी विशेषता है अनुकूल और उदार भावनाओं वाले पतियों की पत्नी होना। अभी तो इनके बहुत से सद्भाग्य गिनाये जा सकते हैं, परन्तु इतने भी कुछ कम नहीं।

एक से संयोग मिलने पर भी दोनों बहिनों का एक से तत्वों से ही निर्माण नहीं हुआ। विद्या बहिन को महत्वाकांक्षी, बुद्धिमान, व्यवहार-कुशल कहा जा सकता है और शारदा बहिन मधुर, स्नेहशील तथा भावना-प्रधान अधिक हैं। विद्या बहिन की आँखों में सौजन्य के साथ कठोरता का मिश्रण है और शारदा बहिन के नेत्र अमृत वर्षा करते हैं। परन्तु इनका उपयोग ये चतुराई से करती हैं। यदि आपको यह अमृत चाहिए तो पहले उसे प्राप्त करने की योग्यता आपको सिद्ध करनी होगी।

सौ० विद्यागौरी नीलकंठ और शारदा बहिन मेहता

क्या आप लेखक या कवि हैं ? क्या आपकी कविता ने जनता के हृदय को हिला दिया है ? अथवा आप संस्कारी रसज्ञता का दावा करने वाली सम्पन्नता के अधिकारी हैं ? यदि आप प्रथम पंक्ति के हैं, तो बहुत अच्छा है। दूसरी पंक्ति के हों तो भी ठीक है और यदि कुछ भी नहीं हैं तो इनके कार्य के प्रति आपकी सहानुभूति है—ऐसा प्रतीत हो—तो भी काम चल सकता है।

विद्या बहिन में कार्य-शक्ति और चपलता अधिक होगी तो शारदा बहिन की गति धीमी पर कभी न थकनेवाली होगी। आज की तरह जब स्त्रियाँ बाहर काम करने न आती थीं तब विद्या बहिन के कार्यों से गुजरात परिचित था। 'लेडीज क्लब' की संचालिका को मैं जानती हूँ, तब से ये थीं और हैं। वार फंड के लिए इनका किया हुआ श्रम कौन नहीं जानता ? अहमदाबाद में स्त्रियों की कौंसिल इनकी ही ऋणी है। स्त्रियों के लिए भाषण-माला की व्यवस्था करने में इन्हें बहुत आनंद आता है। छोटी-मोटी सभी प्रवृत्तियों में इनका प्रमुख स्थान है।

शारदा बहिन की सेवाओं से भी गुजरात अनभिज्ञ नहीं। महिला पाठशाला की अधिष्ठात्री की निष्काम सेवा, भगिनी समाज की प्रमुख और गोधरा की समाज सुधार परिषद् के प्रमुख का नाम गुजरात का शिक्षित वर्ग अवश्य जानता है। देश के कार्य में ये हमेशा रस लेती आई हैं; और बहुत सी प्रवृत्तियों को इन्होंने पाला-पोसा है और इन्होंने जितना किया है उतना गुजरात ने इनका उपकार भी अवश्य माना है।

समाज-सुधार तो बहुत अंशों में इन्हीं के परिवार द्वारा पोषित होता आया है। और ऐसा लगता है जैसे इस पर इनका पैतृक अधिकार हो। इनके परिवार के सदस्यों के बिना समाज-सुधार-परिषद् कदाचित् ही होती हो। इनके बिना समाज-सुधार इस दशा को कदाचित् ही प्राप्त होता। साधारण मनुष्यों को इनमें अपने परिवार के सदस्यों की-सी अनुभूति हो यह स्वाभाविक ही है।

विद्या बहिन और शारदा बहिन के स्वभाव में रईसीपन अधिक है। संसार में इस समय प्रजातंत्र की दुंदुभी बज रही है और इसके साथ सामञ्जस्य रखने का ये दोनों सदा से प्रयत्न करती आई हैं। अंग्रेजी में एक नारी के प्रति कहा हुआ वाक्य यहाँ उद्धृत करती हूँ—'She is born superior. It is not her. fault. It can not be helped.' (वह जन्म से ही उत्कृष्ट है, इसमें उसका दोष नहीं और इसका कुछ उपाय भी नहीं।) विद्या बहिन और शारदा बहिन भी हम से उच्च स्तरसार की भले ही हों, फिर भी हमारी नम्र आत्मा यही चाहती है कि यदि ये हममें से ही एक होतीं तो अधिक अच्छा होता।

विद्या बहिन की जनता के प्रति उदासीनता कौन दूर कर सकता है? जनता को भी इनकी यह उदासीनता अच्छी नहीं लगती, फिर भी बहुत सी वस्तुएँ निरुपाय होने पर भी निभानी पड़ती हैं।

विद्या बहिन में प्रभाव अधिक है और उसीसे ये प्रभावशाली लगती हैं। शारदा बहिन में आकर्षण अधिक है इसलिए तुरन्त ध्यान आकर्षित कर लेती हैं। अपनी मीठी ममता के कारण ये बहुतों की विश्राम स्थल बन गई हैं।

मेरे एक मित्र ने इनके विषय में एक बार कहा था, 'विद्या बहिन और शारदा बहिन दोनों एक साथ ही ध्यान में आती हैं—एक बीज के दो टुकड़े होने पर भी दोनों एक दूसरे से बिलकुल भिन्न हैं। परन्तु विभिन्नता होने पर भी एक दूसरे की पूरक हैं।'

भाग दूसरा

पार्वती

नगराज हिमालय की पुत्री पार्वती आर्य-जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। बालिकाएँ जब बड़ी होने लगती हैं तभी से सुन्दर वर और अखण्ड सौभाग्य के लिए पार्वती माता की प्रार्थना करने लगती हैं। शिव-भक्त भोलानाथ की स्तुति करते हुए उमा को भी प्रसन्न करने से नहीं चूकते। संस्कृत कवि नाटक लिखते हुए—'रूठी हुई पार्वती को मनानेवाले महादेव हमारी रक्षा करें'—यह कहे बिना नाटक आरंभ नहीं करते। कभी इनकी कल्पना अधिक ऊँची उठ गई तो जटानिवासिनी गंगा के विषय में बार-बार पूछती हुई पार्वती का चित्र चित्रित करते हैं।* छोटे बालकों को कहानियाँ सुनायी जाती हैं तो उनमें पार्वती जी किसी दीन ब्राह्मण का उपकार करने के लिए हठ करती हैं और फिर उन्हें शिक्षा देते हुए शिवजी की बात आये बिना नहीं रहती। आशीर्वाद देते हुए, 'शंकर-पार्वती की-सी अखंड जोड़ी बनी रहे!' मातामहियों के इन वचनों से किस पोती ने अपने कान पवित्र न किये होंगे? सृष्टि-प्रलय के अधिष्ठाता पिनाकपाणि को वश में रखनेवाली सीधी-सादी, भोली-भाली पार्वती की भीलनी के रूप में या कैलाश पर विहार करती हुई पार्वती की कल्पना करना कवि-हृदय का एक अनोखा आह्लाद है। इनके आस-पास भव्यता है और सादगी है; अपूर्वता है और एक आर्या की-सी निर्मलता। पार्वती इतनी पूजी जाती हैं, क्यों? इसलिए कि आर्य स्त्री के सभी भाव पूर्णतया तथा पूर्ण रूप से इनमें दिखाई देते हैं।

गले में सर्प और माथे पर भस्म मलनेवाले, श्मशान में रहने वाले

* विशाखदत्त का 'मुद्राराक्षस' नाटक इसी प्रकार आरंभ होता है।

और भूतों से घिरे हुए महादेवजी की अनन्य भाव से पति-भक्ति करने वाली गौरी में, चाहे जैसे पति में देवत्व की कल्पना करने वाली हमारी आर्य-भावना के पूर्ण रूप से दर्शन होते हैं। दक्ष प्रजापति के यहाँ यज्ञ में जाते समय हठ करनेवाली उमा में क्या हमारी स्त्रियों जैसी ही पीहर जाने की उत्सुकता के दर्शन नहीं होते ? पिता द्वारा पति का अपमान सहन न करनेवाली देवी में पातिव्रत का सात्विक क्रोध पूर्णरूप से प्रकट होता है। प्रेम के सूत्र में बँधे हुए भगवान् रुद्र से छोटी-छोटी बातों पर हठ करनेवाली भगवती पति की बाह्य महत्ता से अजान होने पर भी जीवन समर्पण कर निर्भयता और साहचर्य का अधिकार प्राप्त की हुई आर्य ललना की महान् प्रतिमा-सी लगती हैं। भील-कन्या के रूप में योगी के चित्त में निवास करनेवाली रसिकता की साक्षात् मूर्ति के समान लगती हैं। कठोर हृदयी पुरुष सदृश रुद्र को कोमल बनानेवाली पार्वती शक्ति का अवतार हैं। कठोरता में कोमलता की सृष्टि करने वाली नारी-शक्ति पर ही संसार का अस्तित्व है। पार्वती की इस शक्ति का उपयोग संसार जिस दिन भुला देगा उसी दिन प्रलयकाल समझिये।

परन्तु कहीं भी पार्वती शिवजी की शक्तियों के आविर्भाव रूप में नहीं दिखाई देतीं वरन् सदैव प्रेरक के रूप में ही दिखाई देती हैं। इसमें भी हमारी एक मान्यता का सूचन है। पत्नी पति पर शासन करने वाली नहीं, वरन् अदृश्य रूप से अपनी शक्ति का प्रदर्शन किये बिना ही प्रेरणा देनेवाली हो सकती है। इसी मान्यता पर आर्य सृष्टि का निर्माण हुआ है। और यदि नारियों का प्रेरणा-बल समाप्त हो जाय तो कदाचित् ही टिक सके।

पार्वती का एक चित्र कुमारसंभव में है। जिसे महिषासुर-मर्दिनी के दर्शन करने हों, जिसे चण्डी की कल्पना करनी हो, जिसे शक्ति में इनके दर्शन करने हों, उनके लिए वहाँ खोज का स्थान है। वहाँ ये तीनों भुवनों की माता या तेजःस्फुलिंग विकीर्ण करने

वाली नहीं हैं, वहाँ तो ये एक सरल और भोली बालिका हैं। निर्दोष तथा सुकुमार मुग्धा हैं। वहाँ ये प्रेयसी हैं, नवोढ़ा हैं, गृहिणी हैं। पतिव्रता हैं। अनुकूल पत्नी हैं। वहाँ ये प्रताप-प्रसारिणी नहीं। योगी की अर्धांगना बनने योग्य कठोरता इनमें नहीं है। इनका आर्य-कुल की अधिष्ठात्री का पद हम अपने पूर्व संस्कारों के कारण ही वहाँ नहीं भूल पाते। ये तप करती हैं, वहाँ भी उग्र और दृढ़ तपस्विनी की अपेक्षा व्रत करने वाली गृहिणी ही अधिक लगती हैं। और यदि अधिक साहसपूर्वक कहें तो कहा जा सकता है कि जिन्हें, संस्कृत कवि भीरु उपनाम देते हैं वहाँ ये मनोहर सुन्दरी लगती हैं।

जाने क्यों, कुमारसंभव पढ़ते हुए ऐसा लगने लगता है कि इसमें कवि कालिदास ने पार्वती को कोई विशिष्ट गुण नहीं दिये। वहाँ ये सुन्दर तो हैं ही परन्तु यह सुन्दरता कवियों के निर्मित शब्दों में समाई जा सके ऐसी ही है—कीर जैसी नासिका और हरिण जैसे नेत्रों वाली ही पार्वती हैं, यह कहें तो अनुचित न होगा। संस्कृत साहित्य की यह विशेषता है। इस साहित्य में नायिकाओं के अपने व्यक्तित्व का विकास कदाचित् ही पाया जाता है। नायिका होने का प्रथम लक्षण सौंदर्य है, पर यह सौंदर्य कैसा भी हो यह नहीं हो सकता। जो इनकी बँधी हुई उपमाओं में न समा सके उसे सुन्दर कहने का अधिकार संस्कृत कवि दे सकेंगे या नहीं यह एक विचारणीय प्रश्न है।

संस्कृत कवियों की कल्पनाओं में तथा प्रसंगों में सर्वत्र एक सी बात ही पायी जाती है। संभव है, कदाचित् इसी कारण से महाकवि की पार्वती में कोई विशेषता न लगती हो। संस्कृत नाटकों में नायिकाओं का वर्णन, दंपति का प्रसंग, क्रीड़ाओं के वर्णन लगभग सभी जगह एक से ही हैं। उपमाएँ भी बहुधा परंपरा के अनुसार ही दी जाती हैं। नायिकाओं के वर्णन में, विरहावस्था, केलिप्रसंग तथा मिलन आदि के प्रसंग बहुत आते हैं। कभी-कभी संशय होने लगता है कि स्त्रियों को इन भावों के

अतिरिक्त दूसरे भावों के अनुभव करने का अधिकार भी था या नहीं! संस्कृत नाटकों की विरल ही कोई स्त्री तेजस्वी तथा प्रतापमयी दिखाई देती है। रसिक कवियों को जो प्रसंग अच्छे लगे उन्हीं पर लेखनी उठाई हो इस कारण से, अथवा उस समय की स्त्रियों के स्वभाव का दूसरी दिशा में विकास ही न हुआ हो इस कारण से, स्त्री-स्वभाव के इतने ही तत्व अमर हो पाये हैं। मालविका हो या सागरिका, मालती हो या ताप्ती य साक्षात् पार्वती देवी हों, परन्तु इन सब में स्त्रीत्व तो एक ही प्रकार का पाया जाता है। कवियों की देवी और मानवियों के बीच कुछ अधिक अंतर दिखाई नहीं देता। अच्छे कवि भी इस विशेष दोष से मुक्त नहीं हैं।

परन्तु संभव है, कुमारसंभव कवि कालिदास का प्रथम काव्य हो और इसीलिए कदाचित् परंपरागत प्रणाली से कविवर मुक्त न हो पाये हों। सरिता में नवीन जल की बाढ़ आ जाय तो वह गतिमान होने पर भी गँदला होता है। उसी प्रकार इसमें भी कवि-कल्पना की नवीन बाढ़ का जल निखरा नहीं है। इसमें एक अनुभवी कलाकार का हाथ नहीं है, वरन् आशाजनक उच्छृङ्खलता की छाप है। उस्ताद के यहाँ सीखकर निकले हुए एक नौसिखिये गवैये में जिस प्रकार अपने निजी व्यक्तित्व की अपेक्षा उस्ताद की छाप अधिक होती है, उसी प्रकार प्राचीन कवियों के अभ्यासी कविवर की रचना, कल्पना तथा कथन की शैली में अपनी छाप की अपेक्षा दूसरों की अधिक दिखाई देती है।

यदि पार्वती का चित्र निर्माण करना है तो जैसा चित्र इन कवियों ने चित्रित किया है वैसा हम नहीं कर सकेंगे। कवियों के लिए तो यह एक मनोहर काव्य का विषय है और हमारे लिए यह आर्यों के गौरव को प्रेरणा देने तथा उसकी रक्षा करनेवाली देवी हैं। शक्ति रूप में ये संपूर्ण संसार में व्याप्त हैं। पत्नी-भाव की ये साक्षात् मूर्ति हैं। असुर इनसे काँपते हैं। योगी इनसे बल प्राप्त करते हैं।

इनका ऐश्वर्य सबसे निराला है; इसलिए इनकी तुलना किसीसे नहीं की जा सकती। योगी की विभूति इनका अंगराग है। सर्पों के साथ ये खेलती हैं। प्रियतम के मस्तक पर विराजमान चन्द्रलेखा इनके मुख की कांति में और भी वृद्धि कर देती है। जगत्‌वन्द्य मंदाकिनी इनके स्वरूप से लजा कर जटा में ही छिपी रहती हैं। अवधूत के चित्त पर इनका एकाधिकार है।

पार्वती अर्थात् बुद्धि के स्तर पर विचरण करने वाली सखी नहीं, पर भावनाओं द्वारा राज्य करने वाली पत्नी हैं। ये तर्क नहीं जानतीं। बुद्धि की संकीर्ण वीथिकाओं में ये कभी उतरतीं नहीं। संसार के आदि से अंत तक ये केवल एक पति के नाम का जप करती हैं। पति द्वारा अथवा पति के लिए ये सभी वस्तुओं में रस लेती हैं। इनके ध्यान में इतनी एकाग्रता है कि वे इसके बल पर बहुत सी दुर्लभ वस्तुएँ सुसाध्य बना लेती हैं।

पार्वती अर्थात् मूर्तिमान् आर्य स्त्री। भाग्यवानों के घर में पार्वती का अंश सदा से अवतार लेता आया है। एक लता की तरह ये वेष्टित हो जाती हैं। श्रद्धा का प्रभाव डाल कर स्थान दृढ़ करती हैं। इनकी नम्रता ही इन्हें रक्षा और पूजा का पात्र बना देती है। इनके छोटे तप मिलकर योगियों के तप से कुछ कम नहीं होते।

स्त्रियों के विषय में जब बातें होती हैं तो उनके सौंदर्य के विषय में भी विचार आये बिना नहीं रहता। फिर चाहे वह देवी हों या मानवी। मेधा की तीखी तलवार से पुरुष सुशोभित होता है। और स्त्रियाँ सौंदर्य प्रदेश की साम्राज्ञी हैं। यदि सौंदर्य को सौंदर्य की तरह देखा जाय तो इसके द्वारा मानव दिव्य दर्शन कर सकता है। हमें सौंदर्य की अपेक्षा है: उसके प्रभाव से हम मुक्त नहीं हो सकते; फिर भी इस भावना में हमने आध्यात्मिक बल नहीं दिया। जड़ जगत् के सौंदर्य में मनुष्य संकोच-रहित होकर आनन्द ले सकता है; किन्तु चेतन के सौंदर्य-दर्शन में हमें

अधःपतन दिखाई देता है। देवताओं के आकार-प्रकार की हमने सुन्दर कल्पान की है फिर भी इनकी मूर्ति में हम वह सुन्दरता प्रतिबिंबित नहीं कर पाये। कभी-कभी क्षणभर के लिए मैं सोचने लगती हूँ कि सौंदर्य-दर्शन की इस दुर्बलता ने हमें निरोगी नहीं रहने दिया।

परन्तु जिन आर्यों ने जड़ तत्वां में भी भव्यता और देवत्व की कल्पना की और उसमें से निर्झरित सौंदर्य-जल का पान किया है, उनकी दृष्टि चेतन के सौंदर्य-दर्शन में क्यों उलझती होगी?

सौंदर्य के बिना भव्यता कहाँ पाई जा सकती है? आकाश भव्य लगता है, क्योंकि विविध रंगी सौंदर्य का अस्तित्व वहाँ है। प्रकृति भव्य लगती है, क्योंकि बहुरंगी सौंदर्य वहाँ चारों ओर बिखरा पड़ा है। रात्रि भव्य लगती है, क्योंकि सौंदर्य की दीप्त रश्मियों से वह देदीप्यमान बनी हुई है। गिरीकंदराएँ भव्य लगती हैं, क्योंकि निरी सुन्दर उनमें प्रत्यक्ष रूप में मूर्तिमान है। इस सुन्दरता को पूर्णता भी कहते हैं। परन्तु नाम बदलने से इसका स्वरूप नहीं बदलता।

देव या मानव के आदर्शों की स्थापना करनी हो तो उन्हें आकार-प्रकार दिये बिना काम नहीं चलता। आत्मा की सुन्दरता के प्रमाण में देह की सुन्दर कल्पना करने लगते हैं, यह एक मानव स्वभाव है। इस नियम का अनुकरण करते हुए हम पार्वती के सौंदर्य की कल्पना कर सकते हैं।

पार्वती का गौरव लक्ष्मी से भिन्न प्रकार का लगता है। जन्म-जात श्रीमंत और अपने गुणों से उन्नत स्थान पर पहुँचे हुए महापुरुषों की पत्नियों में जो अंतर होता है वैसा ही अंतर इन दो महादेवियों के बीच भी लगता है। लक्ष्मीजी का विचार करते हुए उन्हें यदि मानुषी रूप दें तो सुन्दर और मितभाषिणी, प्राचीन वंश में पैदा हुई, स्वाभाविक संस्कारिता का प्रदर्शन करती हुई, धीमी पदगति में भी स्वाभाविक लालित्य का भास कराती हुई, जिसे अंग्रेजी में 'luod' कहते हैं, ऐसे किसी प्रकार

के कृत्रिम प्रदर्शन से रहित होने पर भी अपने गर्वीले वैभव का बड़ी सुन्दरता से प्रदर्शन करती हुई, सादगी के अवगुंठन में शोभा का भास कराती हुई, बाह्य जगत् के दुःख की अज्ञानता से संतोषी और सुखी दिखाई देती हुई किसी श्रीमंत की पत्नी का चित्र आँखों के सामने खड़ा हो जाता है। पार्वती का चित्र इनसे भिन्न है। दरिद्रता और दुःख जिसने देखे हों ऐसे महापुरुष की ये पत्नी हैं। संसार जिनसे थरथर काँपे ऐसे महायोगी की ये अर्धांगिनी हैं। बाल्यावस्था में श्रीमंत पिता के यहाँ इन्होंने सुख भोगा है, इसलिए ये इससे बिलकुल अनभिज्ञ नहीं। स्त्री-सुलभ रसिकता का अनुभव ये कैलाश के शिखरों पर विचरण करते समय अवश्य करती होंगी। इनकी गर्वरहित सुन्दरता में एक प्रकार की अभिनवता तथा प्रफुल्लता भी अवश्य होगी। परन्तु इन्हें देखकर मनुष्य मुग्ध ही नहीं होता, वरन् सम्मान अर्पित करने की इच्छा भी करता है। इनकी सुन्दरता प्रभावित करती है, परन्तु पास आने को प्रेरित नहीं करती। लक्ष्मी की-सी सुन्दरता दूर नहीं जाने देती। पार्वती में लक्ष्मी-सी तड़क-भड़क न हो, पर उदारता तथा अंतर की सुधा तो अवश्य ही अधिक प्रमाण में होगी।

आर्य हृदय में पार्वती का स्थान किसी भी देवता से न्यून नहीं है।

पद्मिनी

चंद्रमौलि के तपस्तेज की तरह आर्य ललनाओं का हृदय-तेज भी संसार का संरक्षण करने के लिए है और जब सात्विक क्रोध जाग उठे तब संहार करने के लिए है। आर्य स्त्रियों का चारित्र्य-बल अग्नि की तरह प्रज्वलित होता है। उसकी गर्मी से विश्व में जीवन संचार होता है। उसे कोई छेड़ दे तो दावानल की तरह उसकी प्रचंड शक्ति आहुति माँगती है—अपना तथा दूसरे का—दोनों का विध्वंस कर डालती है।

सती शब्द में निहित आदर्श, आर्य-जीवन का दूर का ध्येय नहीं पर प्रतिदिन के जीवन-क्रम की एक आवश्यक वस्तु है। सतीत्व आर्यों के लिए, जीवन जितना ही पवित्र उससे भी बहुमूल्य तथा अमूल्य है। सतीत्व के उपवन की रक्षा के लिए बाँधी गई बाड़ों में झाड़-झंखाड़ बढ़ गये हैं यह सच है, परन्तु वन्य पशुओं से जितना संरक्षण आर्य-संसार में हुआ है उतना पृथ्वी की दूसरी जातियों में सुरक्षा के रूप में भी नहीं हुआ।

कितने ही देशों में कला का विकास स्थूल उपभोगों की सामग्री बढ़ाने के लिए होता है। भारतीय जीवन में यह विकास मानव जीवन के अंतस्तल में निहित सूक्ष्म सत्व का साक्षात्कार करने के लिए होता है। कुछ देशों में सुन्दरियों का सौंदर्य संसार की महत्वाकांक्षाओं को प्रेरित करनेवाला या उन तक पहुँचने का साधन मात्र होता है। हमारे देश में इसी सौंदर्य की ज्योति अखंड और सुरक्षित रखने के उत्साह में पराक्रम और स्वार्पण-शिक्षा की पाठशाला बन जाती है। कहीं-कहीं सौंदर्य उपभोग

की वस्तु माना जाता है। हमारे यहाँ यह सौंदर्य वस्तु-मात्र नहीं, वरन् विभूति है।

चित्तौड़ की वीरांगना पद्मिनी की जीवन-कथा इन दो आदर्श या दृष्टिकोणों के पारस्परिक कलह की कथा है। एक जाति में सौंदर्य स्वामित्व की वस्तु था और उसे उपभोग के लिए प्राप्त करना पुरुषत्व का जन्मसिद्ध अधिकार माना जाता था और दूसरी जाति में प्रभु के दिये हुए प्रसाद रूप इस सौंदर्य की उज्ज्वलता में कहीं धब्बा न लगे इसके लिए प्राणार्पण करना ही आदर्श था। प्राण-रक्षा करना नहीं, परन्तु प्राणवान् होना ही अधिक महत्वपूर्ण था। इसकी गौरव-गाथा प्राणवान् होने की तत्परता से ही अमर हो गई है।

असामान्यता किसी भी विशिष्ट गुण के साथ जुड़ी होती है। आदर्श के लिए मिट जाना या मिटा देना यह प्रत्येक ओजस्वी आत्मा का संकल्प होता है। सतियों के सत्यव्रत और वीरों के देह-विसर्जन, इन दोनों के पीछे एक सी ही मनोदशा बहुत कुछ अंशों में पाई जाती है। पद्मिनी भी एक ऐसी ही अपूर्व स्त्री थी। वहाँ के वीरों का पुरुषार्थ भी अक्षय था। वसुन्धरा में एकत्र हुए सभी सौंदर्यों का सार रूप सुकुमार और अद्भुत देहलता को अग्नि में विसर्जन करते हुए वह काँपी नहीं। समृद्धशाली चित्तौड़ को श्मशान बनाते हुए वहाँ के किसी वीर की आत्मा विचलित नहीं हुई थी।

सौंदर्य और सतीत्व का संगम विरल होता है। और इसीलिए इनकी यशोगाथाएँ काल-प्रवाह जितनी भी पुरानी होने पर भी सदा नवीन ही रहती हैं। राष्ट्र के भविष्य का निर्माण भी इस नूतनता के अस्तित्व पर ही आधारित है। पद्मिनी की कथा की सुगंधि आज भी हमें आकर्षित करती है, क्योंकि यह भी सौंदर्य और सतीत्व के संगम की विरल कथा है।

इस अपूर्व सुन्दरी का चित्र चित्रित करते समय आज भी हम प्रमत्त

हो जाते हैं। हजारों योद्धाओं में मृत्यु का मोह जाग्रत करने वाली यह मनोरम रूपवती योगमाया आज भी हमें विस्मित कर देती है।

वह कैसी होगी ? भगवान् शंकर की चंद्रकला सदृश नम्र फिर भी अप्राप्य या बाल सूर्य जैसी कोमल होने पर भी तेजस्वी थी ? पुष्प के पराग सदृश मृदु तथा मत्त बना देनेवाली या वनस्पति-सी मादक और उत्तेजित करनेवाली थी ? वीणा का-सा उसका स्वर आत्मा में प्रवेश कर कुछ दिव्य-भाव जगा दे, ऐसा था अथवा रणवाद्यों का-सा उसका नाद वीरों को युद्ध में उतरने की प्रेरणा देनेवाला ? केवल सौंदर्य और संयोग से अमर होनेवाली यह कोई अबला थी अथवा वीरों के हृदय को कँपा देनेवाली कोई शक्ति थी ?

अत्याचार करने के लिए तत्पर हुए मदमत्त दुराचारी को भ्रम में डाल देनेवाली योजना की विधायक यही थी। आशा के अंतिम पलों तक दृढ़ता से राह देखनेवाली तथा परिणाम की विधात्री भी यही थी। विजेता को पराजय की-सी लज्जा और शिथिलता का अनुभव कराने वाले इसीकी प्रतापी चिता के अवशेष थे ! जीते जी तथा मृत्यु पर्यंत भी यह अजेय ही रही !

वह केवल निर्बल और असहाय होने पर भी सौंदर्य के कारण ही पूजी गई प्रतिमा हो यह मानने से कल्पना इन्कार करती है। केवल सौंदर्य प्रेरणा देता है पर स्थिरता प्रदान नहीं करता। सौंदर्य की प्रतिमा की लोग रक्षा करते हैं पर अंतकाल तक उपासना करने के लिए तो जगदंबा की शरण में ही जाते हैं। अपना खप्पर भरने के लिए अवतरित हुई महामाया-सी वह अधिक लगती है।

परन्तु इसे अपने सौंदर्य का गर्व होगा या नहीं ? अपनी शक्ति को मापने की आकांक्षा होगी या नहीं ? अलाउद्दीन को दर्पण में दर्शन कराते समय उसने शृङ्गार किया होगा या नहीं ? अलाउद्दीन को धोखा देकर भीमदेव को छुड़ाते हुए उसे संतोष और अभिमान नहीं हुआ

होगा ? सम्राट् की अस्वीकृत रहने के लिये उत्पन्न हुई याचनाओं को देखकर वह आत्मसंतोष या सम्मानपूर्वक तिरस्कार की हँसी न हँसी होगी ? उन्मत्त प्रणयी विजेता बनकर जब उसे खोजने आयेगा तो चिता की राख से उसका गर्व किस प्रकार चूर-चूर हो जायगा इस विचार से इसकी आँखें न चमकी होंगी ?

सृजन शक्ति से मानवों में अभिमान की वृद्धि होती है, उसी प्रकार नष्ट करने की अथवा कराने की शक्ति से भी एक प्रकार का उन्माद उत्पन्न होता है। इसके हृदय की महत्ता ने इस सर्वनाश के कारण रूप अपने को समझ कर स्वयं पर धिक्कार की वर्षा की होगी; परन्तु उसके एक कोने में इस सर्वनाश की अधीश्वरी वह स्वयं है, इस विचार से प्रलय का स्मरण करानेवाले स्मित की रेखा भी दौड़ गई होगी। और उसी प्रकार इस नाश के ऐश्वर्य का विचार करती हुई पल भर का विलंब किये बिना, दुःख का एक निःश्वास भी मुख से निकाले बिना यह प्रसन्नमुखी महामाया चिता पर चढ़ गई होगी और अनेकों को चढ़ने के लिए आमंत्रित किया होगा।

जिस प्रकार का अभिमान आज गर्हित तथा तिरस्करणीय समझा जाता है, ऋषियों और आर्य पूर्वजों ने उसी अभिमान को रुद्र रूप में प्रतिबिंबित कर दिया था। प्रलय में भी तांडव नृत्य करें यह रुद्र की शक्ति तथा माया है। उसके अंशावतार मानव इस विनाश के विधाता बनते हैं, फिर भी उनका तेज क्षीण नहीं होता।

कमलिनी सी सुकुमार होने पर भी उसके हृदय से सम्राट के वैभव की कथा तुषारबिंदु की तरह ढलक जाती थी। वह पवन की तरह मनस्विनी होगी इसीसे तो उसके हृदय पर आधिपत्य स्थापित करना असंभव था। उसका कोकिल कंठ चित्तौड़ के अतिरिक्त दूसरे आम्रोपवन में गुञ्जरित होना स्वीकार नहीं करता था। उसके खंजन जैसे नेत्रों की

चपलता को स्थिर करने का सौभाग्य भीमदेव के रनवास को ही प्राप्त था।

चित्तौड़ के दुर्ग पर से, कठोरता से बंद किये हुए अधर दवाल पर लटकते हुए मोती से सुशोभित, चिंतातुर होने पर भी गर्वीली, यवन-समूह को दृष्टि के तीर से बींधनेवाली उस मानिनी के चित्र पर विचार करें तो क्या वह दृश्य आँखों के सामने खड़ा नहीं हो जाता ? उसके झरोखे की जाली से उसकी नन्हीं सी देहलता के प्रताप की सुरक्षा के लिए सज्जित वीरों की विदा को, दृग-पुष्पों से स्वागत करती हुई पद्मिनी का लावण्य अब भी ज्यों का त्यों प्रफुल्ल हो, ऐसा लगता है। छः शताब्दियों से अधिक बीत गईं। दूसरी अनेक शताब्दियों का जल भी इसी प्रकार बह जायगा, पर पद्मिनी की यशोगाथा का गान सदैव होता रहेगा और उसकी भक्ति में अमर हुए गोरा-बादल के पराक्रमों से दूनी उत्साहित हुई चित्तौड़ की वीर राजपूत-सेना के पराक्रम भी उतने ही चिरंजीवी रहेंगे !

जोन ऑफ आर्क

अज्ञानी होने पर भी ज्ञानियों को मात देनेवाली, अहीर पुत्री होने पर भी देश के सर्वोत्तम पद को सुशोभित करनेवाली, अबला होने पर भी बलवानों का मान मर्दन करनेवाली कुमारिका जोन के नाम से किसका हृदय भावसिक्त न हो जाता होगा! उसकी विजय-गाथा से हृदय हिल उठता है। उसके जीवन के करुण अंत से आँखों में आँसू छलछला आते हैं। उसकी शिशु-सुलभ सरलता अंतर को वशीभूत कर लेती है। राजनीतिज्ञों को लज्जित कर देनेवाला उसका विवेक प्रशंसा की भावना उत्पन्न कर देता है। जोन का जीवन उस अकेली का ही नहीं, वरन् संसार भर का है। उसकी शिराओं की धड़कन हममें भी कंपन ला देती है।

भेड़ों को चरानेवाली इस वनबाला ने सत्रह वर्ष की आयु में फ्रांस के सेनापति का महान् पद सुशोभित किया। और १६वें वर्ष में मानवों की—इसके देशजनों की—कृतघ्नता और उनकी स्वार्थपरता के कारण इसकी की महत्ता न समझते हुए, उसके प्रतिपक्षियों की निर्दयता के परिणाम-स्वरूप, इस बाला के कोमल शरीर की आहुति अग्निदेव को अर्पित की गई। किन्तु उसकी अडिग आत्मा अडिग और अविचल ही रही। संसार के अन्याय और बंधन जोन जैसी आत्मा को बाँधने के लिए कभी भी समर्थ नहीं हो सके।

जोन स्वभाव से युद्धप्रिय न थी। शत्रु अथवा मित्र पक्ष के किसी घायल सैनिक को देखकर उसके आँसू उमड़ आते और वह उसकी शुश्रूषा करने लगती। सैनिकों के कुटुम्बियों का विचार—कोई निराधार माता, या प्रतीक्षा करती युवती और सुन्दर पर दीन बालकों का विचार—उसे

तुरन्त ही आता था। यह उसकी दुर्बलता न थी। कौन सी युक्ति अथवा कौन सा वार शत्रु पक्ष के लिये सचोट होगा, इसका विचार भी वह उतनी ही शीघ्रता से कर सकती थी। मंत्रियों की सभा में उसके शब्दों की ललकार अनेकों की शंका-निवारण के लिए पर्याप्त थी। उसके सैनिकों में उसका उल्लास भरा शिशु सदृश मुखड़ा दर्शन मात्र से ही हजारों व्यक्तियों में श्रद्धा और उत्साह भरने में समर्थ था। उसके नाम मात्र से ही लोगों में आशा का संचार होता था। उसे देखना भी एक महान् पुण्य माना जाता था और उसके साथ बात करना तो जीवन का एक परम सौभाग्य और एक स्मरणीय प्रसंग समझा जाता था। और यह सब कुछ एक छोटी सी सत्रह वर्ष की बाला के लिए! इतिहास में जोन जैसी बाला अकेली है और अकेली ही रहेगी।

धनी मित्रों के कोलाहल में उसने अपने भेड़ चरानेवाले साथियों को भी भुलाया न था। घोड़ों की हिनहिनाहट में भी उसे अपने भेड़ों का स्वर याद आ जाता था। उसका बचपन का साथी परियों का वृक्ष उसे सदा घर लौट जाने के लिए उत्कंठित करता रहता। वैभव ने उसको भी आकर्षित न किया। इन सभी प्रिय वस्तुओं में अति प्रिय उसका देश था। इसी के लिए वह जीवित रही। परोक्ष उत्कंठाओं से उत्कंठित होने के समय अपने आह्लादों की आहुति उसने देश-कार्य के लिए ही अर्पित की और शत्रु को भी रुला दे ऐसी भयानक मृत्यु से मरी, वह भी देश के लिए ही। ऐसी केवल एक जोन ही थी।

मृत्यु को सम्मुख देखकर भी उसने अपनी स्वस्थता बनाये रखी थी। यमदूतों के समान न्याय का ढोंग करनेवाले विद्वान राजनीतिज्ञ भी उस बाला की बाल-बुद्धि को चकित न कर सके। उसके अटल विश्वास को हिला देना मानव-सामर्थ्य के बाहर की बात थी। उसके उत्तरों की अद्‌भुतता से शत्रु मुग्ध हो उठे थे। परन्तु जोन को उस न्याय के पाखंड से तब न्याय नहीं मिला। जोन! आज जगत् तेरी

वंदना करता है और संसार की महान् विभूतियों में तुम्हारा अनन्य स्थान कभी का स्वीकार कर लिया गया है।

संसार ने महान् आत्माओं का द्रोह करने में कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। उन्हें दुखी करना यह तो संसार का कुछ नियम सा ही रहा है। उसका प्रायश्चित उसे पग-पग पर करना पड़ता है, तो भी वह अपनी प्राचीन परंपरा से मुक्त होने के लिए जरा भी तैयार नहीं! महान् आत्माओं का बलिदान परंपरा की प्रथा हो गई है। जोन का बलिदान हुआ—फ्रांस को स्वतंत्रता मिल गई। आज तो उसकी यशोगाथा के संस्मरण मात्र ही अवशेष रह गये हैं।

महत्ता का प्रथम लक्षण देश के हृदय की नाड़ी-परीक्षा करना ही नहीं है, वरन् उसे ठीक दिशा-सूचन करना तथा वेग प्रदान करना भी है। जनता का हृदय परखनेवाले अपने समय में महान् हो जाते हैं, परन्तु अमरता प्राप्त नहीं कर पाते। जोन ने ऐसे मार्ग की ओर संकेत किया। फ्रांस की नस-नस में विजड़ित परतंत्रता के बंधनों को तोड़ने के लिए प्रजा आतुर हो उठी थी। परन्तु निर्बल राजा तथा विलासी कर्मचारी स्वतंत्रता के मार्ग की ओर ले जाने की अपेक्षा उसके अन्तराय रूप अधिक थे। प्रजा ऊब. गई थी—कोई मार्ग नहीं सूझता था। स्वतंत्रता की ध्वजा फहराने के लिए जोन आई और लोगों ने उसे मुक्तिदायिनी देवी समझकर पूजा। निर्बल राजा की निर्बलता उसने उतार फेंकी। हतोत्साह सैन्य में उसने उत्साह और व्यवस्था ला दी। विलासी अधिकारियों के विलास छुड़ा दिये। वर्षों से अंग्रेज़ों की अधीनता से निःसत्व हुई प्रजा में उसने चेतना का संचार किया और यह सब इस अद्भुत लड़की ने केवल थोड़े से महीनों में ही कर दिखाया।

उसकी आत्मा का ओज सदा ही अखंड रहा है। पशु सदृश सैनिकों के बीच रहकर उसकी पवित्रता किसी छोटे से दोष से भी दूषित नहीं

हुई। सत्ता और विलास का सुरा-पात्र उस देवी को उन्मत्त बनाने के लिए असमर्थ सिद्ध हुआ।

वह मधुर में मधुरतम थी। सौंदर्य का वह अवतार थी। युद्ध-नीति में वह पारंगत थी। श्रद्धालुओं की वह पूजा की पात्र थी। मित्रों में वह अनुपम थी।

आदर योग्य पुरुषों का वह आदर करती, राज-काज में निपुण व्यक्तियों की निपुणता से वह धोखे में न आती। वह स्वयं कपट न करती, पर दूसरे का कपट तुरन्त जान लेती थी। वह राष्ट्र को बचाने के लिए ही आई थी। वह आयी, एक गड़ेरियन की ग्राम्यता और घबराहट से युक्त नहीं, वरन् विधाता की निश्चल सत्ता से। उसे अस्वीकार करना अथवा उसका मार्ग रोकना दोनों ही शक्ति के बाहर की बात थी। इस महान् चक्र के सब आरे बन गये। उसकी अडिग इच्छा-शक्ति से फ्रांस जी उठा। ओरलीन्स की इस कुमारिका को फ्रांस आज भी कृतज्ञतापूर्वक याद करता है।

कल्पना देश के निरंकुश राज्य में जोन के समान दूसरी मूर्ति नहीं गढ़ी गई। सृष्टि की काव्य-पुस्तकों में जोन सदृश जीवित काव्य थोड़े ही लिखे गये हैं।

विश्व की रंगभूमि पर सत्ताधारी महारानियाँ तथा नयन बाण से वश में करनेवाली हृदय-रानियाँ बहुत पैदा हुई हैं। पति में ही मुक्ति के दर्शन करनेवाली पतिव्रताएँ सब देश तथा सब काल में दुर्लभ नहीं होतीं। समय आ पड़ने पर सिंहनियों की तरह गर्जना करती हुई क्षत्राणियों के युद्ध में जूझ जाने के उदाहरण भी अपरिचित नहीं। सब कलाओं में पारंगत हृदय-हारिणी मानिनी आज भी बहुत देखी जा सकती हैं। कल्पना में उड़नेवाली कवियित्रियाँ तथा देवबालाएँ भी मिल सकती हैं। यदि नहीं देखी जा सकती तो केवल बालक होने पर भी बलवान तथा ज्ञान न होने पर भी निपुण, एक जोन!

जोन ऑफ आर्क

उसने नयनों की डोर से पुरुष को नहीं नचाया। उसने सत्ता के रोब से किसी को पराजित नहीं किया और न शासन किया। स्वर्ग से उतर कर आई हुई देवी की तरह अपने पंखों के प्रकाश से उसने संसार को प्रकाशित कर दिया।

स्त्रियों के भाग्य में लिखे हुए पति या पुत्रों से प्रसिद्ध होने का सौभाग्य जोन को नहीं मिला। वीर-पत्नी अथवा वीर-पुत्री कही जाने से भी वह मुक्त है। जोन की कीर्ति-कथा तो केवल उसके कार्यों पर ही अवलंबित है।

उसकी निर्मल आत्मा में शत्रु के प्रति भी द्वेष पैदा नहीं हुआ। लोहे की बेड़ियाँ तथा अग्निज्वाला की आँच भी उसकी आत्मा को डरा न सकीं।

जोन भारत की स्त्री-रत्नों की पंक्ति को उज्ज्वल नहीं करती, पर फिर भी भारत के लिए किसी भी तरह कम आदरणीय नहीं है। जोन जैसी आत्माएँ एक देश की या एक काल की नहीं होतीं, वरन् सदैव ही इनमें से प्रेरणा के स्रोत बहते रहते हैं। भारत की सुनारियाँ यह प्रेरणा रूपी जल पीकर कितनी कृतार्थ हुई होंगी!

मिसेज मारगोट एस्क्वीथ

अंग्रेजी साम्राज्य के शिक्षित वर्ग में कदाचित् ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जो मि० एस्क्वीथ को न जानता हो। स्व० ग्लैडटन के शिष्य रूप में पार्लियामेंट में इन्होंने अपना कार्य आरम्भ किया था। सर केम्पबेल बेनरमैन के समय में यह कोर मंत्री थे। मि० लाइड जार्ज के प्रधान पद पर आने से पहले दस वर्ष तक यह अंग्रेजी साम्राज्य के प्रधान मंत्री पद के लिए एक के बाद एक तीन बार सफल हो चुके थे। इस अत्यंत बुद्धिशाली, राजनीति-निपुण तथा सबसे विशेष प्रभावशाली पुरुष ने आधुनिक युग के लिबरल पक्ष के नेता और विगत युग के अंग्रेजी राजनीति के प्रतिनिधि रूप में प्रजा-जीवन को सुशोभित किया है। मि० एस्क्वीथ की पत्नी मिसेज मारगोट एस्क्वीथ का स्थान भी अद्वितीय ही है। और इसी कारण से इनकी लिखी हुई आत्म-कथा की पुस्तक ने इंगलैंड के शिष्ट वर्ग में खलबली मचा दी है। कुछ व्यक्ति इसे विवेक-बुद्धि से रहित पुस्तक समझते हैं। गुप्त बातों तथा पत्रों के दुरुपयोग करने का इन पर आरोप लगाया जाता है। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि वैर के प्रतिशोध के उद्देश्य से इसकी रचना की गई है। और ऐसे कितने ही आरोप इन पर लगाये जाते हैं। ऐसे आरोपों की ब्योरेवार खोज में उतरना व्यर्थ है, परन्तु हमारी दृष्टि में इस पुस्तक का और इसकी रचना करनेवाले का क्या मूल्य हो सकता है, केवल इस पर विचार करेंगे।

आज से पचास वर्ष पहले इंगलैंड में स्त्रीत्व की भावना के नवीन अंकुर कितने ही स्थानों पर फूटे थे, पर उन्होंने आज का-सा व्यवस्थित

स्वरूप उस समय धारण नहीं किया था। समाज-शोभा के रूप में स्त्रियाँ बाहर आतीं और समाज के आँगन को सुशोभित करती थीं, पर उससे विशेष स्त्रियों के व्यक्तित्व को कोई विशेष आदर-सम्मान न मिलता था। इसी कारण मिसेज एस्क्वीथ का व्यक्तित्व आरम्भ से ही प्रभावोत्पादक लगता है।

मिसेज एस्क्वीथ बाल्यावस्था से ही 'daring' तथा 'dashing' लगती हैं। इनके बचपन की उच्छृङ्खलताओं में इंगलैंड में उदित हुए नव-स्त्रीत्व के दर्शन होते हैं। उनका उस समय का पारिवारिक जीवन बहुत अच्छा नहीं कहा जा सकता। अपने व्यवसाय से सम्पन्न बने पिता में सभी वस्तुओं का हिसाब लगाने की आदत थी और कदाचित् अपनी पुत्रियों में तथा अपनी पुत्रियों के लिए भी हिसाब लगाया हो तो कुछ असंभव नहीं। मारगोट की माता मिसेज टेनन्ट में एक प्रकार की स्वार्थपरता और अपनी तड़क-भड़क प्रदर्शन करने की लालसा थी। मिसेज एस्क्वीथ में भी इन दोनों के गुण कितने ही अंशों में उतर आये हैं। वह बड़ी हिसाबी तथा चालाक हैं; स्वार्थपरता तथा महत्व-प्रदर्शन का शौक भी रखती हैं। पर इनके कितने ही अच्छे गुणों ने इन सब पर पालिश चढ़ा दी है। और वह भी इस प्रकार कि देखते ही आश्चर्य चकित कर दे।

मिसेज एस्क्वीथ में साहसिकता तथा उत्साह बहुत है। उसकी साहसिक घुड़सवारी देखो या आधी रात की मुलाकातें देखो; इन सब में एक प्रकार का उद्दंड स्वभाव दिखाई देता है। उसके बात करने का ढंग उच्छृङ्खल होने पर भी आकर्षक है। उनका विनोद भी तुरन्त ही समाप्त नहीं हो जाता। उसकी सफलता का एक कारण उसका विनोद भी है।

यदि व्यक्तिगत द्वेष न हो तो उसकी बुद्धि मनुष्यों के गुण-दोष सहज ही परख लेती है और योग्य भाषा में सूक्ष्म रीति से उसका वर्णन भी कर देती हैं। अपने मित्रों का चारित्र्य निरूपण करने में उसकी बुद्धि की

तीव्रता दिखाई दे जाती है। भाषा मर्मग्राही तथा सीधी—सुनने वाले के अंतर में तुरन्त प्रवेश कर जाये, ऐसी है। शैली सूचक (Suggestive) है पर बोझिल (Heavy) नहीं। उसके साहित्य में साहित्यकार की प्रखरता भी बहुत कुछ अंशों में पाई जाती है। बात करने का ढंग तो उसका अपना है। उसके Epigram (संक्षिप्त चुटकले) मन प्रसन्न करें, ऐसी चतुरता से पूर्ण होते हैं। अपने छोटे-छोटे हास्यप्रद वर्णनों में वह अधिक रस भर सकती हैं। और इन सब के सम्मिश्रण से उसकी पुस्तकें यदि लोकप्रिय भी नहीं हुईं तो भी आतुरतापूर्वक पढ़ी अवश्य जाती हैं।

आरम्भ से ही उसमें सर्वोपरि रहने की आकांक्षा थोड़े बहुत अंशों में दिखाई देती है। जो सब करें उससे कुछ नवीन किया जाय यही इच्छा निरन्तर उसमें पाई जाती है। जैसे-जैसे उम्र बढ़ती गई वैसे ही इस इच्छा ने, प्रत्यक्ष हो जाय तथा दूसरों पर कदाचित् आघात करे ऐसा स्वरूप पकड़ लिया हो, तो कुछ नवीनता नहीं और इस इच्छा के विरुद्ध आने वाले की ओर उसके रोष की उग्रता उसकी शैली की मोहकता से छिप नहीं पाती। प्रसन्नता की तरह उसका द्वेष भी बहुत गहरा तथा सहज में न जीता जा सके ऐसा होता है।

गुण-दोषों के संयोग से वह इंगलैंड के स्त्री वर्ग में भी कुछ अनोखी ही समझी जाती है। एस्क्वीथ के प्रधान पद की सफलता अधिक अंशों में इस स्त्री के चातुर्य और मनुष्यों को उपयोग में लाने की कला की ऋणी है। उनके पतन का कारण भी यही होगा या नहीं यह भी एक बहुत चर्चित और विवादग्रस्त प्रश्न है। उसमें एक प्रकार की कृत्रिमता दिखाई दिये बिना नहीं रहती। उसका प्रत्येक कार्य स्वाभाविक होने की अपेक्षा किसी उद्देश्य से किया हुआ अधिक लगता है। पर इस जैसी स्त्री के सुयोगों पर विचार करें तब तो ये गुण देख कर आश्चर्य नहीं होता।

परन्तु यह सब कुछ होने पर भी एस्क्वीथ के प्रति तथा उसके

परिवार के प्रति उसका स्नेह तथा ममता बहुत अधिक दिखाई देती है। शेरनी की-सी चपलता से वह सब को सँभालती है तथा रक्षा करती है। और शत्रु की ओर कठोर दृष्टि से देखती है। दुश्मनों के आगे जब उसकी कुछ नहीं चल पाती तब उसके द्वेष और क्रोध असह्य हो जाते हैं। उसे और उसके परिवार को सर्वोच्च स्थान पर रखने के लिए वह कुछ भी कर सकती है। पर इस सर्वोपरिता में यदि किसी ने शंका उठायी तो फिर उसकी ओर देखना भी वह पसंद नहीं करती।

उसके स्वभाव को जानने के बाद उसकी जीवन-कथा के दूसरे भाग में आये हुए लॉयड जार्ज के प्रति उसका द्वेष स्वाभाविक ही है। पुत्रहीन विधवा राजपूतनी किसी दूसरे वंश से आये हुए राजा के प्रति जो भाव रखती है वैसा ही भाव कुछ-कुछ उसमें दिखाई देता है।

परन्तु फिर भी अंग्रेजी में जिसे 'awfully clever' कहते हैं, वह वैसी ही चपल है। सामनेवाले का अंतर बींधकर उसके गहरे भावों को वह जान सकती है। परिस्थितियों तथा मनुष्यों का उपयोग करना भी उसे खूब आता है।

वह मृदु दिखाई देने का प्रयत्न करती है पर उसमें स्वाभाविकता नहीं लगती। बहुधा उसके कटाक्ष तलवार से भी अधिक तेज होते हैं। इस प्रकार की स्त्रियाँ पत्नी की अपेक्षा मित्र अधिक अच्छी हो सकती हैं।

उसे सत्ता और शोभा दोनों का शौक है। कलावान होने की अपेक्षा कला-विशारद होने में उसकी मान्यता अधिक है। इस प्रकार की मानवता उच्चपद पर विराजती हो तो अधिक अच्छी लगती है।

ऐसी स्त्री की यदि वास्तविक मित्रता मिल जाय, तो वह सहायक तथा साथी बन जाती है और विकट प्रसंगों में उसकी साहसिकता तथा आगे खींचने की शक्ति अवश्य ही बचा लेती है। शत्रु हो, तो उसका विचार करते ही हृदय काँप उठता है। उसके स्नेह और द्वेष दोनों शक्तिशाली होते हैं।

मेरे एक मित्र ने इंगलैंड की नवीन स्त्रीत्व की भावना के परिणामस्वरूप हुई दो स्त्रियों का—एक मिसेज पेंकहर्स्ट और दूसरी मिसेज़ एस्क्वीथ—का नाम निर्देश कर पूछा, "प्रगति की भावना के ये दो रूप हैं; तुम किसे पसंद करोगी ?"

इस प्रश्न का उत्तर कई तरह से दिया जा सकता है। समाज में स्त्री और पुरुष के कार्यों तथा व्यक्तित्व का मापदंड न जाने क्यों अलग-अलग होता है और है। आदर्श के लिए पुरुष घर में रहकर स्वार्पण करे इसकी अपेक्षा बाहर जाकर करे तो उसका अधिक मूल्यांकन होता है। स्त्री का आदर्श इससे ठीक उलटा है। बाहर जाकर काम करनेवाली स्त्री में तपश्चर्या अधिक होती है। आदर्शों के प्रति उसकी तीव्रता भी अधिक होती है, तो भी वह थोड़े से ही मनुष्यों को आकर्षित कर सकती है। घर में रहकर अपनी शक्ति का उपयोग करनेवाली स्त्री—इसमें कुछ आदर्श हो अथवा न हो तो भी प्रशंसा की पात्र है और लोगों को अपनी ओर आकर्षित करती है। स्त्रियों के गौरव के साथ घर का खयाल भी सदैव मिला रहता है। गृहविहीन स्त्री में इस गौरव के अभाव की कल्पना करना—जान-बूझकर नहीं या अन्याय करने के लिए भी नहीं—इस समाज के एक बहुत बड़े भाग की मनोदशा है।

या तो संरक्षक भावना अति तीव्र हो, इसलिए या जीवन-संग्राम में स्पर्धा करनेवाली की अपेक्षा प्रेरणात्मक देवियों की अधिक आवश्यकता हो, इसलिए जाने या अनजाने बाह्य क्षेत्र में काम करनेवाली स्त्रियों की अवगणना नहीं, तो उन्हें गिरी हुई निगाह से तो अवश्य ही देखा जाता है। उस प्रश्न में इन सब बातों की ओर स्पष्ट संकेत था।

मिसेज एस्क्वीथ चतुर और आश्चर्यचकित करने वाली स्त्री हैं। मिसेज पेंकहर्स्ट—इसके कार्य से अनुमान करें तो—आवेशपूर्ण होने पर भी अपने आदर्शों के लिए सर्वस्व अर्पण कर देनेवाली है। अपने समय में ये दोनों इतनी अधिक पास हैं कि संसार को किसकी अधिक आवश्यकता

है इसका निर्णय इस समय नहीं हो सकता।

मिसेज एस्क्वीथ के विषय में थोड़े वाक्यों में इस प्रकार कहा जा सकता है : पत्नी रूप में इन्होंने पति के कार्यों में सामञ्जस्य स्थापित कर दिया था। माता के रूप में इनके अपने ही बालक सर्वोत्तम हैं—यह मानने वाली गर्वीली माता थीं। विविधता से युक्त तथा उत्साह-संचार करें ऐसी ये मित्र थीं। ये संस्कारी तथा सभ्य थीं, पर कहीं-कहीं इनकी कटुता तथा अभिमान से इनकी संस्कारिता में विकृति आ गई हो ऐसा लगता है। मित्र बनाने की कला में यह खूब निपुण थीं। प्रसंगानुकूल विवेक तथा व्यवहार-कुशलता दोनों का इनमें सम्मिश्रण था। इनकी साहसिकता तथा निडरता ने इनके व्यक्तित्व में सुन्दर रंग पूर दिये हैं।

इनको पढ़ने के बाद ऐसा लगता है कि क्या ऐसी स्त्रियों के अवतार से संसार का उद्धार होगा ?

जीजी माँ

कई लाख वर्ष पहले सूर्य से टूट कर एक टुकड़ा अलग जा पड़ा, वही चन्द्रमा कहलाया। सुधा बरसानेवाला शीतल तथा आह्लादक। वह सूर्य का तीव्र तेज ग्रहण करता है और उसे अपने हृदय में समाकर पृथ्वी पर भेजता है। वही है उसकी शांतिमयी ज्योत्स्ना। जीजी माँ अर्थात् ऐसे ही एक चन्द्र का अमीवर्षण। इन्होंने मुनशियों की उग्रता अपने में ग्रहण की, पर परिवार में प्रसार किया केवल एकमात्र मधुरता का ही।

जब ये पैदा हुईं तो नवीन संस्कृति की बाढ़ नहीं आई थी। जब इन्होंने संसार में प्रवेश किया तब प्राचीन संस्कृति का प्रभाव गुजरात पर ज्यों का त्यों था। इनकी युवावस्था का समय अज्ञान और भ्रम से पोषित प्रजा का समय था। प्राचीन संस्कृति भी उस समय तो कदाचित् ही कहीं-कहीं दिखाई देती। जीवन में स्वतंत्रता नहीं थी, कला नहीं थी, आनंद नहीं था। थे केवल रूढ़ि के बंधन या छोटी जाति के झगड़े। जाति में लड्डू जिमाने के सिवाय किसी दूसरी प्रकार की उदारता के भी कदाचित् ही दर्शन होते।

उस समय की इस दशा का विचार करें तब तो जीजी माँ का जीवन और कला-प्रेम को एक आकस्मिक सुयोग कहने का ही मन होता है। आम्रवृक्ष जिस प्रकार पृथ्वी में से मिठास ग्रहण कर लेते हैं उसी प्रकार इन्होंने प्राचीन संस्कृति के सुन्दर तत्व अपना लिये थे। उस समय के गंभीर रोग—धर्मांधता—ने इन्हें जरा भी स्पर्श न किया था और भ्रम भरे हुए इस युग का एक भी भ्रम इनके हृदय पर अपना शासन स्थापित न कर सका था।

अपने समस्त जीवन में इन्होंने कुटुम्ब भावना के आदर्श की उपासना की है। बालक जब कुछ समझने लगता है तभी से पिता के प्रति श्रद्धा-भक्ति रखना सीख जाता है। माता के प्रेम और भय से वह सुशील

बनता है। कुटुम्बियों के प्रेम और भावना के बंधन से बँध जाता है— इन समस्त स्नेह-सूत्रों से ही इन्होंने गृह-जीवन का निर्माण किया है। परिवार में प्राचीनता और नवीनता का अपूर्व मिश्रण इन्होंने ला दिया है जिससे सर्वत्र उच्छृङ्खलतारहित, निर्भीक वातावरण प्रसारित हुआ है। सबके लिये जीजी माँ अर्थात् जिनकी धाक से काँपने लगें ऐसी बड़ी-बूढ़ी नहीं, वरन् जिनके स्नेह और सौजन्य ने सबको बिना तंतुओं के ही बाँध रक्खा है, ऐसी कौन है? केवल जीजी माँ। इनके लिए जीजी माँ शब्द ही यथार्थ है।

प्रत्येक के विचारों और आकांक्षाओं को ये सहानुभूति से समझती हैं। इसी कारण परिवार में बच्चों से लेकर बड़े तक सब इनके पास अपनी कठिनाइयाँ उपस्थित कर सहानुभूति की याचना करने आते हैं। बालकों के खिलौने खो जायें या कनुभाई बाहर किसी से लड़ आवें तब हर समय ये प्रत्येक के दुःख में, सबके स्तर पर उतर कर सबका हृदय समझने का प्रयत्न करती हैं और बहुत अंशों में सबको सांत्वना भी दे सकती हैं। नवीन विचारों को, उनसे दूर न भाग कर सहज में ही ग्रहण कर लेती हैं और नवीन सृष्टि के विकास में अब भी ये बहुत अधिक रस लेती हैं। आजकल के नवीन विचार इनके लिए कुछ नवीन नहीं। बहुत सी बातों में तो ये स्वयं ही नवीन विचारों का समर्थन करती हैं और उनमें इनके अनुभव-ज्ञान का इतना अच्छा मिश्रण होता है कि जिन प्रश्नों का हल नवीन विचारों में आसानी से नहीं मिलता उनका निराकरण सहज ही इनके द्वारा हो जाता है।

इतने वर्षों से अभी भी जीजी माँ जीवन में रुचि रखती हैं। काम करने से ये कभी भी नहीं ऊबतीं। इनको जीवन कभी भी भारस्वरूप नहीं लगता और इनकी विनोदवृत्ति ज्यों की त्यों सतेज है। कोई अच्छी बात या अच्छा कटाक्ष इन्हें प्रिय है। सब में माधुर्य और शांति संचार करने की कला इन्हें खूब आती है। सुन्दर कार्य और सुन्दर

कला देख कर ये सदैव आनंदित होतीं और उत्साहित करती हैं।

जीजी माँ कहानियाँ कहने की कला बड़ी सुन्दर जानती हैं और इनकी बातों में बालकों की कल्पना को उत्तेजित करनेवाले सभी तत्व होते हैं। इसीलिए परिवार में इनसे कहानी कहलवाने और सुनने का सभी का मन होता है। पर इनके इस गुण का पूर्ण विकास तो कनुभाई में ही हुआ है। इनके कला-प्रेम से जड़ी बहिन चित्रकार हुईं, इनकी कहानियों के रस ने कनुभाई में कल्पना के तत्वों को पोषित किया। इस प्रकार के छोटे-मोटे अनेक लाभ हुए हैं; परन्तु गुजरात में सर्वोपरि कहानीकार और स्त्रियों में प्रथम पंक्ति के चित्रकार—इनके दो मुख्य फल हैं। बालक जीजी माँ के पीछे पागल की तरह पड़े रहते हैं—वह इनकी इस कला के कारण। दूसरों की कहानियों को ये रसपूर्वक सुन सकती हैं वह भी अपनी इस कला के कारण ही और आज भी बच्चों की तरह आनंद से कहानियाँ पढ़ने का इन्हें शौक है।

जीजी माँ में काव्यमयता भी है। यदि आज से सौ-डेढ़-सौ वर्ष पहले पैदा हुई होतीं तो ये बृहत् काव्य-लेखन में अमर हो गई होतीं, और इनके काव्यों को पुरीबाई और दीवालीबाई के काव्यों को जो स्थान मिल रहा है उससे भी अधिक उच्च स्थान मिलता। इनके काव्यों में वैराग्य और भक्ति प्रधान है और मन तथा ब्रह्म को लक्ष्य कर ही ये सब लिखे गये हैं। कुछ कल्पना के सुन्दर तत्त्व भी इनमें हैं।

जीजी माँ में जितना सौजन्य और सद्भाव है उतनी ही परिपक्वता तथा दूरदर्शिता भी है। इनको छलना असंभव नहीं तो कठिन तो अवश्य ही है। व्यवहार बुद्धि का प्राधान्य इनमें बहुत अधिक है। कविता करने की अपेक्षा हिसाब लगाने में इन्हें अधिक आनंद आता है। प्रत्येक वस्तु में ये अत्यधिक सावधान हैं और सावधान रहने के लिए कहती हैं। इनकी दृष्टि से कदाचित् ही कोई वस्तु बच जाती हो।

काम करने से ये कभी नहीं थकतीं, साथ ही इनका कर्मयोग शुष्क

भी नहीं है। इनमें कर्तव्य की कठोरता के दर्शन नहीं होते पर काम करने की सहज प्रसन्नता दिखाई देती है। सूक्ष्मदर्शिता तथा कार्य-कुशलता इनमें है और दूसरों में हो तो इन्हें अच्छी लगती है। मितव्ययता तथा सादगी का पाठ ये सब को सिखाती हैं।

जिस युग में ये पैदा हुई थीं उसके और आज के बीच तीन पीढ़ियाँ हो गई हैं, परन्तु प्रत्येक पीढ़ी की प्रगति के साथ चलने में ये कभी पीछे नहीं रहीं। अपने युग में ये बहुत आगे रही होंगी। इसके बाद वाले युग में साथ-साथ रहीं। आज के युग में प्रगति को भावपूर्ण नेत्रों से देखती हैं और परिवार में इनके प्रसारित संस्कार के प्रताप से प्रगति करते हुए भी कोई भाग-दौड़ या संघर्ष करता हो, ऐसा दिखाई नहीं देता।

जब समाज में निरक्षरता थी तब इन्होंने साक्षरता प्राप्त की। जब रस नहीं था तब इन्होंने काव्य रस का सृजन किया। जब सौंदर्य-दृष्टि नहीं थी तब इन्होंने कला-प्रेम का विकास किया और यह सब इन्होंने अकेले बिना किसी की सहायता के ही किया।

इन्होंने आदर्श गृह-जीवन व्यतीत किया और संतान में भी उसका बीजारोपण किया। धैर्य से दुःख का काँटा निकालने का मंत्र वे जानती थीं। संस्कार, शांति और प्रेम का स्रोत उन्होंने परिवार में बहा दिया और स्वाश्रय से तथा साहस खोये बिना जीवन रूपी नाव को बिना कहीं टकराये हुए किनारे पर ले आयीं।

अब इनके जीवन की संध्या है, सुरम्य और शांतिपूर्ण। अपने विविध रंगी तेज से अब भी ये सबके जीवन पर एक सुन्दर प्रकाश डालती हैं। सबकी कठिनाइयों को ये यथाशक्ति दूर करती हैं और यथाशक्ति कर्म कर सबकी सहायता करने का प्रयत्न करती हैं। जीजी माँ नहीं होंगी तब तो इनका स्थान सदैव ही रिक्त रहेगा।

जीजी माँ अर्थात् सफल जीवन की साकार प्रतिमा यह कौन नहीं कहेगा!

गांधीजी का साहित्य में स्थान

किसी ने कहा है कि गांधीजी का साहित्य में कहाँ स्थान है, इस विषय में एक भाषण भी है। मैंने कहा, 'केवल साहित्य में ही गांधीजी का स्थान क्यों हो? उनकी सर्वव्यापकता देखते हुए तो उनका स्थान एक-दो नहीं बहुत-सी वस्तुओं में निश्चित करना है। साहित्य तो इन बहुत सी वस्तुओं में से एक है और वह भी मुख्य नहीं, वरन् आकस्मिक है।'

वास्तव में गांधीजी का स्थान किसमें है यह निश्चय करने की अपेक्षा किसमें नहीं है यह निश्चय करना भी कठिन है। वे क्या-क्या हैं इसका एक सूचिपत्र ही तैयार करें तो कम से कम एकाध पृष्ठ तो भर ही जायगा। वे एक महान् संत पुरुष हैं; सत्याग्रह के उपदेशक तथा प्रचारक हैं। देश का भविष्य इनके एक शब्द की तराजू में तोला जा सके ये ऐसे राजनैतिक या राजनीतिज्ञ (दोनों में से जो शब्द सबको अच्छा लगे) हैं। ये हिंसक और अहिंसक दोनों हैं। ये बहुत बड़े सिद्धान्तों की स्थापना करते हैं और इसी प्रकार उससे बड़े सिद्धान्तों का खण्डन भी करते हैं।

तदुपरान्त ये आज्ञापालक पुत्र हैं और पत्नी, पुत्रों तथा शिष्यों से भी कठोर आज्ञापालन चाहनेवाले पति, पिता और गुरु हैं। अपने प्रयोग की कसौटी पर किसी को भी चढ़ाने से ये झिझकते नहीं और डाक्टरी से लगाकर भोजन बनाने की कला तक ये सभी में निष्णात माने जाते हैं। एक बड़े अत्याचारी भी हैं और आश्रम-वासियों के आहार, निद्रा

इत्यादि से लगा कर तकली कातने तक के सब नियम ये स्वयं बनाते और सहृदय निर्दयतापूर्वक सबसे उनका पालन कराते हैं। शिक्षा के विषय में भी इनका अपना विशेष अध्ययन तथा अनुभवपूर्वक ग्रहण किये हुए विचार हैं और गीता, कुरान, बाइबिल इत्यादि सब धर्मशास्त्रों का अध्ययन करते हैं। इन्हें रुई कातना तथा रुई परखना आता है। ये कपड़े की जाति बता सकते हैं। कला के विषय में भी इनकी अपनी व्याख्या है और संगीत भी इन्हें अच्छा लगता है। संक्षेप में कहें तो इन्होंने जीवन के सभी प्रदेशों में विचरण किया है, उस विषय का अध्ययन किया है या विचार किया है। ऐसा सूर्य की तरह सर्वविद मनुष्य साहित्य पर भी अपना प्रभाव डाले यह स्वाभाविक ही है। परन्तु सूर्य की तरह इनका ताप उग्र है और इसी कारण दूर से ये उष्णता देते हैं। पास जाते हुए बहुत से झुलस जाते हैं।

ऐसे गांधीजी को केवल एक सर्वविद् का विशेषण ही पर्याप्त नहीं। ये तो सर्वमान्य, सर्वभक्षी, सार्वजनिक इत्यादि और बहुत दूसरे विशेषणों के अधिकारी हैं और साहित्य में भी इस सर्वभक्षी महापुरुष का एक महान् स्थान है।

[२]

एक बात सबको माननी पड़ेगी कि गांधीजी के गुजरात में आने से पहले साहित्य साधारण मनुष्य के लिए बिलकुल न था। इससे पहले जो अच्छा साहित्य लिखा जाता था उसे वास्तव में थोड़े से साक्षर-रत्न ही पढ़ते तथा समझते थे। साधारण मनुष्य तो केवल साधारण कथाएँ या कुछ उपन्यास ही पढ़ते थे।

यह भी सच है कि उस समय के साहित्य में आज जैसी विविधता न थी। गंभीर निबंध, अधिक अंशों में काव्य तथा एक दो उपन्यास और एक दो नाटकों के अतिरिक्त उस समय का साहित्य दूसरे विषयों में माथा न मारता था। उस समय के साहित्य में आज का-सा पौरुष

न था, विविधता न थी, रस न था। जब से गांधीजी ने 'नव जीवन' द्वारा गुजराती में लिखना आरंभ किया तब से उनकी ओर समस्त जनता का ध्यान आकर्षित होने के कारण इनका साहित्य भी लोगों में खूब आदर पाने लगा। गांधीजी का उद्देश्य विद्वानों को प्रसन्न करना कभी भी नहीं रहा, बल्कि इन्होंने तो अहमदाबाद की साहित्य परिषद् के समय कहा था कि ये ऐसा साहित्य सृजन करना चाहते थे कि जिसे बैल हाँकने वाला किसान भी समझ सके। इसलिए इनकी भाषा साधारण से साधारण है तथा उसमें शब्दों के घरेलु प्रयोगों को बहुत अंशों में स्थान मिला है। इस सबके पीछे विचार और भावनाओं का ज़ोर होने से और विशेषकर सरकार के विरुद्ध आंदोलन की तीव्रवेगी परिस्थिति का उसमें मिश्रण होने से सर्वत्र एक प्रकार की निर्भयता, बल और शक्ति के दर्शन होते हैं।

और इससे एक लाभ हुआ। जिस साहित्य के अधिकारी अभी तक थोड़े से विद्वान ही समझे जाते थे उसकी कृत्रिम मर्यादा भंग हुई और जन-समाज का एक बड़ा वर्ग साहित्य में रस लेने लगा। माना कि इससे लाभ और हानि दोनों हुए हैं। 'धगश' जैसे कर्णकटु शब्द-प्रयोग की विरासत गांधीजी की है। जो साहित्य Democracy के नाम पर खेत जोतनेवाले किसान पढ़ें इसके बदले पानवाले की दूकान पर बीड़ी सुलगाते हुए पढ़ा जाय ऐसे साहित्य के आज पोथे के पोथे लिखे जाते हैं तथा पढ़े जाते हैं और इसमें भी घूम-फिरकर इसी प्रभाव को विकृत स्वरूप में देखा जा सकता है। पर इससे भी लाभ हुआ है। गांधीजी के बाद भाषा अभिमान अधिक बढ़ गया है। लोककथा-साहित्य की खोज भी बाद में ही होने लगी है। इसमें भी 'फुहड़ की फजेती' जैसे हास्यास्पद और विवेकहीन काव्यों के संग्रह देखने में आने लगे हैं। परन्तु इसमें से बहुत से संग्रह सुन्दर तथा उपयोगी हैं, यह हमें मानना पड़ेगा।

गांधीजी का प्रभाव शुद्ध साहित्य की अपेक्षा जर्नलीज़्म पर तथा आंदोलन साहित्य पर अधिक जान पड़ता है। प्रवास-वर्णन भी उसी शैली में लिखे जाते हैं, विचारों को सरल भाषा द्वारा वेगभरी शैली में सरलता से रखने का गुण भी गांधीजी के प्रभाव का ही ऋणी है।

परन्तु साहित्य गांधीजी का जीवन कार्य नहीं है। इनके राजनैतिक जीवन के साथ-साथ आ पड़ा कार्य है। अद्भुत व्यक्तित्व वाले मनुष्यों के सीधे या टेढ़े सभी तरह के कार्यों पर उनके व्यक्तित्व की छाप पड़े बिना नहीं रहती यही बात यहाँ भी हुई। और जैसे-जैसे इन्हें वाणी के साधन को अधिक से अधिक प्रभावशाली बनाने की आवश्यकता पड़ी वैसे-वैसे उसमें अधिक से अधिक गति भी आती गई।

परन्तु एक बात यहाँ उल्लेखनीय है। गांधीजी के जेल जाने से पहले, उनके सुन्दर से सुन्दर लेख मूल रूप में 'यंग इंडिया' के लिए अंग्रेजी में लिखे गये थे और इन्हें ऐसी ही सुन्दर गुजराती में रखने के लिए स्वामी आनंद का भी कार्य कुछ कम नहीं। गांधीजी गुजराती की अपेक्षा अंग्रेज़ी में अधिक अच्छा लिख सकते हैं और छोटे-छोटे सूत्रात्मक वाक्यों द्वारा बहुत कुछ कह सकते हैं।

गांधी-शैली के प्रधान अनुयायी अथवा इसका विकास करनेवाले इस समय हमारी दृष्टि में चार व्यक्ति हैं: काका कालेलकर, अध्यापक रामनारायण, श्री महादेव भाई और किशोरीलाल मशरूवाला। इसके बाद जुगतराम दवे, रसिकलाल पारीख, नरहरी पारीख इस प्रकार बहुत से नाम गिनाये जा सकते हैं।

श्री आनंदशंकर भाई

समस्त विश्व में एक धारणा फैली हुई है कि भारतवर्ष अर्थात् सोने-चाँदी का संग्रह करनेवाला देश। भारतवर्ष की स्त्रियाँ सोने-चाँदी से अपने शरीर का श्रृङ्गार करती हैं। जब वर विवाह करने आये तो सुनहरी, रुपहरी, जरकशी जामे से ससुराल वालों के मन हरने का प्रयत्न करे और सास दातौन के लिये भी जँवाई को सोने की शलाखें चबवाने की अभिलाषा रखे। जीवन की लगभग सभी बातों में सोना-चाँदी, स्वर्णिम या रजत बिना पूर्णता नहीं आती वहाँ स्वर्ण और रजत महोत्सव का विदेशी विचार भी अपने देश में पूर्णतया स्वदेशी रूप ही धारण कर लेता है और प्राचीन काल से यह परिपाटी हमारे यहाँ चली आती हो, ऐसा लगता है।

ता० २५ दिसंबर को ऐसा ही एक रजतोत्सव 'वसंत' के संपादक श्री आनंदशंकर भाई के लिए अहमदाबाद में मनाया गया। सुवर्ण महोत्सव का इस पीले युग में नम्र और छोटा नाम रखने से इस रजतोत्सव का शुभ्र रंग अधिक आकर्षक तथा शुचि स्वरूप वाला लगता है।

आज से चार पाँच वर्ष पूर्व इस रजतोत्सव के अधिकारी महोदय का रेखाचित्र देते हुए मैंने लिखा था—

"यदि हिम-मुकुट से आच्छादित शिखरों वाला पर्वतराज हिमालय बोलता होता तो संसार का कोई बालक उससे अवश्य प्रश्न पूछने जाता, "पर्वतराज! तुम्हारे शिखरों पर दिन प्रति दिन हिम के पर्त चढ़ते जाते हैं और हिम पिघल पिघल कर सरिताओं में भी बहता रहता है तब इस

हिम का स्वभाव कैसा है ? पिघलता है तो फिर बढ़ता कैसे है ? और पिघलता है फिर भी बढ़ता तो है ही।' बालक पर भी गंभीरता के इतने पर्त चढ़े होते हैं कि प्रश्न में निहित मूर्खता को वह नहीं समझता और वृद्ध तथा तपस्वी पर्वतराज भी गंभीरता से गर्दन हिलाकर कह दे कि 'दोनों बातें सत्य हैं। हिममय होना और पिघलना—ये दोनों ही प्रकृत सत्य हैं।' उस बालक के साथ हिम के पर्त किस प्रकार बनते हैं इस चर्चा में उलझने का या तो पर्वतराज को अवकाश नहीं रहता अथवा उसे समझ सके इतनी शक्ति का बालक में आभास नहीं होता। बेचारा बालक पर्वतराज की अस्पष्टता की अथवा दूध और दही में पैर रखने वाली नीति की फरियाद करता चला जाता है। पर्वतराज बालक की मूर्खता पर थोड़ा मुस्कराकर शांत हो जाता है। कुछ ऐसी ही बात आनंद-शंकर भाई और जनता की है।"

अब भी यह उपमा कदाचित् ही गलत कही जा सके। हिम की टंड से ठिठुरने के भय से गर्मी चाहनेवाला हममें से बहुतों का स्वभाव इन्हें दूर से ही नमस्कार करता है और इस प्रकार इनको एक व्यर्थ के त्रास से बचा देता है। परन्तु हिमाच्छादित पर्वतों को लाँघने का इस साहसिक जमाने में कोई उस हिम-सदृश समझे जानेवाले व्यक्ति के पास जाने की धृष्टता करे तो उसके उस प्रयत्न का फल कभी भी निष्फल नहीं जा सकता।

और बर्फ में जिस प्रकार गर्मी है उसी प्रकार इनकी शीतलता में भी उष्णता है। बर्फ की तरह सूर्य-किरणों के ताप से इनका हृदय भी पिघलनेवाला है। पर वह पिघलता हुआ दिखाई नहीं देता। बात यह है कि जहाँ तक हो सकता है, ऐसे गर्म प्रदेश में ये आने का प्रयत्न ही नहीं करते और सदैव शीतल अंतर के एकांत में ही बर्फ की तरह जम जायँ इस प्रकार अपनी सभी भावनाओं को संगृहीत रखते हैं। परन्तु बर्फ में रखी सभी वस्तुएँ जिस प्रकार ताजी रहती हैं, बिगड़ती नहीं, उसी प्रकार

इनके भावों में भी सदैव ताजगी ही रहती है।

इसी उपमा को यदि आगे चलायें तो हिमालय से वसंत ऋतु में जिस प्रकार त्रिविध-तापहारिणी गंगाजी निकलती हैं उसी प्रकार 'वसंत' में प्रवाहित इनकी साहित्य-सरिता बहुत से विद्या-रसिक जनों की तृषा बुझाती है और उनमें एक प्रकार की नवीन भाव स्फूर्ति का संचार करती है। परन्तु उसका वास्तविक आनंद तो केवल अधिकारी पुरुष ही ले सकते हैं।

आनंदशंकर भाई का जीवन एक प्रकार से स्थिर है, फिर भी बहुत सी प्राप्तियों और साहस के आनंद का आभास उसमें दिखाई देता है। साधारण मनुष्य को अर्थ-प्राप्ति में जितना आनंद आता है उतना ही आनंद ज्ञान-प्राप्ति में आनंदशंकर भाई भी लेते हैं। जिज्ञासु की तरह इनकी तीव्र जिज्ञासा ज्ञान के नये-नये प्रदेशों की खोज करती है और चमत्कृत कर देनेवाले नवीन दृष्टिकोणों के आगे प्रशंसा मुग्ध हृदय से ये थम जाती है। इन सभी चमत्कारों का वर्णन ये हमारे सामने नहीं करते, क्योंकि इनकी ऐसी धारणा है कि इसका आनन्द प्रत्येक को स्वयं ही खोजना चाहिए। परन्तु फिर भी हमारी जिज्ञासा-वृत्ति को प्रोत्साहित करने और रस का संचार करने के लिए अपने थोड़े से अमृत बिंदुओं को चखा कर हमारी ज्ञान-पिपासा को सतेज कर देते हैं।

प्रत्येक के दृष्टिकोणों का अध्ययन करना तथा प्रत्येक बात के दो पहलुओं की खोज करना यह गुण इनमें विशेष है। इनका उद्देश्य प्रत्येक के साथ न्याय करना होता है पर एक ही दृष्टिकोण से देखनेवाले हमारे संकुचित हृदय में उससे संदिग्धता का आभास होने लगता है। निर्णय न करने की शक्ति हमें असामञ्जस्य में डाल देती है। परन्तु इससे ये संकीर्ण बन जायँ, ऐसा हम कभी न चाहेंगे।

आनंदशंकर भाई अपने को सामान्य वर्ग का मानते हैं। परन्तु इनका विशेष वर्गीय स्वभाव जाने-अनजाने छिपाने पर भी नहीं छिपता। उनकी

रसवृत्ति उन्हें कोई भी साधारण वस्तु पसंद नहीं करने देती और इनका स्वत्व कैसा भी आवरण इन्हें न छू सके सदैव इसी की चिंता रखता है।

बहुत कुछ अंशों में महापुरुषों की तरह इन्हें भी अपनी शक्तियों के विकास का विशाल क्षेत्र परदेश में ही मिला है। गुजरात कालेज के एक प्रोफेसर के रूप में विद्यार्थियों के स्मरण देश में वे सदैव ही चिरंजीवी रहेंगे, तो भी इनका वास्तविक तथा महान् संस्मरण तो हिन्दू यूनिवर्सिटी के विशाल ज्ञान-मंदिर के डगमगाते आधार-स्तंभ को सुदृढ़ बनाने में ही है।

इन्होंने कुछ पुस्तकें भी लिखी हैं और भी लिख सकते थे। इन्होंने अपने जीवन का बहुत बड़ा भाग छोटे-छोटे प्रयत्नों में ही व्यय किया है; एक बड़े प्रयत्न के लिए निश्चय ही उससे आधा श्रम ही बस होता। निष्फलता के मार्ग से वे सदैव दूर ही रहे हैं, परंतु एकाध निष्फलता उनके जीवन में कदाचित् और भी अधिक उत्साह ला देती।

क्या रजत के समान श्वेत और निर्मल प्रलोभनों से भरे इस संसार में प्रकाश-स्तंभ की तरह स्थिर, ऊँचाई से प्रकाश फेंकता हुआ इनका जीवन बहुतों का मार्ग-दर्शक बना होगा ?

गुजरात के दो विद्रोही

श्री मेघाणी की कहानियों के बाद गुजरात में विद्रोहियों के प्रति रुचि बढ़ी। मेघाणी के विद्रोही हमने जीवित नहीं देखे, इसीलिए उनके विषय में उनकी तथा हमारी धारणा कल्पना के रंगीन चश्में से देखकर निर्धारित की हुई होती है। अत्याचारी को भंग करनेवाले, दुःखियों की सहायता करनेवाले, पापी का विध्वंस कर सतियों को मुक्त करनेवाले और आवश्यकता पड़े तो किसी प्रकार का भेद-भाव न रखते हुए मार्ग में जाते हुए राहगीरों को लूटने तथा वर-वधू को कंगन तोड़नेवाले—ऐसे ये विद्रोही हमारे अद्भुत रस को पोषित करते हैं और इनके कार्यों की हम साश्चर्य प्रशंसा भी करते हैं।

श्री विट्ठल भाई और श्री वल्लभ भाई को देखकर मेरी भी इन विद्रोहियों के प्रति कुछ-कुछ ऐसी ही कल्पना जगती है। ये दोनों भाई ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध विद्रोह करने पर तुले हैं, यह कह डालना तो एक बिल्कुल साधारण-सी बात है। एक ने अपने विद्रोह के लिए समस्त गुजरात का क्षेत्र निश्चित किया है और दूसरे ने धारा सभा के 'स्पीकर' के० अस्पृश्य आसन पर बैठकर इस विद्रोह के सूत्र उच्चारण करने का क्रम बना रक्खा है। अनुभवपूर्ण और कुशल इन दोनों भाइयों की क्रीड़ाएँ समस्त ब्रिटिश सरकार के हँसा रही हैं।

दोनों भाई पूर्णतया समय-साधक (opportunist) हैं यह कहें तो कदाचित् इनके प्रति कुछ अन्याय न होगा। अवसर को परखना तथा उसका लाभ उठाना, सचमुच इन दोनों भाइयों को बहुत सुन्दर ढंग से आता है। इनका मोहरा अभी तक एक भी दाँव नहीं चूका। चाहे इनका

लक्ष्य सरकार हो या कोई इनका प्रतिस्पर्धी। और ऐसे ही मर्दानगी के दाँव खेलने में इन दोनों भाइयों के जीवन की सार्थकता दिखाई देती है। दोनों की सत्ताकांक्षा सीमातीत है पर उसे व्यक्त करने की तथा साधने की रीति दोनों की अलग-अलग। छोटे भाई शांति और मधुरता से हृदय को वश में करते हैं और सत्य और धर्म की शरण खोज कर उन पर राज्य करते हैं। बड़े भाई निर्दयता से शिकार को संडासी-चाल से पकड़ते हैं और उसकी व्याकुलता में ही अपनी विजय मानकर प्रसन्न होते हैं! दोनों भाई किसी से भी दब नहीं सकते, वरन् सब को दबा दें, ऐसे हैं और यदि भूल-चूक से स्वयं ही दब जायँ तो उसका डंक धोने वाला एसिड विज्ञान द्वारा अभी तक किसी ने नहीं खोजा है।

और 'साहसी' शब्द इन्हीं के लिए उपयोग किया जा सकता है। इनकी हिम्मत गांधीजी की तरह योग से प्राप्त नहीं हुई और पंडित नेहरू की तरह बुद्धिजन्य भी नहीं है। इस साहस को लालाजी की तरह देशभक्ति से प्रेरणा मिली है यह भी नहीं कहा जा सकता और न यही कहा जा सकता है कि डॉ० मुंजे की तरह निर्बलता के दुःख से जन्मी है। इन दोनों भाइयों का साहस ज्ञानतंतुओं की दृढ़ता के परिणामस्वरूप स्वभावजन्य ही है।

अपार आत्म-बलिदान इन दोनों भाइयों ने किया है, पर उसे व्यर्थ ही नष्ट कर देने की नादानी इन्होंने नहीं की। प्रत्येक वस्तु के परिणाम पर अपनी दृष्टि रखते हैं और प्रत्येक बात का हिसाब वे पहले से ही लगा लेते हैं। अर्थ-साधन के समय व्यर्थ की आशंकाएँ अथवा संकल्प-विकल्प उन पर हावी नहीं होते। योगियों की तरह जब संसार सोता रहता है तब भी वे जागते ही रहते हैं और शत्रु के आक्रमण के समय हथियारों पर मुर्चा न लगा हो इसकी चिंता भी वे सदैव रखते हैं।

इनका अमोघ अस्त्र है व्यंग्य। प्रतिस्पर्धी को उलझा कर ऐसी फजीहत करना कि वह नीचे से ऊपर न देख सके—यह इनकी प्रिय क्रीड़ा है।

बारडोली में यह शस्त्र बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। बड़ी धारा सभा में प्रतिदिन इन पर सोना काटा जाता है। विनोद में ये पर्तदार हल की फाली की तरह हैं—कठोर भूमि को उधेड़कर चूर-चूर कर देने की क्षमता भी ही है और इस प्रकार जो भूमि जोती जायगी उसमें निहित बीजों को उगाने की कला में भी इन दोनों भाइयों ने एक विशेष कौशल दिखाया है।

समय को परखना और तदनुसार रूप बदलना दोनों भाई जानते हैं। महत्ता को बढ़ाना और रक्षा करना भी आता है।

सत्य और असत्य से दोनों अपने को परे मानते हुए भी छोटे भाई गांधीजी के सत्संग से असत्य बोलना भूल गये हैं। बड़े भाई केवल अच्छे काम के लिए झूठ बोलते हैं इसलिए यह दुर्गुण सद्गुण में परिवर्तित हो गया है।

इन दोनों भाइयों को वास्तव में संस्कारी नहीं कहा जा सकता, फिर भी दोनों सुधरे हुए हैं, यह तो कहना ही पड़ेगा। दोनों में किसानों की-सी असंस्कारिता है—किसानों की-सी स्वार्थपरता भी उनमें लगभग वैसी ही है। दोनों की कीर्ति-ध्वजा इस समय भारत में चहुँ ओर फहरा रही है। और दोनों का नाम इस समय कांग्रेस के प्रमुख पद से भारत के वायसराय पद तक के लिए पुकारा जाता है। दोनों भले भी हैं और बुरे भी। एक के पीछे कुटुम्ब का जंजाल है ही नहीं और दूसरे में कुटुम्ब के प्रति कोई ममता नहीं। फिर भी क्या दोनों भाई "वसुधैव कुटुम्बकम्" में विश्वास रखनेवाले नहीं लगते? गुजरात इनका देश है और उसके ये दोनों भाई संरक्षक हैं। किसी का साहस नहीं जो इसमें अपना मुँह खोल सके।

लोकप्रियता की सैकत भूमि पर दोनों व्यक्ति खड़े हैं, यदि यह फिसल जाय तो अपने को सँभालने जितना स्वास्थ्य इनमें है। बड़े भाई प्रपंच करना जानते हैं और प्रपंच परखना भी। छोटे भाई प्रपंच परखते तो

हैं पर जब प्रपंच रचते हैं तो वह प्रपंच प्रपंच रूप में नहीं रहता।

कितने ही गुणों में दोनों भाई इस प्रकार एक-से लगते हैं फिर भी देखने में दोनों बिलकुल भिन्न हैं। विशाल आँखें और बड़ी-बड़ी मूँछें वल्लभभाई का चिह्न है और लम्बी दाढ़ी तथा चालाक आँखें विट्ठलभाई का विशेष चिह्न। विट्ठलभाई धूर्तता के अवतार हैं तो वल्लभभाई सीधी तथा प्रभावपूर्ण रीति से वर्तते हैं। छोटी-छोटी बातों में मित्रों और सम्बन्धियों को परेशान करने में तथा क्रूर व्यंग्य करने में विट्ठलभाई को आनंद आता है। वल्लभभाई भी ऐसा करते हों, यह मालूम नहीं।

विट्ठलभाई अपने से अधिक प्रतापी को सहन नहीं कर सकते। वल्लभभाई अपने प्रताप के लिए नवीन क्षेत्र का ही निर्माण कर लेते हैं। वल्लभभाई भाव जगा सकते हैं तो विट्ठलभाई केवल भय प्रेरित कर सकते हैं।

परन्तु ये दोनों भाई एक शक्तिशाली चट्टान की तरह दृढ़ हैं। ऐसे नहीं हैं कि अपने ऊपर लिये हुए काम को पूर्णतया निभा देने में साहस खो बैठें। देशवासियों के दुःख दूर करने और विदेशी सरकार की नींव उखाड़ने के लिए ये दिन-रात प्रयत्नशील हैं। दोनों बहादुर हैं। निर्बलता, निस्सहायता अथवा दासत्व के कारण अपमान का एक घूँट दोनों में से एक भी गले से नीचे नहीं उतार सकते। ये दो न होते तो गुजरात आज मर्दानगी के बहुत से पाठ बिना सीखे हुए ही रह गया होता!

जीवन-चित्र

प्रकीर्ण विभाग

द्रौपदी

हजारों वर्ष बीत गये पर आर्यावर्त में स्त्रीत्व के आदर्श की कल्पना बहुत कुछ अंशों में ज्यों की त्यों बनी हुई है। आर्यावर्त की आदर्श स्त्री अर्थात् प्राचीन और निर्धारित हुई उपमाओं में समा सके ऐसी सुन्दर, चाहे जैसे पति को भी देवता माननेवाली पतिव्रता; युगों से चली आयी मान्यताओं को आदर करनेवाली आर्या और उन नियमों के अनुसार आचरण करने में तत्पर गृहिणी; दुःख सहने में वीर-सहचरी और पति को प्रसन्न करनेवाली पत्नी। थोड़े या बहुत अंशों में जिस स्त्री में इतने लक्षण हों वह आदर्श स्त्री कही जा सकती है। इससे अधिक गुणों की आवश्यकता स्त्रियों को नहीं है इस धारणा से अथवा ऐसी स्त्रियों की ओर शंका की दृष्टि से देखा जाता होगा, इसलिए ज्वलंत और प्रतापी स्त्रीत्व के उदाहरण केवल अपवाद रूप में ही पौराणिक साहित्य में मिलते हैं।

द्रौपदी भी एक ऐसा ही अपवाद है। देवी सीता की दैवी आत्मा में से सर्वस्व समर्पण करनेवाली भक्ति उमड़ती है। शकुंतला के मृदु अंतर में से नम्रता और प्रेम झरता है। उमा देवी के भीने हृदय में से मातृत्व का रस बहता है। परन्तु शक्ति और प्रेरणा की अधिष्ठात्री केवल द्रौपदी ही है। सोलह हजार पटरानियों के स्वामी श्रीकृष्ण वासुदेव के सखीपद के योग्य तो केवल द्रौपदी ही है। महाभारत के युद्ध को जीतनेवाली तथा पांडवों के हृदय-बल की संरक्षिका केवल द्रौपदी ही है!

अग्नि सदृश जाज्वल्यमान तथा प्रदीप्त इस स्त्री का जन्म अग्निकुंड

से हुआ, ऐसा माना जाता है। पांचाल देश के प्रतापी द्रुपदराज की पुत्री और कौरवों के राज-गुरु द्रोण का वध करने के लिए निर्मित धृष्टद्युम्न की बहिन थी। रूप में श्यामवर्ण होने पर भी अद्‌भुत रूपवती थी। कदाचित् उसका स्वरूप दृष्टि को आकर्षित करे ऐसा नहीं, वरन् जिस पर दृष्टि ठहर न सके ऐसा होगा।

उसके संपूर्ण जीवन को अद्‌भुतता, असमान्यता और साहस की परंपरा के रूप में ही देखा जा सकता है। अकस्मात् से अथवा वह स्वयं आकस्मिक घटनाओं को प्रेरित करनेवाली हो इसलिए पौराणिक स्त्री-सृष्टि में उसका स्थान तथा उसका व्यक्तित्व सबसे निराला है। प्राचीन आर्यावर्त में यह एक ही स्त्री ऐसी है कि जो अपने सद्‌गुणों की अपेक्षा व्यक्तित्व के लिए अधिक सम्माननीय बनी है। इसमें भी सद्‌गुण हैं तो सही, पर साधारण स्त्रियों की अपेक्षा इसकी शक्तियों के प्रसार का क्षेत्र विशाल था, इसीलिए इसके सद्‌गुणों को रूढ़ियों के संकीर्ण बंधन में बाँध देना शक्य न था। सद्‌गुणों की व्याख्या हम जिस प्रकार आज करते हैं उतनी कठोर कदाचित् उस समय थी भी नहीं।

हमने एक प्रकार की ऐसी धारणा बना ली है कि प्राचीन समय में सद्‌गुण और समाज-व्यवस्था दोनों आज से अधिक सुन्दर और बढ़े-चढ़े थे। प्राचीन काल की समाज-व्यवस्था में स्त्रियों का स्थान क्या था इसके काल्पनिक चित्र खींचने की अपेक्षा यदि हम मिलनेवाले साधनों तथा वास्तविकता का थोड़ा भी आधार लें तो क्या ये चित्र इतने ही सुन्दर बन सकते हैं? केवल महाभारत के ग्रंथ को ही श्रद्धा की अपेक्षा ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक पढ़ें और उसमें आनेवाली असंगत और विचित्र बातों में तनिक गहरे पैठें तो क्या हमारी दृष्टि पर पड़े हुए आवरण अधिक समय तक टिक सकेंगे? उस समय के समाज में नीति-व्याख्या हमारे समय से भिन्न थी यह सच है। फिर उसके बाद जैसे-जैसे इस व्याख्या का स्वरूप बदलता गया वैसे-वैसे उसे अनुकूल बनाने के

लिए इस शास्त्रीय ग्रंथ पर बहुत से प्रयोग हुए। इसमें निहित सच्ची घटनाओं को तोड़-मरोड़ कर उनका स्वरूप बदल देने का प्रयत्न किया गया। परिणाम यह हुआ कि न तो इसका मूल स्वरूप ही रहा और न नवीन स्वरूप ही बन सका, फिर भी इसके आस-पास उगी हुई नवीन लताओं को थोड़ा काटने-छाँटने का परिश्रम करें तो इसके मूल स्वरूप की कुछ झाँकी हुए बिना नहीं रहती।

द्रौपदी का विवाह भी एक विवादास्पद विषय है। एक स्त्री के पाँच पति होने पर भी वह सती कही जाय, क्यों? और कही भी जा सके तो आजकल की नैतिक भावना के साथ क्या इसका सामञ्जस्य हो सकता है? न भी हो फिर भी शास्त्रकारों ने इसे सती माना ही है। इसका क्या तात्पर्य है? ऐसी अनेक प्रश्न-परंपरा इसके विषय में हुए बिना नहीं रह सकती।

केवल शारीरिक पवित्रता के दृष्टिकोण से ही यह प्रश्न-परंपरा संपूर्ण नहीं कही जा सकती। हमारे यहाँ तो सतीत्व मनसा, वाचा, कर्मणा इन तीनों प्रकार से पालन करना होता है। भाव और भावनाओं को दूसरे सभी विषयों से तीव्र रूप में अनुभव करनेवाली ऐसी स्त्री की अंतरात्मा हृदय और जीवन के ऐसे उत्कृष्ट प्रश्न के प्रति निर्लेप रह सकी होगी? क्या उसके हृदय में ऐसे अलग-अलग खाने बने होंगे कि उसके विभिन्न अनुभवों का मिश्रण इनमें कभी भी न होता होगा? महाबाहु अर्जुन और शक्तिशाली भीम के साथ रूपवान नकुल और ज्योतिषी सहदेव क्या एक ही पंक्ति में खड़े रह सके होंगे? सामर्थ्य और शक्ति के सभी अवसरों पर उसे भीमार्जुन ही याद आते हैं यह क्या केवल एक अकस्मात् ही कहा जा सकता है? मानस-शास्त्र इस समस्या को इस प्रकार नहीं सुलझा पाता। और महाभारतकार ने भी द्रौपदी के अपक्ष-पात के दृष्टांत देने की बहुत अधिक चिंता नहीं की।

किन्तु फिर भी द्रौपदी सती समझी जाती है, यह क्यों? रूढ़ि द्वारा

यह बात इसी तरह मान्य होने पर भी महाभारतकार को भी इसका बचाव करने की आवश्यकता अवश्य ही प्रतीत हुई है और इसीलिए तपस्विनी रूप में उसके पूर्वजन्म की कथा तथा महादेव ने उसे वर दिया था यह बात उसके बचाव में ही कहनी पड़ी है। परन्तु इससे हमारी दृष्टि में उसका समाधान नहीं होता।

उसका निराकरण केवल एक ही तरह हो सकता है। विवाह की पवित्रता की स्वीकृति ही सतीत्व का लक्षण है। विवाह जितनों के अथवा जिसके साथ हुआ हो उसके अतिरिक्त दूसरे का विचार न करना यही पवित्रता की मर्यादा है। उस समय स्त्रियों का विवाह एक से अधिक पतियों से हो सकता था यह तो स्पष्ट ही है। आज भी हिमालय प्रदेश में और टोडा आदि कितनी ही जातियों में यह प्रथा चालू है। पति के जीवित रहते अथवा पति न हो तब पुत्रप्राप्ति के लिए भी स्त्रियों को कई प्रकार की स्वतंत्रता दी जाती थी। कुंती के पुत्र पांडव और विचित्रवीर्य की रानियों के पुत्र धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर इसके जीवित उदाहरण हैं। महाभारत के अति महान् पुरुषों के जन्म की कथाएँ उस समय की नीति का स्पष्ट चित्रण करती हैं।

द्रौपदी को सती मानने का एक दूसरा भी कारण है। आर्यों में स्त्रियों की महत्ता का मापदंड सती के अतिरिक्त और कुछ नहीं। सती न हो ऐसी रानी या वीरांगना या विदुषी को हिंदू जन-समाज ने कभी सम्मान नहीं दिया। और जिस स्त्री को उसके समय के नीति-नियमों के अनुसार सती कहने में बाधा न पड़ती हो उसकी अवगणना न की जाय ऐसे व्यक्तित्व के साथ न्याय करने में शास्त्रकारों ने कोई संकोच नहीं किया। परन्तु इसके प्रति स्पष्ट निर्णय देने का प्रयत्न, जैसे-जैसे नीति का आदर्श बदलता गया वैसे-वैसे बाद में किया गया हो, ऐसा लगता है। महाभारत ग्रंथ आजकल जिस रूप में हमारे सामने है उसका मूल स्वरूप यह न था; इस बात के बहुत से प्रमाण मिलते हैं। समय के

अनुसार परिवर्तन तथा मान्यताओं का उसमें समावेश कर दिया हो यह निस्संदेह है।

इस महत्वपूर्ण प्रश्न के विषय में इस प्रकार अपने मन का समाधान करने के उपरान्त द्रौपदी के शक्तिशाली व्यक्तित्व को हम और अधिक सरलता से समझ सकते हैं। उसके जीवन के प्रत्येक प्रसंग में कुछ न कुछ नूतनता अवश्य ही दिखाई देती है। और इन सब प्रसंगों में शक्ति के दर्शन उसके व्यक्तित्व की खास लाक्षणिकता है।

उसके स्त्रीत्व में मोहकता है और बुद्धि के ओज से वह चमचमाता है। सुख के दिनों में वह कृपा और अकृपा दोनों सुन्दर ढंग से दिखाना जानती है। वह गर्वमयी, मानिनी दुर्योधन के अज्ञान पर हँस सकती है, परन्तु कुंती की सेवा करते हुए कभी भी नम्रता का त्याग नहीं करती। विभिन्न तत्वों के प्रतिनिधि पाँचों पांडवों की वह प्रियतमा हो सकती है फिर भी भाइयों के ऐक्य में उसके कारण कभी भी विक्षेप नहीं पड़ता। वह सदैव उत्साह प्रेरित करती है और कभी भी निराश नहीं होती, परन्तु बहुधा सब उसकी मोहकता की अपेक्षा शक्ति का अधिक सम्मान करते हों ऐसा लगता है।

द्रौपदी के व्यक्तित्व को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से देखने पर इसमें विभिन्न प्रकार के प्रकाश की किरणें दिखाई देती हैं। हम इनको एक साथ न देखकर एक-एक की क्रमशः खोज करेंगे।

सर्वप्रथम अपनी बुद्धि और शक्ति का प्रभाव दिखाती हुई कौरवों की राजसभा में हम उसे देखते हैं। पहले वह बुद्धि के प्रभाव से विजय प्राप्त करने का प्रयास करती है और जब प्रतिकामी दुर्योधन की आज्ञा से उसे सभा में लाया जाता है, वह प्रसंग मेधाविनी द्रौपदी के आत्मसम्मान का भान कराता है। सभापर्व का एक छोटा-सा अवतरण देना यहाँ अनुचित न होगा।

प्रतिकामी जब उससे, 'युधिष्ठिर द्यूत में हार गये हैं और दुर्योधन

तुम्हें दासी रूप में बुला रहा है।' कहता है तो द्रौपदी उससे पूछती है—

'अरे प्रतिकामी! इस प्रकार क्यों बोलता है? ऐसा भी कोई राजपुत्र है जो अपनी स्त्री को दाँव पर रखकर पासा खेले? द्यूत के व्यसन से विवेकशून्य राजा युधिष्ठिर मुझे हार बैठे तो क्या मेरे अतिरिक्त और कुछ रखने को न था?' प्रतिकामी उत्तर में कहता है कि राजा युधिष्ठिर अपने भाइयों और स्वयं अपने को भी दाँव में हार गये और अंत में जब कुछ शेष न रहा तो तुम्हें भी दाँव पर लगा कर हार गये हैं। तब आवेश में भरी हुई द्रौपदी अपने मानसिक स्वास्थ्य को न खोकर फिर कहती है—

'सूतपुत्र! तू पहले सभा में जाकर राजा युधिष्ठिर से यह पूछ आ कि पहले वे अपने को हारे हैं या मुझे?' (सभापर्व, अ० ६७)

द्रौपदी के इस प्रश्न का उत्तर युधिष्ठिर कुछ भी न दे सके और दुर्योधन द्रौपदी को फिर से सभा में बुलाने के लिए भेजता है। फिर वही प्रश्न द्रौपदी सभा के महात्मा सभासदों से पुछवाती है, परन्तु दुर्योधन के भय से कोई कुछ उत्तर नहीं देता है। अंत में दुरात्मा दुःशासन मर्यादा का उल्लंघन कर उसे सभा में खींच लाता है, तो उसके क्रोध का पार नहीं रहता। दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण और शकुनि के अतिरिक्त और सब का अंतर इस दृश्य से विदीर्ण हो उठता है। और भीष्म पितामह कुछ सकुचाते हुए द्रौपदी के न्याययुक्त प्रश्न का गोल-मोल उत्तर देते हैं—

'हे द्रौपदी! स्वामी दास हो गया इसलिए उसकी स्त्री दासी हुई और युधिष्ठिर की परवशता देखकर तथा परवश और अशक्त बना हुआ स्वामी दूसरे के धन की बाजी लगाने में समर्थ नहीं, यह सब देखते हुए धर्म की बात बहुत सूक्ष्म है, इसलिए तेरे उचित प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर नहीं दिया जा सकता। हे द्रौपदी! समृद्धिशाली संपूर्ण पृथ्वी को राजा हार चुका परन्तु अपने धर्म को नहीं हारा है। और युधिष्ठिर ने 'मैं

हार गया' ऐसा कहा है, इसलिए वह हार गये तो उनकी स्त्री भी हार गई यह नहीं कहा जा सकता, अतः तेरे प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर नहीं दिया जा सकता। और फिर द्यूत-क्रीड़ा में पारांगत शकुनि द्वारा पराजित युधिष्ठिर उसकी धूर्तता समझ नहीं सके। इससे भी तेरे प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर नहीं दिया जा सकता है।' यह सुनकर द्रौपदी बोली—'खेलने से प्रसन्न होनेवाले, नीच कर्म करनेवाले मूर्ख, निरे बालक तथा दुष्ट मनवाले को बुलाकर अभ्यासरहित मेरे स्वामी के साथ खेलाया, इस कारण वह हार गये यह कैसे कहा जा सकता है? कौरवों और पांडवों के प्रमुख और द्यूत से अनभिज्ञ राजा को कपटी और दुष्ट कर्म करनेवालों ने छल से जीत लिया, बाद में कपट किया इसलिए वह हारे हुए नहीं कहे जा सकते। इस सभा में बहुत से बेटे-पोतोंवाले वृद्ध कौरव बैठे हैं वे ऐसा अन्याय देखकर तथा मेरे वाक्य सुनकर उनका ठीक-ठीक उत्तर दें!' (सभापर्व, अ० ६७)

द्रौपदी की इस तेजस्वी वाणी ने सारी सभा में खलबली मचा दी हो, ऐसा लगता है। भीमसेन भी द्रौपदी के इन शब्दों को सुनकर आवेश में आ जाता है और धृतराष्ट्र का पुत्र विकर्ण द्रौपदी का पक्ष लेकर संपूर्ण सभा से न्याय की याचना करता है और बार-बार द्रौपदी जीती हुई समझी जानी चाहिये या नहीं, उसी प्रकार युधिष्ठिर के सर्वस्व हार जाने पर द्रौपदी को दाँव में रखने का अधिकार था या नहीं इस प्रश्न का उत्तर माँगता है। सभा में हलचल मच जाती है। उस समय कर्ण दुर्योधन का पक्ष लेने के लिए बोल उठता है और अपना विरोध इस प्रकार रखता है—'ईश्वर ने स्त्री जाति के लिए एक ही पति का निर्माण किया है और इसके तो पाँच पति हैं······इसलिए इस जैसी स्त्री को सभा में लाना अनुचित नहीं है।' (सभापर्व, अ० ६८) पिंजरे में बंद सिंहनी को यह अपमान कितना असह्य हुआ होगा!

परन्तु जो कार्य बुद्धि न कर सकी, वह द्रौपदी की आत्म-शक्ति ने

किया। महात्मा और धर्मात्मा पुरुषों की सभा में अबला के वस्त्र पर हाथ लगाते हुए, कुल-धर्म की मर्यादा, पुरुषत्व का विचार, निर्बल की रक्षा करने का क्षात्र धर्म, या निराधार स्त्री के धर्म और सम्मान की रक्षा का प्राचीन आचार यह कुछ भी काम नहीं आया, वहाँ असहाय दीखती द्रुपद पुत्री के पीछे यादवों के स्वामी और आर्यों के सब से समर्थ पुरुष की संपूर्ण शक्ति उसकी रक्षा करने के लिए तत्पर थी। इस शक्ति ने कृष्णा की लाज रखी। वस्त्रहरण के प्रसंग में चमत्कार करनेवाले कृष्ण के नाम पर युद्ध की चुनौती देती हुई पांचाली के आत्मबल द्वारा ही इस भयंकर अपमान से उसकी रक्षा हो सकी। अन्यायी ही सब से अधिक कायर हो सकते हैं।

जिस युग और समाज में स्त्री जाति का ऐसा भयंकर अपमान हो सकता है उसकी नीति की भावना के विषय में क्या कहा जाय? द्रौपदी जैसी प्रतापी, शक्तिसम्पन्न स्त्री की जहाँ यह दशा हो सकती है वहाँ दूसरी निर्बल स्त्रियों की रक्षा किस प्रकार होती होगी इस विषय में भी क्या सोचें? संस्कृति के केन्द्र स्थान कुरुवंश में जिन पूर्वजों को हिंदू-संसार आज तक पूजता आया है उनके सामने पांचाल देश की शक्तिशाली राजा की पुत्री का यह अपमान, उस युग के स्त्री-सम्मान की भावना का अनोखा चित्र सामने रख देता है और उस स्वर्ण युग में स्त्री-जाति की अत्यंत उत्तम मानी जानेवाली दशा का भान कराता है।

परन्तु अभी द्रौपदी के सभा में हुए अपमान का अंत नहीं हुआ था। कायर भयभीत हो जाने पर भी—दब जाने पर भी—अपने स्वभाव की नीचता दिखाये बिना नहीं रहते। सभा में खलबली मची रहती है और सूर्य-चन्द्र भी जिसे न देख सकते थे उस द्रौपदी को अगणित दृष्टिपात तथा अगणित व्यंग्यबाण सहने पड़ते हैं। अंत में कपटी धृतराष्ट्र सदैव की तरह द्रौपदी से वरदान माँगने के लिए कहता है और द्रौपदी इन वरदानों के द्वारा पांडवों को छुड़ा लेती है। धृतराष्ट्र पांडवों को राजपाट

लौटा देता है—फिर से जुआ खेल कर छीन लेने के लिए। पांडवों का फिर से हार जाना, बारह वर्ष वन में तथा एक वर्ष गुप्तवास में रहना ऐसी शर्त स्वीकार करना और द्रौपदी का साथ में जाना यह सब कथा तो यहाँ अप्रासंगिक ही होगी। पर वृद्ध कुन्ती को भी द्रौपदी पांडवों के साथ है इस विचार से कुछ आश्वासन मिला हो, ऐसा लगता है।

द्रौपदी का गर्वीला स्वभाव इस अपमान से कितना दुखी होता है यह वनपर्व में कहे हुए कितने ही प्रसंगों में बहुत सुन्दर ढंग से वर्णित है। द्रौपदी के अपने ही शब्दों से ठीक-ठीक पता लग सकेगा।

श्रीकृष्ण पांडवों को वन में गये हुए जानकर वहाँ उनसे मिलने आते हैं। उस अवसर पर पहले श्रीकृष्ण की स्तुति करने के बाद द्रौपदी कहती है, "हे ईश्वर! तुम सब मनुष्यों तथा स्वर्ग में रहनेवाले देवताओं के रूप हो। इसलिए मैं नम्रता से अपना दुःख कहती हूँ, वह सुनो! हे श्रीकृष्ण! पांडवों की पत्नी, तुम्हारी सखी और धृष्टद्युम्न की बहिन हूँ उसे कोई स्पर्श नहीं सकता, पर कौरवों की सभा में, शरीर पर एक ही वस्त्र धारण किये हुए, थर-थर काँपती तथा दुःख से व्याकुल मुझ रजस्वला को दुःशासन ने स्पर्श किया—खींचा, फिर राजाओं के समाज में पापयुक्त मनवाले धृतराष्ट्र के पुत्र मुझे देखकर हँसे। हे मधुसूदन! पाँचों पांडव, पुत्रों सहित पांचाल देश के राजा द्रुपद तथा सर्व वृष्णी कुल के जीवित रहते हुए भी कौरवों ने मुझे दासी रूप में प्राप्त करने की इच्छा की और उन्होंने मुझे जो धर्म के अनुसार भीष्मपितामह तथा धृतराष्ट्र की पौत्रवधु और पुत्रवधू होती हूँ, बलपूर्वक दासी कहा। इसलिए हे जनार्दन! युद्ध करनेवाले पुरुषों में श्रेष्ठ और महाबलवान पांडवों की मैं निन्दा करती हूँ; क्योंकि वे भी पातिव्रत धर्म पाली और संसार में यशस्विनी मुझे कौरवों से दुःख पाती हुई देखते रहे। हे संहारकर्ता! भीमसेन और अर्जुन ने अल्प पराक्रमी कौरवों द्वारा मुझे दिया गया दुःख सहन किया, इसीलिए भीमसेन के बल को

तथा अर्जुन के गांडीव को धिक्कार है।........हे श्रीकृष्ण! ये पांडव अपनी शरण में आये हुए प्रत्येक की रक्षा करते हैं, परन्तु मेरी रक्षा करने में इन्होंने अपनी दया नहीं दिखलाई। हे वासुदेव! इन पाँच पतियों से मुझे जो पाँच पुत्र उत्पन्न हुए हैं उन पर दृष्टि रखकर ही इन्हें मेरी रक्षा करनी थी। हे श्रीकृष्ण! धनुर्धरों में श्रेष्ठ और युद्ध में शत्रु से अजेय ये पांडव निर्बल धर्तराष्ट्र-पुत्रों का अपराध क्यों सहन कर रहे हैं?'

इस प्रकार के और ऐसे अनेक वचन द्रौपदी श्रीकृष्ण से कहती है और अंत में उनको उपालंभ देते हुए कहती है, 'हे मधुसूदन! पति, पुत्र, सगे-संबंधी, भाई, पिता और तुम कोई मेरे नहीं हो, क्योंकि जब अल्प पराक्रम वाले कौरवों ने मेरा अपमान किया तब शोकहीन पुरुषों की तरह किसी ने भी मेरी सहायता नहीं की। उस समय कर्ण ने जो मेरा उपहास किया है वह दुःख कभी भी शांत नहीं हो सकता। हे केशव! तुम्हें मेरी रक्षा संबंधभाव से या मैं अग्नि-कुंड से उत्पन्न हुई हूँ इसलिए अथवा सखा-भाव से या ईश्वरभाव से करनी थी।' (वनपर्व, अ० १०) इन वचनों में कितना उग्र रोष छिपा है यह सहज प्रकट है। और श्रीकृष्ण जो आश्वासन देते हैं उसमें भी द्रौपदी के प्रति उनका गंभीर स्नेह स्पष्ट दिखाई देता है। कभी यह प्रश्न भी मन में उठता है कि श्रीकृष्ण पांडवों के अधिक मित्र थे या द्रौपदी के?

पांडव-कौरव की द्यूत-क्रीड़ा के समय श्रीकृष्ण द्वारका में न थे, सौभ नगर के शाल्व राजा का नाश करने गये हुए थे, इसीलिए पांडव ऐसा मूर्ख कृत्य कर सके। युद्ध से लौटने पर सूचना मिलते ही श्रीकृष्ण तुरन्त हस्तिनापुर आ पहुँचे, पर तब तक तो बहुत विलम्ब हो चुका था और पांडव भी वन को सिधार गये थे। श्रीकृष्ण वहाँ से तुरन्त ही पांडवों से मिलने आये और द्रौपदी सहित पांडवों को आश्वासन दिया।

वनपर्व का एक दूसरा प्रसंग भी यहाँ देना अनुचित न होगा।

द्रौपदी के अनुसार बलवान क्षत्रियों का इस प्रकार का अपमान सहन करना निर्बलता का ही सूचक था। और इसीलिए उससे परिताप किये बिना नहीं रहा जाता। धर्मराज को उपालंभ देते हुए पहले की और आज की स्थिति की तुलना किये बिना नहीं रहा जाता। उस जैसी अभिमानी स्त्री को क्षण-क्षण में अपनी हीनावस्था तथा शत्रुओं का आनंद खलता है। युधिष्ठिर को वह खरी-खरी सुनाती है, "हे भरतकुल-श्रेष्ठ! वनवास के दुःखों से दुखी अपने भाइयों को देखकर आपको क्रोध नहीं आता इसीलिए मैं समझती हूँ कि आप में क्रोध लेशमात्र भी नहीं है। हे राजन्! जो क्षत्रिय क्रोधित नहीं होता उसे संसार में 'यह क्षत्रिय है' कोई नहीं कहता। उसी प्रकार आज मैं आपको भी क्षत्रियत्वरहित देखती हूँ। हे युधिष्ठिर! समय आने पर यदि क्षत्रिय अपना पराक्रम न दिखाये तो उसका सभी भूतप्राणी तिरस्कार करते हैं, अतः आपको शत्रु को क्षमा नहीं करना चाहिये।' (वनपर्व, अ० २७)

जब इन वचनों से युधिष्ठिर उत्तेजित नहीं होते तो द्रौपदी बुद्धिवाद में उतर आती है और पहले बलि-विरोचन का संवाद कहती है। बलिराज प्रश्न पूछता है, 'हे पितामह! मनुष्य का कल्याण किससे होता है? क्षमा रखने से या क्रोध करने से? इस विषय में मुझे संदेह हुआ है।' तब प्रह्लाद इसका उत्तर देता है, 'हे पुत्र! सदैव क्षमा रखने से अथवा क्रोध करने से मनुष्य का कल्याण नहीं होता। समय-समय पर दोनों का उपयोग करने से कल्याण होता है, यह तू जान।' और क्रोध किस अवसर पर करना और क्षमा कब करना उचित है इस विषय में उपदेश देती है। उत्तर में युधिष्ठिर क्रोध के विरुद्ध अपनी वही पुरानी दलील कह सुनाते हैं (वनपर्व, अ० २८)। तब द्रौपदी चिढ़कर कहती है, 'हे युधिष्ठिर! ईश्वर तथा पूर्व जन्म के कर्म जो आपको मोह प्राप्त करा रहे हैं उन्हें मैं नमस्कार करती हूँ। आपको तो अपने पिता और पितामह जो बलपूर्वक राज्य ग्रहण करने में विश्वास रखते थे, की तरह ही

वर्ताव करना चाहिए था। परन्तु आपकी मति फिर गई है......आपको जीवन से भी धर्म प्रिय है। तो उस धर्म का पालन करने के लिए मेरे सहित भीमसेन, अर्जुन, नकुल तथा सहदेव को भी त्याग दो। हे भरतवंश श्रेष्ठ ! धर्म अपनी रक्षा करनेवाले राजा की रक्षा करता है, ऐसा मैंने महापुरुषों से सुना है। पर वह आपकी रक्षा नहीं कर रहा है। आपने धर्म में निरंतर एकाग्र बुद्धि रखी है ! इसी कारण आप अपने समान या अपने से दीन पुरुषों का अपमान नहीं करते। तो फिर अपने से श्रेष्ठ व्यक्ति का तो करने ही क्यों लगे ? किसी का अपमान बिना अभिमान के नहीं होता और यह तो आपके राज्य का प्रश्न था तब भी आपसे नहीं हुआ......परन्तु आपने सदैव धर्म का सेवन ही किया है तो अधर्म रूप द्यूत-क्रीड़ा की बुद्धि आपको कहाँ से प्राप्त हुई ? जिस द्यूत में आपने राज्य, द्रव्य, आयुध अपने भाई तथा मुझे भी हार दिया। उनको तथा अपने को वनवास के महान् दुःखों को सहन करते देखकर मुझे बड़ा क्लेश होता है।

'हे राजन् ! सभी प्राणी ईश्वर के वश में हैं, अपने वश में नहीं .. हे युधिष्ठिर ! ईश्वर की माया का बल तो देखो कि जो ईश्वर माया द्वारा प्रसार कर लिंग रूप शरीराभिमानी जीव को जड़ रूप शरीर में आत्मज्ञान कराकर परस्पर विध्वंस कराता है...जिस प्रकार माता-पिता अपनी संतान का हित करते हैं उस प्रकार ईश्वर हित नहीं करता, और क्रोध से दूसरे मनुष्यों के द्वारा किसीको सुख और किसीको दुख प्राप्त कराता है, वह ईश्वर दयालु नहीं हो सकता। और मुझे तो ऐसा लगता है कि धर्माचरण करनेवाले को ईश्वर दुःख देता है और अधर्मी को सुख। ऐसे ही धर्माचरण करनेवाले आपको ऐसी आपत्ति में और अधर्मी दुर्योधन की इस राज्य समृद्धि को देखती हूँ, इसीलिये मैं उसकी (ईश्वर) की निंदा करती हूँ। हे श्रेष्ठ राजन् ! धर्मशास्त्र की मर्यादा के विपरीत चलनेवाले, क्रूर, लोभी तथा अधर्मी दुर्योधन को समृद्धि दी इससे उसे क्या फल प्राप्त हुआ होगा ? हे युधिष्ठिर ! जीव को कर्मानुसार फल

मिलता है ऐसा आपका कहना है, तो कर्म की प्रेरणा करनेवाला ईश्वर है, इसलिये उसको फल मिलना चाहिये, जीव को नहीं। जीव द्वारा प्रत्येक काम में किया हुआ पाप यदि उस कराने वाले ईश्वर को प्राप्त नहीं होता तो उसमें ईश्वर की शक्ति ही कारण है। इसीलिए शक्ति-हीन प्राणियों के प्रति मुझे खेद होता है।' (वनपर्व, अ० ३०) कौन कह सकता है कि ऐसा कहनेवाली यह स्त्री आज से तीन हजार वर्ष पहले जन्मी थी ?

परन्तु धर्मावतार युधिष्ठिर को ऐसे नास्तिक वचन क्यों अच्छे लगने लगे ? उनके मतानुसार द्रौपदी के अज्ञान रूप बादल को हटाने के लिए तुरन्त ही धर्म और कर्मफल का उपदेश आरम्भ करते हैं और फिर कभी ऐसी नास्तिक-बुद्धि प्रदर्शित न करे इसके लिए द्रौपदी से प्रार्थना करते हैं। द्रौपदी को तुरन्त ही ऐसा जान पड़ता है कि यह पासा ठीक नहीं पड़ा इसलिए तुरन्त ही नम्रता धारण कर युधिष्ठिर को विश्वास दिलाती है कि उसकी इच्छा धर्म की निंदा करने की न थी, परन्तु वन-वास के दुःखों ने ही इसे अकुला दिया था। फिर भी इतना कहकर वह शान्त नहीं हो जाती—साथ ही उद्योग का महात्म्य भी बतलाती है। वह कहती है, जिस प्रकार तिल में तेल, गायों में दूध और काठ में अग्नि रहती है परन्तु उद्योग किये बिना वह हाथ में नहीं आती, उसी प्रकार कर्मफल पर आधार रखकर बैठने से गया हुआ राज्य पुनः प्राप्त नहीं हो सकता। और राज्य नहीं लौटे तो उसका अर्थ यह होगा कि हमारे भाग्य में राज्य है ही नहीं। किसान खेती करे और फिर वर्षा न हो तो यह दैव का दोष है, पर उसमें उद्योग न करने का असंतोष तो नहीं रहता ? मैं उद्योग करूँ और फलसिद्धि न हो तो ? इस विचार से पुरुषार्थियों को हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहना अच्छा नहीं है, क्योंकि उससे पुरुष को अपने पराक्रम का पता नहीं लगता। साम, दाम, दंड और भेद प्रत्येक

उपाय से अर्थसिद्धि करना यही पराक्रमी पुरुष का धर्म है। (वनपर्व, अ० ३२)

ऐसे कितने ही अर्थपूर्ण वाक्य द्रौपदी ने युधिष्ठिर से कहे। भीमसेन इन वाक्यों से अवश्य उत्तेजित हुआ और उसी आवेश में उसने अपने बड़े भाई को खरीखोटी सुनाई। पहले तो युधिष्ठिर ने उसे धर्मबोध से शान्त करना चाहा, पर जब वह नहीं समझा तो अन्त में दूसरा उपाय काम में लाये। बोले, 'भरतकुल-वंशज भीमसेन! जो पुरुष साहस-पूर्वक पापकर्म करता है उसके लिए वह कर्म दुःखदायक सिद्ध होता है। इसलिए मेरी बात ध्यानपूर्वक सुनो। भूरिश्रवा, शल्य, जरासंध, भीष्म, द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा और दुर्योधनादि धृतराष्ट्र के पुत्र सभी अश्वविद्या में कुशल और महान् धनुर्धारी हैं। जिन राजाओं को हमारे द्वारा क्लेश पहुँचा है वे सब कौरव का आश्रय लेंगे और दुर्योधन से स्नेह होने के कारण उसका हित साधेंगे और ऐश्वर्यवान् होने के कारण युद्ध में पुश्कल द्रव्य व्यय करेंगे। दुर्योधन भी अनेक प्रकार की सुख-सामग्रियों द्वारा उनका खूब आदर-सत्कार करेगा। पुत्रों और मंत्रियों सहित वे युद्ध में प्राण त्याग करेंगे, यह निःसन्देह है। और फिर भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य को कौरवों और हमारे प्रति समान स्नेह है, तो भी वे दुर्योधन का अन्न खाने के कारण उसकी ओर से युद्ध करके प्राण त्याग करेंगे। भीमसेन! वे सब अश्वविद्या में कुशल, सर्वश्री, स्वधर्मपरायण और देवता और दैत्यों को जीतनेवाले हैं। और उनमें महारथी, सर्व अस्त्रविद्या में कुशल, अपराजित और अभेद्य कवच का धारण करने वाला कर्ण है जो निरन्तर इसमें द्वेष रखता है। इसलिए इन सब को पराजित किये बिना तुमसे दुर्योधन का पराजय होना अत्यन्त कठिन है, इस विचार मात्र से मुझे रात में नींद नहीं आती।' (वनपर्व, अ० ३६) धर्मराज के हृदय में, धर्म से अधिक गहराई में ऐसी शंकाओं का शल्य चुभा हुआ नहीं होगा? ऐसी शंकाओं से दुखी युधिष्ठिर महाबाहु अर्जुन को अजेय

देखने की इच्छा करते हैं, उसे इन्द्र के पास दिव्यास्त्र प्राप्त करने के लिए भेजते हैं। गांधीजी की तरह धर्मराज का धर्म भी उनकी व्यवहार-बुद्धि का पूर्ण सहायक लगता है ! ऐसा नास्तिक विचार कभी हमारे अंतःकरण में उत्पन्न होने पर मानव-दुर्बलता समझकर क्षमा करने के योग्य है !

द्रौपदी की प्रीति अर्जुन पर सबसे अधिक थी यह बहुत स्थान पर स्पष्ट दिखाई देती है। द्रौपदी के रसिक और वीर हृदय को संतुष्ट करे ऐसा केवल एक अर्जुन ही है, यह भी कुछ-कुछ समझ में आये बिना नहीं रहता। सहदेव और नकुल को द्रौपदी कभी भूलती नहीं, पर कहीं भी इनसे सीधी याचना करती हुई अथवा इनके पराक्रम में विशेष गर्व का अनुभव करती हुई दिखाई नहीं देती। भीमसेन के तुरन्त आवेश में आ जानेवाले स्वभाव का वह प्रसंगानुसार उपयोग करती है और युधिष्ठिर के शांत हृदय में भी गति ला देने की शक्ति तो केवल उसी में है। उसे धमकाना तथा मधुरता से समझाना भी आता है। आवश्यकता पड़ने पर वह तर्क का भी आश्रय लेती है। वह स्त्री है पर सत्ताधारी होने के अधिक योग्य है। कीचक को भ्रम में डालते हुए या भीष्म को धोखा देकर वरदान लेते हुए वह तनिक भी नहीं हिचकती और फिर भी सत्यभामा को उपदेश देते हुए स्त्रीधर्म की प्रणेता हो सकती है। नम्रता उसके स्वभाव में नहीं परन्तु उसका भी अभिनय करना हो तो वह सफलतापूर्वक कर सकती है। वह मानवीय विकारों में नहीं फँसती, पर उनका प्रदर्शन अनुकूल समय पर अपनी कार्यसिद्धि के लिए करती है। अर्जुन जब सुभद्रा से विवाह कर लाते हैं तब 'सुभद्रा के पास जाओ !' यह कहती हुई वह अपूर्व स्त्री केवल स्त्री-स्वभाव सुलभ ईर्ष्या का प्रदर्शन करती है या उसके द्वारा अर्जुन को अपनी ओर अधिक आकर्षित करती है, ऐसा कौन कह सकता है !

द्रौपदी के प्रति पांडवों का भाव ऐसा है जैसे वे उसे अपना एक पूज्य कुल-देवता मानते हों अथवा पाँचों इंद्रियों जैसे पाँचों

पांडव की वह आत्मा हो और वे उसके वशीभूत हो कार्य करते हों। प्रत्येक उससे स्नेह करते हुए भी उसके तेज से आक्रांत जान पड़ते हैं। उसमें कुछ ऐसा आकर्षण है कि उसकी अतितेजस्विता का वर्चस्व कभी खलता भी हो तो भी किसी का उससे दूर हटने का मन नहीं होता। माता की तरह वह उनकी सँभाल रखती है, पत्नी की तरह उन्हें प्रसन्न रखती है। यदि उन्हें द्रौपदी की महत्वाकांक्षा को संतुष्ट न करना होता तो क्या इतने पराक्रम करते ?

यह नहीं कहा जा सकता कि द्रौपदी में सुकुमारता न थी। दुःख पड़ने पर उसके नेत्र आँसुओं से प्लावित हो उठते थे, परन्तु उसके आँसुओं का मूल्य बहुत महँगा चुकाना पड़ता था। बस इतना ही इसमें अंतर है। उसकी सुकोमल देह को दुःख होता तभी वह आँसू बहाती। उस शरीर में रहनेवाली बलवान आत्मा पर आघात होता तो निश्चय ही उसमें से प्रचंड ज्वालायें निकलने लगतीं। उस स्त्री का या तो मित्र होकर रहा जा सकता था या शत्रु होकर। शत्रु या मित्र के अतिरिक्त संबंध रूप में कोई और दूसरी पदवी शक्य न थी।

और फिर भी वह स्त्री महत्वाकांक्षिणी थी, पर साहस रहित आकांक्षा उसे संतोष नहीं दे सकती थी। गंधमादन वन से सहस्र दल कमल लेने के लिए वह भीम को भेजती है, तब राक्षसों से भरे वन में भीम को अकेला भेजते हुए उसे जरा भी संकोच या घबराहट नहीं होती और वन में भी वह रानी की-सी शान से ही रहती है। जयद्रथ द्वारा भेजे हुए कोटिक को उत्तर देते और जयद्रथ को सत्कार के लिए निमंत्रित करते हुए वह बड़े घर की कुल-वधू अपने बड़प्पन के अनुकूल ही उत्तर देती है और जयद्रथ का स्वागत करते समय भी साम्राज्ञी का गौरव उसे नहीं छोड़ता।

जयद्रथ द्रौपदी का हरण करता है उस समय भी द्रौपदी का प्रभाव छिप नहीं पाता। वह अबला और अकेली थी इससे उसका जोर कुछ

चला नहीं यह सच है, परन्तु गर्व और प्रतिभा उस समय भी उसकी वाणी से प्रवाहमान है। उसके तिरस्कार में एक प्रकार की प्रचण्ड ज्वाला है और जिस पर भी उसका प्रयोग हो गया उसे यह भस्म किये बिना नहीं रहती।

युधिष्ठिर के शांत और धीमे स्वभाव के कारण कई बार यह अपना मानसिक स्वास्थ्य खो देती है, परन्तु जहाँ तक हो सकता उनके सम्मान को जरा भी हानि न पहुँचे, ध्यान रखने का प्रयत्न करती हुई दिखाई देती है। जब युधिष्ठिर जयद्रथ को नहीं मारने का आदेश देते हैं तो द्रौपदी, "यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो तो जयद्रथ को मारे बिना न छोड़ो।" भीमार्जुन से भी यह कहे बिना नहीं रहती। वे जब उसको पकड़ लाते हैं और युधिष्ठिर उसे छोड़ देने के लिए कहते हैं तब भीम कहता है, "द्रौपदी कहे तो इसे छोड़ दूँ!" युधिष्ठिर फिर भीम से उसे छोड़ देने के लिए कहते हैं और द्रौपदी भी युधिष्ठिर का मनोभाव जान कर बिना कहे आज्ञा दे देती है। इस अवसर पर चाहे कितना भी क्रोध क्यों न आया हो फिर भी युधिष्ठिर की महत्ता न घटे यह चिंता प्रदर्शित किये बिना नहीं रहती।

अज्ञातवास का समय अब पास आता जा रहा है। जन्म से जिसने कुछ भी काम नहीं किया ऐसी द्रौपदी कौन सा काम करने के लिए तैयार हो जायेगी इसकी पांडवों को बड़ी चिंता हुई, परन्तु समय को परखनेवाली यह मानिनी स्त्री सैरन्ध्री का कार्य स्वीकार कर लेती है और पांडव विराट् नगर की ओर चल देते हैं। रानी सुदेष्णा को द्रौपदी के देखने पर शंका हुई कि 'इसे देखकर राजा कदाचित् मुझे त्याग न दे?' कौन कह सकता है कि अनुचित थी? द्रौपदी चाहे और उसके शक्ति-पाश में न फँसे ऐसा पुरुष वसुंधरा के छोर पर कोई न था। उसकी इच्छा न हो तो इन्द्र की भी सामर्थ्य नहीं कि उसे मोहित कर सके। 'पाँच गंधर्व मेरे पति हैं और मेरी रक्षा करते हैं।' ऐसा कहकर

द्रौपदी वहाँ रहने लगती है। रानी सुदेष्णा भोली थी, इसलिए वह द्रौपदी को पहचान न सकी।

सुरक्षित सौंदर्य प्रेरणा देता है और अरक्षित सौंदर्य देखकर मानव की पाशवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है। अग्नि-सदृश सौंदर्य भी सुख-दुःख दोनों लाता है। जो सौंदर्य द्रौपदी को साम्राज्ञी रूप में और भी सुशोभित करनेवाला था वह उसकी असहाय अवस्था में और दासी होने के कारण उसके कष्टों में वृद्धि करने का साधानभूत हो गया। चाहे जैसी बलवती क्यों न हो फिर भी स्त्री तो स्त्री ही है। उसके पीछे यदि किसी पुरुष का रक्षा-बल न दिखाई दे तो न जाने क्यों पुरुष जाति उसका सम्मान करना भूल जाती है। असहाय और अरक्षित दिखाई देनेवाली द्रौपदी के साथ भी ऐसा ही हुआ। उसे देखकर कीचक की पशुवृत्ति जाग उठी। रानी सुदेष्णा ने भाई का पक्ष लेकर उसका दुःख निवारण करने के लिए द्रौपदी को मदिरा ले जाने के बहाने भेजी। द्रौपदी उसका तिरस्कार करके राज-सभा में फरियाद करने गई, परन्तु राजा के सामने ही कीचक ने द्रौपदी के केश पकड़कर उसे पीटा। द्रौपदी का क्रोध इस समय असह्य हो गया। युधिष्ठिर और भीम दोनों वहाँ हैं पर कुछ कर नहीं सकते। राजा असहाय स्त्री का पक्ष लेकर न्याय करने के बदले बलवान कीचक को कुछ भी कहने में असमर्थ हो जाता है। दास-दासियों के प्रति नीति-अनीति का मूल्यांकन तो आज भी कहाँ होता है? इन्द्रप्रस्थ की महारानी इस अपमान को किस प्रकार सह सकी होगी यह तो उसकी अंतरात्मा ही जाने!

द्रौपदी को पांडवों की निर्बलता इस समय बहुत ही खलती है। वह जानती है कि शांति के अवतार युधिष्ठिर या अवसरवादी अर्जुन इस समय आवेश में आकर उसकी सहायता करने अथवा वैर का प्रतिकार करने के लिए उद्यत नहीं होंगे और कीचक के जीवित रहते हुए उसकी जलती हुई आत्मा को पल भर भी शांति मिलनेवाली नहीं। बलवान

भीम के बल और स्वभाव पर श्रद्धा रखकर उसे और उसके सोये हुए स्वभाव को वह जगाती है। द्रौपदी की इस समय की वेदना वास्तव में हृदय को हिला देनेवाली है।

भीम के द्वारा कीचक का वध कराने की कथा का संबंध द्रौपदी के किसी विशिष्ट गुण से नहीं, अतः इस विषय में हम अधिक आगे न जायेंगे।

रानी सुदेष्णा के अंतःपुर में सैरंध्री का स्थान सामान्य दासियों से कुछ ऊँचा होना चाहिए। उत्तरकुमार 'सारथि के बिना युद्ध में कैसे जाय?' इस असमञ्जस्य में है तब अर्जुन के कहने से द्रौपदी उसे बृहन्नला को सारथि बनाकर ले जाने की सलाह देती है। ऐसे भाग्य-निर्णय के समय पर जिसकी बात का कदाचित् ही कोई मूल्य हो ऐसी दासी का परामर्श उत्तरकुमार मान लेता क्या? और वह भी बृहन्नला जैसे अपरिचित गायक के लिए? बृहन्नला का अर्जुन रूप में परिचय तो उत्तरकुमार को फिर बाद में मिलता है। द्रौपदी के बातचीत करने के ढंग में भी दासत्व का अंश दिखाई नहीं देता।

इस प्रसंग के बाद द्रौपदी, उद्योग पर्व में जब श्रीकृष्ण संधि का संदेश ले जाते हैं, वहाँ दिखाई देती है। सहदेव के अतिरिक्त सभी पांडव—भीम और अर्जुन सहित—जहाँ तक हो सके, सुलह कराने का आग्रह श्रीकृष्ण से करते हैं। भीम के निर्बलहीन वचन सुनकर श्रीकृष्ण को भी आश्चर्य होता है। केवल द्रौपदी ही युद्ध के लिए वास्तविक आतुरता दिखाती है। इस प्रसंग से तो सचमुच ऐसा लगने लगता है कि यदि वह स्त्री न होती तो महाभारत का युद्ध न होता और होता भी तो जीता न जाता। शोकाभिभूत द्रौपदी भीमसेन को अत्यन्त शांत हुआ देख आँखों में आँसू भरकर श्रीकृष्ण से कहती है, "हे मधुसूदन! जिस प्रकार छल करके अमात्य सहित धृतराष्ट्र के पुत्र ने पांडवों को राज्य-भ्रष्ट किया है वह सब तुम जानते हो······युधिष्ठिर ने 'पाँच गाँव हमें दो' यह दुर्योधन तथा

उसके संबंधियों से कहलवाया है, परन्तु हे श्रीकृष्ण ! संधि की इच्छा करनेवाले युधिष्ठिर के ऐसे वाक्य सुनकर भी दुर्योधन ने वैसा नहीं किया, इसलिए हे श्रीकृष्ण ! राज्य दिये बिना यदि दुर्योधन संधि करना चाहे तो कभी न करना। हे महाबाहो ! संजय-सहित पांडव क्रोधित तथा भयंकर दुर्योधन की सेना का सामना करने में समर्थ होंगे। इस विषय में साम तथा दाम से कोई भी अर्थसिद्धि हो सके, यह बात नहीं है, अतः इस विषय में तुम्हें दया नहीं दिखानी है। जो शत्रु साम अथवा दाम से भी शांत न हो उसके लिए तो दंड का ही उपयोग करना चाहिए।......" फिर कहती है, "हे केशव ! मुझ जैसी स्त्री पृथ्वी पर कौन है ? द्रुपद की कन्या, यज्ञवेदी से उत्पन्न हुई, धृष्टद्युम्न की बहिन, तुम्हारी प्रिय सखी, आजमीढ़ के कुल में प्राप्त हुई, महात्मा पांडु की पुत्र-वधू और पाँच तेजस्वी इन्द्र के समान पाँचों पांडवों की पत्नी हूँ। उन पांडवों के देखते और तुम्हारे विद्यमान होते हुए मेरे केश खींचे गये और सभा के बीच मैं क्लेश को प्राप्त हुई। पांचाल राजाओं, वृष्णियों और पांडवों के जीते जी, पापिष्ठों की दासी होकर सभा में मैं खड़ी हुई......हे कृष्ण ! भीम के बल और अर्जुन के धनुष धारण करने को धिक्कार है। नहीं तो ऐसा कृत्य करके दुर्योधन दो घड़ी भी जीवित रह सकता था ? हे कृष्ण ! मैं तुम्हारा अनुग्रह प्राप्त करने के योग्य होऊँ और मेरे प्रति तुम्हें दया हो तो धृतराष्ट्र के पुत्रों पर तुम्हें पूर्ण क्रोध करना है।" थोड़ी देर बाद फिर द्रौपदी अपने सुन्दर केश-पाश को हाथ में लेकर श्रीकृष्ण को दिखाते हुए, आँखों में आँसू लाकर कहती है, "पुंडरीकाक्ष ! दुःशासन के हाथों खींचा हुआ यह केशपाश तुम देखो। उसने कैसा खींचा है ! संधि के इच्छित अपने सभी कार्यों के साथ इसे भी याद रखना। हे श्रीकृष्ण ! सम्भव है, भीम और अर्जुन कृपणता के कारण संधि की इच्छा रखते हों तो महारथी पुत्रों सहित मेरे वृद्ध पिता और अभिमन्यु को आगे कर मेरे महापराक्रमी पाँचों पुत्र कौरवों से युद्ध करेंगे। हे कृष्ण ! जब तक पापी

दुःशासन का हाथ कटा हुआ और रक्त से अच्छी तरह भरा हुआ मैं न देख लूँ तब तक मेरे हृदय को कैसे शांति मिल सकती है ? प्रज्वलित अग्नि की तरह हृदय में क्रोध को धारण कर प्रतीक्षा करते-करते मुझे तेरह वर्ष बीत गये। तुम इस निमित्त धर्म का विचार करने जा रहे हो परन्तु कौरवों के वचन-बाणों से पीड़ित मेरा हृदय विदीर्ण हुआ जा रहा है।'

कायर के हृदय में भी वीरता जागृत करनेवाले द्रौपदी के इन वचनों को सुनकर उसके प्रिय सखा श्रीकृष्ण के अंतर में क्या हुआ होगा ? इस प्रतापी स्त्री के आगे पांडव भी निरुत्साही से लगते हैं। केवल श्रीकृष्ण सदृश पुरुषोत्तम ही उसे धैर्य दे सकते हैं।

श्रीकृष्ण रोती हुई द्रौपदी से कहते हैं, "हे द्रौपदी ! कुछ समय में तू कौरवों की स्त्रियों को रोते हुए देखेगी। हे भीरु ! जिन पर तू क्रोधित हुइ है उनकी स्त्रियाँ अपने बंधुओं की मृत्यु से जिस तरह तू रो रही है वैसे ही रोयेंगी। मैं स्वयं युधिष्ठिर की आज्ञा से भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव सहित यह कार्य करूँगा। कालवश हुए धृतराष्ट्र के पुत्रों ने यदि मेरे वचन नहीं सुने तो मृत्यु को प्राप्त हो पृथ्वी पर शयन करेंगे और श्वान तथा शृगाल उनका भक्षण करेंगे। हिमवान् पर्वत चलायमान हो जाय, पृथ्वी के सौ टुकड़े हो जायँ या नक्षत्रों सहित आकाश गिर पड़े तो भी मेरा वचन मिथ्या नहीं हो सकता। मैं यह सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ, इसलिए तू रो मत ! थोड़े ही समय में तू अपने पति को शत्रुओं से रहित तथा राजलक्ष्मी से युक्त देखेगी।" (उद्योग पर्व, अ० ८२)

श्रीकृष्ण के अतिरिक्त इतने विश्वासपूर्वक ऐसा आश्वासन दूसरा नहीं दे सकता और द्रौपदी के अतिरिक्त सखाभाव से इतना अधिकार किसी दूसरे का हो नहीं सकता था।

द्रौपदी और कृष्ण के बीच एक प्रकार की जिसे अंग्रेज़ी में 'Camaraderi' कहते हैं—ऐसी साहचर्य की भावना है और उन दोनों में पुरुषत्व तथा स्त्रीत्व—जिसे हम 'Super man' और 'Super

woman' कहते हैं—वह लोकोत्तर है। साधुता और असाधुता मापने की नीति का सामान्य आदर्श इन दोनों को मापने के लिए व्यर्थ हो जाता है। ये दोनों किसी नीति या नियम से बँधे हुए नहीं, पर नीति और नियमों के बनानेवाले हैं। दोनों लोकमत के प्रवाह में नहीं बहते, पर उसे अपने अनुकूल बना लेते हैं। इन दोनों के व्यक्तित्व को सबसे प्रथम स्थान न मिले, ऐसी कोई भी स्थिति या पदवी अस्वीकार नहीं कर सकती। परस्पर की सामान्य विशेषताओं से ही दोनों एक दूसरे को आकर्षित करते हैं।

गोपियों की भक्ति में श्रद्धा और प्रेम है पर समानता नहीं। द्रौपदी और श्रीकृष्ण के संबंध में साख्यभाव की समानता है। श्रीकृष्ण जैसे पुरुष का हृदय प्रियतमाओं के मनोरथ पूर्ण करने के लिए सदैव तत्पर रहता है, परन्तु आदेश तथा प्रेरणा की आकांक्षा तो वह सदा द्रौपदी जैसे ज्वलंत स्त्रीत्व से ही करता है। पत्नियों की इच्छा पूरी करने में उनके पतियों को आनंद मिलता है, पर सखी का आदेश करने और उसके साथ स्वप्न-रचना करने की उनके हृदय की गंभीर अभिलाषा स्पष्ट दिखाई देती है। बाह्य संसार के प्रति स्नेह या सत्ता के पहने हुए कवच उतार कर उसको उसके वास्तविक रूप में देखे और पहचाने, उसकी महात्वाकांक्षाओं को विजय-गीत से उत्साह दे तथा उसकी दुर्बलताओं से दुर्बलता के लिए ही प्रेम करे और भावभीने आंतरिक स्नेह से पोषित करे ऐसी सखी पाने की आकांक्षा किस पुरुष को न होती होगी? और कौन-सा वास्तविक स्त्री-हृदय ऐसे पुरुष की मैत्री पाने के लिए न तरसता होगा?

एक प्रश्न बहुत आश्चर्यजनक न होने पर भी उठे बिना नहीं रहता। द्रौपदी और श्रीकृष्ण का विवाह हो गया होता तो? श्रीकृष्ण की महत्ता जितनी आज है कदाचित् उससे अधिक न बढ़ती, पर वृष्णियों और कुरुकुल के विनाशक भविष्य के बदले महाभारत की कथा क्या दूसरी

तरह ही न लिखी जाती ? इन दोनों विनाश के दूतों के बदले भारतवर्ष को अधिक बलवान तथा अधिक सुगठित छोड़ जाने में क्या वे शक्तिमान न होते ? 'होते तो' इस शब्द में संसार की कैसी अपूर्व भावनाओं तथा परिस्थितियों की ध्वनि निहित है यह कौन कह सकता है ?

पांडव द्वारा यह कुलनाशक युद्ध कराना योग्य था या नहीं यह एक दूसरा प्रश्न है। कौरवों के अपमान का बदला लेने की इच्छा रखनेवाली पांचाल देश के राजा द्रुपद की पुत्री द्रौपदी थी। वह अपमानित पांडवों की पत्नी थी। साथ ही वह उस अपमान से आघात पाई हुई स्त्री थी। भारतवर्ष के चक्रवर्ती-पद की आकांक्षा रखनेवाले राजाओं को विजय न मिले ऐसी दृढ़ इच्छावाले, राजनीतिज्ञ तथा नीति-निपुण श्रीकृष्ण की वह सखी थी। और जिसके स्वभाव में कायरता न थी ऐसी द्रौपदी युद्ध की इच्छा न करे तो किस वस्तु की करे ? अपने जन्म, संस्कार और स्वभाव— तीनों से वह युद्ध की देवी ही सृष्टि में अवतरित हुई थी। उसके जैसी परिस्थितियों में उस जैसी स्त्री और दूसरी सलाह दे ही क्या सकती थी ?

उसके बाद तो बहुत सी घटनाएँ हो जाती हैं। श्रीकृष्ण संधि का संदेश लेकर जाते हैं और असफल होकर लौट आते हैं और महाभारत के युद्ध की तैयारियाँ होने लगती हैं। अठारह दिन तक अविरत रूप से रक्त की नदियाँ कुरुक्षेत्र में बहीं। इन सब में द्रौपदी कहीं भी नहीं आती, फिर भी उसका व्यक्तित्व अदृश्य रूप से इन सबको चारों ओर से घेरे रहता हो, इसका भान सदैव बना रहता है। संपूर्ण महाभारत में श्रीकृष्ण और द्रौपदी ये दोनों ही ऐसी शक्तियाँ हैं जिनकी इच्छाशक्ति किसीसे भी और कभी भी थकती नहीं। अपनी उद्देश्यसिद्धि के लिए ये कैसे भी साधन ग्रहण करने में हिचकते नहीं। ये दोनों केवल अपने ध्येय को ही देखते हैं। उस ध्येय को प्राप्त करने में इन्हें छोटे-मोटे नियमों का उल्लंघन करना पड़े तो उसकी ये पर्वाह नहीं करते और

साधन शुद्ध हो इसकी भी इन्हें चिंता नहीं।

युद्ध के समय में द्रौपदी की अधिक उपस्थिति न दिखलाकर कवि ने एक प्रकार का औचित्य ही दिखाया है। चाहे जैसी सबल स्त्री क्यों न हो, पर युद्ध जैसे अमानुषी कार्य के बीच लाने या साक्षी-भूत बनाने से रसवृत्ति का क्षय होता है। अजेय इच्छाशक्तिवाली द्रौपदी के अंतर का कोमल भाग युद्ध को आवश्यक और धर्मयुद्ध मानता था, फिर भी इस संहार को देखकर अवश्य ही काँप उठा होगा यह विचार हमारे मन में आये बिना नहीं रहता।

युद्ध के बाद अश्वत्थामा द्वारा किये हुए रात्रि-संहार के अवसर पर ही द्रौपदी इस नियम का भंग करती है—उसे देखे बिना नहीं रहा जाता। पुत्रों और कुटुम्बियों का क्षात्रधर्म के विरुद्ध हुआ संहार देखकर उसकी अंतरात्मा व्यथित हो उठती है और अश्वत्थामा का वध हुए बिना अन्न न ग्रहण करने की प्रतिज्ञा करती है और उसी आवेश में धर्मराज को कटोक्ति सुनाये बिना नहीं रहती—'अब पुत्रों के बिना तुम राज्य-भोग कर सुखी होना!' इस समय भीम और श्रीकृष्ण से प्रेरित अर्जुन उसकी सहायता करता है और अश्वत्थामा के साथ घोर युद्ध कर उसके सिर से मणि ले आता है। इस सब में कृष्ण की एक विशेषता अवश्य दिखाई देती है। द्रौपदी का प्रिय कार्य करना हो तो श्रीकृष्ण जहाँ तक हो सकता है, अर्जुन या भीम से ही कराते हैं अथवा कराने का डौल करते हैं। यदि इनसे नहीं बनता तो विवश होकर प्रत्यक्ष रूप से स्वयं उस कार्य में अग्रसर होते हैं। स्त्री का मित्र बनने की इच्छा रखनेवाले पुरुष को उस स्त्री के पति का मित्र बनने का प्रयत्न पहले करना चाहिए इस सूत्र को कृष्ण जैसे चतुर नर कैसे भूल सकते थे?

युद्ध के बाद द्रौपदी का सूचन बहुत थोड़े प्रसंगों पर महाभारतकार ने किया है। कर्ण की मृत्यु से युधिष्ठिर को श्मशान वैराग्य हुआ और संन्यास लेने का निश्चय करते हैं तब सबके साथ द्रौपदी भी वैसा न

करने की प्रार्थना करती हैं। अश्वमेध यज्ञ करते समय पांडवों की सहधर्मिणी रूप में और ऐश्वर्य का प्रदर्शन करती हुई द्रौपदी को हम देखते हैं। तत्पश्चात् उत्तरा की गर्भरक्षा करने के लिए द्रौपदी मधुसूदन से प्रार्थना करती है।

द्रौपदी के अंतिम दर्शन पांडवों के साथ हिमालय पर तप करने जाते समय होते हैं। अर्जुन पर उसका विशेष प्रेम था यह बात महाभारतकार को अंत तक खटकती है और इस पाप के फलस्वरूप सबसे पहले उसी के शरीर का अन्त होता है, ऐसा धर्मराज युधिष्ठिर के मुख से कहलाया गया है। पुरुष हृदय की ईर्ष्या का इसमें कुछ अंश होगा अवश्य ?

इस अद्‍भुत स्त्री का जन्म और मृत्यु—दोनों उसके व्यक्तित्व की तरह सबसे भिन्न प्रकार से हुआ। उसमें शौर्य था और शक्ति की अपेक्षा थी। उसमें बल था और बलवान को आकर्षित करने की शक्ति थी। उसमें गर्व था और गर्व को संतुष्ट करने की सामर्थ्य थी। उसमें बुद्धि थी और उसका उपयोग करने का विवेक था। उसमें सौंदर्य था और उसे सजाने की कला उसमें थी।

उसे समय पहचानना और समय की प्रतीक्षा करना आता था। उसे धीरज रखना और प्रतिशोध लेना भी आता था। उसे स्वाश्रयी होना और परिस्थितियों को पहचानना आता था। उसे सेवा स्वीकार करना और उसकी रक्षा करना आता था।

बस यही उसका महामंत्र था। तेजस्विता उसके स्वभाव में थी। शक्ति उसके हृदय में थी और अभिमान उसकी दृष्टि में था।

महान् पद के लिए वह पैदा हुई थी। महापुरुषों से उसकी मित्रता थी। उनके संबंध से महत्ता प्राप्त करती, उनकी संगति से महत्ता की रक्षा करती थी।

प्राचीन आर्यावर्त की स्त्री-सृष्टि में, ज्योतिर्माला में सविता सदृश, जाज्वल्यमान तथा तेजस्वीता से वह सदा ही प्रकाशमान रहेगी !

मीराबाई : एक दृष्टि

सुन्दरियाँ सदैव रसिकता की प्रत्यक्ष मूर्ति समझी गई हैं और कविता रसिकता की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति मानी जाती है। कवि के लिए सुन्दरी और कविता बहुत अंशों में समान प्रिय होती हैं। रसिक हृदय का आनंद कविता के स्फुरण में या सुन्दरी के दर्शन के समय एक ही प्रकार का होता है। सौंदर्य कविता का विषय है; कविता की सृष्टि सौंदर्य का सृजन करने के लिए होती है अथवा सौंदर्य-दर्शन में लोलुप रसवृत्ति का व्यक्त स्वरूप कविता है। और सर्वसौंदर्य का सार सुन्दरी ही है। कविता जहाँ सौंदर्य-पोषक सनातन भावों का गान नहीं करती वहाँ कविता कविता नहीं रह जाती।

कविता और सुन्दरी का इतना निकट संबंध होने पर भी कविता गानेवाली सुन्दरियाँ कौन जाने क्यों संसार में बहुत थोड़ी ही दिखाई देती हैं। अपने सौंदर्य का द्रष्टा स्वयं नहीं हुआ जाता कदाचित् यही कारण तो न हो ? अपने में निहित सौंदर्य का अज्ञान तथा बाह्य सौंदर्य-दर्शन की आसक्ति इन दो कारणों ने ही वास्तव में कविता और सुन्दरी को दूर ही दूर रक्खा है। सुन्दरियों के देखने-विचारने के संकुचित प्रदेश, संसार के बंधन या भोग्य दशा में निहित परतंत्रता अथवा दूसरे के अनुकूल होने में स्वत्व-विकास का विनाश ये सब भी इस दशा के कारणभूत गिने जा सकते हैं। मनुष्य अपना व्यक्तित्व विकसित कर फिर उसका समर्पण करे और व्यक्तित्व के विकसित होने से पहले ही उसका दान कर दिया जाय इन दो स्थितियों के बीच बहुत अंतर है। एक में सौंदर्य-दर्शन की

शक्ति पराकाष्ठा को पहुँच जाती है और उसी में मनुष्य स्वत्व खोकर विलीन हो जाता है। दूसरे में सौंदर्य-दर्शन करने की शक्ति ही नहीं होती अथवा बीज रूप में हो तो स्वत्व खोने से इस शक्ति का भी विनाश हो जाता है। स्वत्व के ज्ञान बिना सौंदर्य-दर्शन की शक्ति का विकास नहीं होता। देव-मन्दिर में चढ़ाये गये विकसित पुष्प सुवास और शोभा में वृद्धि करते हैं, उसी प्रकार विकसित व्यक्तित्व के समर्पण से भी सौंदर्य और रस के झरने फूट पड़ते हैं और महत्ता का सृजन होता है। पुष्प की और व्यक्तित्व की अविकसित कलियों से कौन-सा लाभ हो सकता है इसकी स्वप्न-रचना कोई कवि भले ही कर ले, पर उनमें क्वचित ही सत्य हो सकते हैं।

कविता-गान करनेवाली सुन्दरियों का सृजन बहुत कम होने का एक दूसरा कारण भी है। पहले संस्कारी होना जन-समाज में सामान्य अधिकार न था, केवल श्रीमंत और उच्च समझे जानेवाले कुलों में ही उसके लिए व्यवस्था और समय था। सामान्य जन-समाज में पुरुष संस्कारी हो सकते थे क्योंकि ये लोग संस्कार की खोज में बाहर जा सकते थे, पर संस्कारी कुटुंबों में भी स्त्रियों की संस्कार-मर्यादा घर की दीवारों तक ही थी। संस्कार बिना सौंदर्य-दर्शन नहीं होता और सौंदर्य-दर्शन को मर्यादित नहीं किया जा सकता। जहाँ-जहाँ स्त्रियों के चारों ओर रचा हुआ यह प्राचीर टूटा है या उन्होंने स्वयं अपने हाथों से तोड़ा है वहीं स्त्रियाँ अपनी आत्मा का परिमल-प्रसार करने में समर्थ हो सकी हैं। द्रौपदी ने यह प्राचीर तोड़ा और पुराण-काल में वह अद्वितीय स्थान पर विराज रही है। नूरजहाँ ने यह प्राचीर तोड़ा, भारत में आज वह अद्वितीय, अपूर्व साम्राज्ञी के रूप में सुशोभित है। मीरा ने तोड़ा और वह सदियों से लोक-हृदय के गंभीर-तन्तुओं को हिला देनेवाली प्रेरणा-मूर्ति बनी हुई है।

मीरा का जीवन और कविता एक ऐसे ही महाप्रयत्न का परिणाम है। बचपन से ही मीरा का मन संसार में अनुरक्त न था। अत्यन्त प्रेम-भाव के वेग से उसकी अंतर-वृत्ति रँगी हुई थी। वह वृत्ति भक्त पितामह

के यहाँ बचपन में पोषित हुई। वैधव्य ने इस वृत्ति को जीवन में ओत-प्रोत करने का अवसर दिया। महारानी पद और राजकुल ने उसके संस्कारों को विकसित किया और प्रतिकूलताओं के विरुद्ध विद्रोह करने की शक्ति और निर्धारित आदर्शों को प्राप्त करने का उत्साह उसमें ला दिया और इन सब के परिणामस्वरूप इसके विकसित व्यक्तित्व ने आदर्श को आत्म-समर्पण कर चिरंतनता प्राप्त कर ली।

मीरा की कविता और जीवन को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। उसके जीवन रस के निर्झर से ही उसकी कविता-धारा बही है; उसकी कविता रसप्रवाह से उसके जीवन का निर्माण हुआ और येदोनों—उसका जीवन और उसकी कविता—एक दूसरे से इतने अभिन्न हैं कि यदि इन्हें अलग कर दिया जाय तो फिर उनका कुछ भी महत्व न रह जायगा।

शताब्दियाँ बीत गईं, परन्तु इस स्त्री का आकर्षण अब भी ज्यों का त्यों है और जितनी कविताएँ उसने लिखी होंगी उससे कहीं अधिक उसके नाम से गायी जाती हैं। कोई भी कविता चाहे किसी की हो, पर उसके नाम से गाने में लोगों को आनंद आता है। मीरा की लोकप्रियता की नींव इतने गहरे कैसे जम गई होगी?

उसकी लोकप्रियता के एक नहीं अनेकों कारण हैं। लोग स्वयं बहुत साधारण रीति से जीवन व्यतीत करते हैं, परन्तु किसी के जीवन की अद्‌भुतता में उन्हें बहुत आनंद आता है और उसमें यह तो स्त्री-जाति, राजकुल में पैदा हुई महारानी-पद पर पदासीन ऐसी स्त्री थी, फिर इसका जादू लोक-हृदय पर क्यों न चलता? उसका प्रताप गिरधरलाल के साक्षात्कार के चमत्कार की मान्यता पर आधारित है। उसकी अटल श्रद्धा से उसका प्रभाव फैला है। दूसरे, प्रवास के कारण उसका भाषा-ज्ञान बढ़ा और बहुत सी भाषाओं में कविता रचने की उसकी शक्ति ने उसे कई प्रान्तों से परिचित कराया। हजारों वर्षों से आर्य-हृदय को आकर्षित करनेवाले कृष्ण और उन्हीं के प्रति अपना सनातन प्रेम

उसने प्रियतमा भाव से गाया और वह भी पांडित्य का प्रदर्शन करके नहीं, वरन् लोगों के नित्यप्रति के जीवन के प्रसंगों में, रसिक हृदय का उत्साह भरकर। उसकी लोकप्रियता के ये सब कारण हैं, फिर भी मानव-हृदय की एक स्वाभाविक दुर्बलता—महापदवीधारी व्यक्ति के परिचय से प्राप्त होनेवाला संतोष—यह भी एक कारण माना जा सकता है।

हरि तथा लोगों की लाड़ली मीरा के काव्य को केवल काव्य के रूप में ही देखने से उनमें से बहुत से काव्य सामान्य हैं, यह कहने का साहस यदि कोई करे तो उसमें कोई धृष्टता न होगी। मीरा की मूल कविताएँ कितनी हैं इसी का पूरा विश्वास अभी किसी को नहीं है। आजकल प्रकाशित कविताओं में से मीरा की कितनी होंगी इस विषय में संशोधकों के विभिन्न मत हैं। मीरा की भिन्न-भिन्न कविताओं में प्रायः उसे एक ही बात कहने को होती है और उसके नाम से प्रचलित पदों में कहीं कहीं ग्रामीणता की झलक दिखाई दे जाती है।

इन दोषों के प्रदर्शन से मीरा की कविता का मूल्य नहीं घट जाता। वह सर्वत्र एक ही बात कहती है और उसका ज्ञान भी परिमित है, इसी से उसकी कविताओं में विविधता की अपेक्षा लालित्य और कोमलता अधिक आ गई है।

परन्तु इसमें विविधता है ही नहीं यह तो नहीं कहा जा सकता। उसने संन्यास लिया पर शृङ्गार गाया। उसने तपस्विनी होकर रस का पोषण किया। विरागिनी होते हुए भी प्रेम-राग की धुन उसने जगायी। संसार छोड़ा, पर सांसारी के सब भावों से उसने श्री गिरधरलाल को गाया और इन परस्पर विरोधाभासी मिश्रणों ने उसकी कविता में एक दूसरे प्रकार की ही प्रफुल्लता और रस भर दिया है। मीरा की कविता में विशालता नहीं—यह दोष उसके ज्ञान की संकीर्ण सीमाओं के कारण आ गया है; उसके हृदय का नहीं। हृदय ने उसके भावों में प्रबलता ला दी; ज्ञान ने उसकी दिशाओं को मर्यादित कर दिया। मीरा ज्ञानी नहीं, ज्ञानी होने का दावा भी नहीं करती। अन्तःप्रेरणा से जितना दिखाई दे, उतने

ज्ञान का स्फुरण उसमें स्वयं ही हो गया है। मीरा अर्थात् विद्वत्ता नहीं, वह तो केवल भावनाओं की परंपरा है।

मीरा अर्थात् सत्ता नहीं वरन् शोभा। मीरा में गहनता नहीं, वरन् रसिकता और भावना है। यौवन को उसके गीतों में उल्लास मिलता है, प्रौढ़ वय में वह रसवृत्ति को सजग रखती है। वृद्ध अंतर में उसके प्रभाव से अतिवृद्धता का अनुभव नहीं होता। उसके स्वर में आनन्द और सनातन स्नेह की पुकार है। मीरा के भजन के स्वर में बुद्धि और स्थिति का भेद सर्वदा लुप्त-सा हो गया है और बुद्धिमान या मूर्ख, गरीब या अमीर सब उसके भजन गाते हुए रस-निमग्न हो जाते हैं।

मुक्ति के सभी मार्गों में, वैष्णव-धर्म में भक्ति-मार्ग की महिमा अधिक गायी गई है और उसके परिणामस्वरूप साहित्य में और उसके द्वारा लोक-हृदयों में भक्तों का साम्राज्य अधिक अंशों में प्रवर्तित है। हमारे यहाँ ज्ञानी चाहे कितने ही परिपक्व क्यों न हों उनमें से अधिकांश वितंडावाद या दिग्विजय के मोह में शुद्ध ज्ञान के अखंड आनन्द को भूल जाते हैं। लोगों को इनकी विद्वत्ता के आडंबर में कुछ समझ में नहीं आता और इनके वाद-विवाद हस्ती-युद्ध जैसा आनन्द-स्थल हो जाता है।

कवि और भक्त बहुधा समान अर्थी हैं अथवा भक्त वास्तव में कवि होता है। वैष्णव कवियों ने कृष्ण या राम को पूर्णतया न गाया हो ऐसा कवि कदाचित् ही कोई मिल सकेगा। भक्ति ही आदर्श माना जाता था और उसके द्वारा श्रीकृष्ण-स्वरूप में लय होने की भक्तों की तीव्र इच्छा थी। इस विग्रहपूर्ण युग में ज्ञान द्वारा चली आती हुई तर्क-परम्परा में उलझने की किसी को फ़ुरसत या इच्छा न थी। ज्ञान प्राप्त करने के साधन भी बहुत कम थे, इसीलिए श्रद्धा से प्राप्त हो सके, ऐसी सहज मुक्ति का आकर्षण सबको बहुत अधिक था।

मीरा का आदर्श भी ऐसी प्रेम-लक्षणा भक्ति का ही है। अन्तःपुर के अन्धकार में और ऐसे अशांति तथा विग्रह के युग में ज्ञानमार्ग उसके

लिए शक्य न था। नैसर्गिक बुद्धि का चमत्कार तो उसके पदों में जगह-जगह दिखाई देता है और वही उसकी सरल कविता का शृंगार है।

आदर्श भक्ति द्वारा मानव आत्मा का साक्षात्कार करता है और उतने ही अंशों में वह महत्ता प्राप्त कर लेता है। ऐसी महत्ता का मूल्यांकन भी आदर्श के प्रमाण से होता है। गिरधरलाल की पाषाणमूर्ति से आदर्शप्रेमिनी मीरा प्रभुत्व प्राप्त कर अमर हो गई। उसकी कविता का बल भी उसमें निहित शब्दों में नहीं, वरन् इन शब्दों के पीछे दीप्त उसकी भक्ति-ज्योति में है।

मीरा की कविता में और भी बहुत सी बातें हैं। उसमें प्रणय-दीवानी स्त्री की धृष्टता है और नवोढ़ा की-सी आतुरता। मोहन-वर का गान करती हुई वह आत्ममुग्ध हो जाती है। गिरधरलाल का वह गोपी-भाव से गान करती है। विरह की वेदना का तीव्र भान होने पर भी मिलने की आशा वह कभी नहीं खोती। परन्तु उसकी आशा तो नित्य परिचित भावों से भरी हो, ऐसा लगता है। मीरा के कृष्ण गोपियों के साथ रास करने वाले हैं; वृंदावन की गायों को चराने वाले हैं; मोर-मुकुट धारण करने वाले हैं; दही-माखन के चोर हैं; गोवर्धन भी उन्होंने धारण किया और पनिहारियों को तंग करनेवाले भी वही हैं; वेणु बजानेवाले और मुग्धा व्रजनारियों की आशा पूर्ण करने वाले हैं। वैभव ने उसे बहुत कष्ट दिया है, इसीलिए वह वैभवसम्पन्न श्रीकृष्ण को याद नहीं करती; विग्रहों के प्रति उसकी अरुचि है इसलिए महाभारत के महाबाहु श्रीकृष्ण रूप में उन्हें अपनाने का आकर्षण उसे नहीं होता। मीरा का मन कृष्ण के वेणुनाद ने मोह लिया है। श्रीकृष्ण के शास्त्र रूपी हास्य को वह उनमें स्वामीभाव होने के कारण ही सह लेती है।

स्त्री कवियों में प्रथम और अजोड़, इस भक्त-कवियित्री के गीतों की ध्वनि, शताब्दियाँ बीत गईं पर अब भी सुनाई देती है—अब भी वह विस्मृति के गर्भ में विलीन नहीं हुई और कौन कह सकता है कि वह कभी विलीन होगी भी ?

मीराबाई

भक्त-कवि मीराबाई का जन्म मेड़ता के राव दूदाजी के छोटे पुत्र रत्नसिंह के यहाँ फुड़की गाँव में हुआ था। इनके जन्म-काल के संबंध में विविध मत प्रचलित हैं। मीरा सं० १६०० में विद्यमान थीं और भोज-राज की पत्नी थीं, इस पर से कितने ही इनका जन्म सं० १५७३ बताते हैं। कितने ही १५५५ और १५६० के बीच मानते हैं और सं० १५७३ इनके विवाह का वर्ष बताते हैं। यह मत अधिक प्रचलित और मानने योग्य लगता है।

मीराबाई की माता इनके बाल्यकाल में ही परलोकवासी हो गई थीं। इसलिए अपने दादा राव दूदाजी के पास ही इनका पालन-पोषण हुआ और बड़ी हुई। इतिहास-प्रसिद्ध भक्तवीर राव जयमल्ल मीराबाई के काका का पुत्र था और उसका बाल्यकाल भी राव दूदाजी के पास ही व्यतीत हुआ था। राव दूदाजी वैष्णव और परम भक्त थे। उनके संस्कारों का प्रभाव बालकों पर भी पड़ा।

मीराबाई का विवाह चित्तौड़ के सुप्रसिद्ध राणा साँगा के बड़े पुत्र भोज-राज के साथ हुआ था। ससुराल आ जाने के बाद कुलदेवी की पूजा न करने के विषय में उनके सुसरालवालों में धर्म-भेद पैदा हो गया, यह दंतकथा है किन्तु इस बात में सत्यांश कितना है यह बताना कठिन है। इतना तो सत्य है कि मीराबाई का वैवाहिक जीवन अधिक समय तक निभ सका हो, ऐसा नहीं लगता। मीराबाई के पति भोजराज युवराज अवस्था में ही परलोकवासी हो गये थे। ऐतिहासिकों के अनुमान से यह समय सं० १५७३ से १५८३ के बीच होना चाहिए।

मीराबाई का झुकाव बचपन से ही कृष्ण-भक्ति की ओर विशेष था और अकाल वैधव्य ने इस वृत्ति को और भी उत्तेजना दी—इन परिस्थितियों में इस भावना का और भी पोषण हुआ जान पड़ता है। चित्तौड़ में भी इसी समय भयंकर विप्लव मचा हुआ था। सं० १५८३ में राणा साँगा बाबर से युद्ध में पराजित हुए। मीराबाई के पिता रत्नसिंह और काका रायमल्ल भी इसी युद्ध में मारे गये। राणा साँगा की मृत्यु भी इसी बीच हुई और संवत् १८५४ में राणा रत्नसिंह चित्तौड़ की गद्दी पर बैठे परन्तु इनका देहांत संवत् १५८८ में हो गया और उसके बाद राणा विक्रमादित्य गद्दी पर बैठे। मीराबाई को जो उपद्रव सहने पड़े, वे राणा विक्रमादित्य की ओर से ही हुए होंगे, यह सम्भव है।

मीराबाई की भक्ति की धुन इसी समय अधिक बलवती हो गई होगी। बाह्य-विग्रहों में उलझे हुए परिवार के मुख्य सदस्यों का घर की छोटी-मोटी बातों पर ध्यान न देना स्वाभाविक ही है, परन्तु मीरा का भक्ति-प्रवाह इस बीच बहुत अधिक बढ़ने लगा था। अनेक साधु-संतों का उनके यहाँ जमाव जमता। राणा विक्रमादित्य का ध्यान गद्दी पर बैठते ही तुरन्त इस ओर गया। सूर्य-चंद्र भी जिसके दर्शन न कर सकें ऐसी चित्तौड़ के महाराजा की कुलवधू साधु-संतों के बीच बैठकर गाये और नाचे-कूदे इसमें उनको कुल-मर्यादा का लोप होता हुआ लगा और तभी से मीराबाई को इस मार्ग से लौटाने के उपाय उन्होंने आरंभ कर दिये।

राणा ने पहले तो चंपा और चमेली नाम की दो दासियाँ—साम द्वारा मीराबाई का मन बदलने के लिए नियुक्त की गईं। मीरा के भक्ति रस के प्रभाव-बल के आगे दासियों का प्रभाव नहीं टिक सका और वे उस प्रवाह में बह गईं और उनकी शिष्या बनीं। मीराबाई की ननद ने भी मीरा को समझाने का बीड़ा उठाया, पर उसकी भी ऐसी ही दशा हुई, ऐसी कथा है। मीराबाई को समझाने के सभी प्रयत्न व्यर्थ होते हुए देखकर राणा के क्रोध का पार न रहा और वह किसी भी

तरह मीरा को नष्ट करने के उपाय सोचने लगा। उसने पुष्पहारों में बिच्छु, साँप इत्यादि विषैले जन्तु भेजे। कृष्णचरणामृत के नाम से हलाहल का पात्र भरकर भेजा। मीरा ने वह विष पी लिया। पर उसका कोई असर उन पर नहीं हुआ। ऐसे अनेक उपद्रवों से मीराबाई की श्रद्धा और भी बलवती हो गई।

मीराबाई का इस विषपान से देहांत हो गया ऐसा कइयों का मत है, और मरते-मरते उस विष के लानेवाले वणिक को मीराबाई ने शाप दिया कि तेरे कुल में संपत्ति और संतति साथ-साथ नहीं रहेगी। ऐसा कहा जाता है कि आज भी बीजवर्गी वैश्यों में इस शाप के कारण संपत्ति और संतति साथ-साथ नहीं होती। किन्तु मीराबाई का देहांत विषपान से हुआ, इस बात का कुछ आधार नहीं मिलता।

राणाजी के ये प्रयत्न अधिक समय तक गुप्त नहीं रह सके और उनके प्रत्यक्ष होते ही मीराबाई को चित्तौड़ में और अधिक दिनों तक रहना ठीक नहीं लगा इसलिए तीर्थयात्रा के बहाने उन्होंने चित्तौड़ त्याग दिया। पहले अपने पीहर मेड़ता में राव वीरमजी के यहाँ जाकर रहीं। राव वीरमजी और उनके पुत्र जयमल्ल ने मीराबाई का सत्कार किया और आदरपूर्वक रक्खा। यहाँ भी मीराबाई के पास साधु-संत और भक्त आते थे। सम्भव है, यह ढंग राव वीरम जी को भी अच्छा न लगा हो, और इसी कारण ऐसा लगता है कि मीराबाई मेड़ता में भी बहुत समय तक नहीं रही हों। वहाँ से वह मथुरा, वृन्दावन इत्यादि स्थानों का पर्यटन कर द्वारका जाकर रहने लगीं।

मीराबाई का इतिहास संवत् १६०० तक का मिलता है। संवत् १५६५ से १६१८ तक जब मेड़ता युद्ध में फँसा हुआ था, तब मीरा कहाँ थीं इसका ठीक-ठीक पता कहीं भी नहीं मिलता। पर इस समय ये संभवतः द्वारका में ही होंगी, ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है। भुरीदान नामक एक भाट से, कथन से उनका देहांत १६०३ में हुआ।

तानसेन और तुलसीदास के प्रसंग को यदि ठीक मानें तो मीराबाई का देहावसान संवत् १६२० से १६३६ के पहले नहीं हुआ यह मानने का कारण भी मिलता है।

मीराबाई के चित्तौड़ त्याग के बाद चित्तौड़ में आंतरिक और बाह्य विग्रह बहुत बढ़ गये थे। मीराबाई जैसी भक्त को कष्ट देने का तथा चित्तौड़-त्याग का यह फल है, यह धारणा चित्तौड़ में अधिक और अधिक फैलती गई। संवत् १५९२ में राणा विक्रमादित्य को मारकर बनवीर नाम के एक दास ने गद्दी पर अधिकार कर लिया था। कुमार उदयसिंह उस समय बालक होने के कारण पन्ना नाम की एक धायमाँ के पास था—उसने उसे छिपा रखा था। उसने वयस्क होने पर बनवीर को मार कर राज्य पर अधिकार किया। परन्तु मुसलमानों के आक्रमण एक के बाद एक होते ही गये। मीराबाई जैसी भक्त के पदचिह्न चित्तौड़ की भूमि पर पड़े तो ये सब उपद्रव शांत हो जायँ यह सब को लगने लगा और इसीलिए मीराबाई को चित्तौड़ आने का निमंत्रण भेजा गया। मीराबाई के यह निमंत्रण स्वीकार न करने पर राणा ने फिर ब्राह्मणों को बुलाने भेजा। मीराबाई ने अंत में बिलकुल अस्वीकार कर दिया। तब ब्राह्मणों ने उपवास करने आरम्भ किये। मीराबाई खिन्न हृदय से द्वारकानाथ की आज्ञा लेने मंदिर में गई और—

"साजन सुध जौं जाने त्योंऊ लीजै हो—" यह पद गाते-गाते अपने प्रियतम गिरधरलाल की मूर्ति में मीराबाई की मूर्ति समा गई।

मीराबाई की इस प्रकार की मृत्यु की बात सत्य है या रूपक यह चर्चास्पद विषय किसी भावी लेखक के लिए छोड़े देती हूँ।

मीराबाई के नाम से बहुत-सी दंत-कथाएँ प्रचलित हैं। उन्हें संक्षेप में नीचे देने का प्रयत्न किया है। वृन्दावन में जीवगोस्वामी अथवा रूपगोस्वामी नाम के कोई चैतन्य संप्रदाय के बालब्रह्मचारी रहते थे। यात्रार्थ गई हुई मीराबाई को इनके दर्शन करने की इच्छा हुई और

उन्हें कहला भेजा। उत्तर में उन्होंने कहा कि वे बालब्रह्मचारी हैं इसलिए स्त्री-मुख-दर्शन उनके लिए त्याज्य है। यह उत्तर सुनकर मीरा ने कहलवाया कि मैं तो आज तक यही जानती थी कि व्रज में केवल श्रीकृष्ण ही पुरुष हैं, आप एक दूसरे भी हैं यह मुझे आज ही मालूम हुआ। स्वामी ने लज्जित होकर अपने प्रण का त्याग किया और मीराबाई के साथ वार्तालाप का आनंद लिया। यह भी कहा जाता है कि मीरा आज्ञा माँग कर उन्हींके आश्रम में रहने लगीं। गोस्वामी मीरा के शिष्य हो गये यह भी लोग मानने लगे; पर मीरा तो उनको अपने गुरु ही कहा करती थीं।

एक दूसरी कथा इस प्रकार है—तानसेन और सम्राट् अकबर मीरा के यश से आकर्षित हुए—वेष बदल कर उनसे मिलने गये और मीरा के साथ संगीत और ज्ञान की चर्चा कर बहुत प्रसन्न हुए थे। सम्राट् अकबर का जन्म सं० १५९९ और राज्याभिषेक सं० १६१२ में हुआ था। यदि यह कथा सत्य है तो मीरा इस समय के बाद भी विद्यमान थीं यह मानने का कारण मिलता है।

यही बात दूसरी तरह से भी कही जाती है कि संन्यासी वेष में आये हुए अकबर बादशाह ने प्रसन्न होकर मीरा को एक मूल्यवान हार दिया। भक्तों के लिए ऐसे मूल्यवान पदार्थ निरर्थक हैं, यह कह कर मीरा ने प्रश्न किया कि संन्यासी के पास रत्नहार कहाँ से आया? उत्तर मिला कि यमुना में स्नान करते हुए वह मिला है और भक्त के योग्य वह है भी, यह कह कर हार छोड़ कर चले आये। पर मीरा की इस विषय में बहुत निंदा हुई और मूल्य जँचवाने पर वह बहुत मूल्यवान—दस लाख का—ठहरा और बादशाह के यहाँ वेचा गया। इससे यही निश्चित किया गया कि स्वयं बादशाह ही वेष बदलकर आया था।

चित्तौड़ में राणा ने मीरा को बहुत दुःख दिया तब मीराबाई ने तुलसीदास की सलाह लेने के लिए पत्र लिखा और उनके प्रत्युत्तर में

दृढ़ता प्राप्त कर चित्तौड़ छोड़ दिया था। परन्तु यह बात ठीक नहीं लगती। तुलसीदास ने रामायण का आरम्भ सं० १६३१ में किया और उनकी मृत्यु सं० १६८० में हुई यह देखते हुए मीराबाई का और उनका समय एक नहीं था, ऐसा लगता है।

विवाह के बाद ससुरालवालों की ओर से कुलदेवी का पूजन करने के लिए मीरा से कहा गया; पर मीराबाई ने गिरिधरलाल के अतिरिक्त किसी दूसरे की पूजा न करने की प्रतिज्ञा प्रकट की। मीराबाई का ससुराल-वालों के साथ मतभेद तो उसी समय से प्रारंभ हो गया और राणा ने क्रोधित होकर उन्हें 'भूतिया' महल में सबसे अलग स्थान दिया। यह बात सत्य हो ऐसा नहीं लगता क्योंकि एक दूसरी कथा भी प्रचलित है। इस कथा के अनुसार मीरा राणा को इतनी अधिक अप्रिय हो गई हो ऐसा नहीं जान पड़ता। किसी पंडित ने राणा को पत्र लिखा था, उसमें "सा" अक्षर सिमरख से लिखा था। इसका क्या तात्पर्य है, यह राणा को कोई भी न बता सका। अंत में राणा ने यह पत्र मीराबाई को दिखाने के लिए भेजा। मीराबाई ने तुरन्त ही उसका अर्थ बताया कि लाल के साथ 'सा' मिलाकर 'लालसा' पढ़ो। लिखनेवाले ने इस प्रकार अपनी इच्छा व्यक्त की थी। राणाजी मीरा की यह चतुराई देखकर अत्यन्त आनंदित हुए।

मीराबाई की ननद भी मीराबाई की निंदा सुनकर उसे मनाने गयीं; पर वहाँ जाते ही वह स्वयं ही भक्ति-प्रवाह में बह गई, ऐसी भी एक कथा है।

मीराबाई के चमत्कार की भी बहुत सी कथाएँ लोगों में प्रचलित हैं। मीराबाई के भक्त मीराबाई को गिरिधरलाल साक्षात् मिलते हैं ऐसा मानते थे। मीरा बात करती हो इस प्रकार अपने मन के सभी भाव मंदिर में गिरिधरलाल के पास व्यक्त करती थीं इससे अथवा किसी दूसरे कारण से, ऐसी कथा प्रचलित हो गई होगी। एक बार राणा को भी ऐसी

शंका हुई कि मीरा अपने आवास में किसी पुरुष के साथ बात करती है। राणा क्रोधित हो तुरन्त ही तलवार लेकर मीरा के महल की ओर दौड़े और मीरा का अंतःपुर खोजने लगे पर उन्हें कोई भी दिखाई न दिया। राणा ने मीरा से पूछा—"अभी-अभी जिस पुरुष के साथ बातें कर रही थी वह कहाँ है ?" मीरा ने कहा, "मेरे प्रभु गिरिधरलाल तो सर्वत्र ही हैं। तुम्हारी दृष्टि के सामने भी हैं।" राणा ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई पर कोई भी दिखाई न दिया अतः तलवार लेकर मीरा को मारने दौड़े। उन्हें एक मीरा की जगह दो-चार मीरा दिखाई दीं, दूसरी तरफ पलंग पर नृसिंह रूप भगवान दिखाई दिये। राणा भयभीत होकर वहाँ से भागे। जाते-जाते कहते गये कि तेरे इष्टदेव तो बहुत भयानक हैं, हमारे कुलदेवता को तू क्यों नहीं पूजती ?

राणा ने डिबिया में शालिग्राम के बदले सर्प भेजा, पर वह मीरा के भक्ति-प्रभाव से शालिग्राम ही हो गया। चरणामृत के बदले विष भेजा, पर वह भी अमृत रूप हो मीरा को पच गया।

एक बार एक साधु ने मीराबाई के पास आकर कहा कि मुझे गिरधरलाल ने स्वप्न में तुम्हारे दुःख दूर करने की आज्ञा दी है। तुम उनकी दासी हो और मैं उनका दास हूँ, इसलिए मुझे स्वीकार करो। मीरा ने कहा कि प्रभु की आज्ञा मुझसे छिपी नहीं है, किन्तु तुम पहले भोजनादि से निवृत हो लो। मीरा ने उसे आहारादि से तृप्त किया, फिर साधु-मंडली के बीच सब बैठे और उस साधु से मीरा ने कहा कि निःशंक होकर मेरे लिए आपकी जो आज्ञा हो कहो, तो साधु ने उन्हें एकांत में चलने के लिए कहा। मीरा ने कहा कि जहाँ मेरे गिरधरलाल न हों ऐसा एकांत स्थल मेरे लिए समस्त विश्व में भी नहीं, तो फिर ऐसा एकांत मैं कहाँ से लाऊँ ? साधु की विषयेच्छा ऐसे गर्भित उपदेश से नष्ट हो गई और माता कहकर मीरा के चरणों में गिर पड़ा। भक्त-मंडली में आनंद छा गया और मीरा नें प्रेम-भक्ति की धुन में गाया, 'दरद न जाने कोय।'

मीरा के ऐसे आचरणों से दुखी होकर राणा ने उनसे देह त्याग करने के लिए कहलवाया। इस अपमान से दुखी होकर मीरा गाँव के बाहर एक नदी में मृत्यु की इच्छा से कूद पड़ीं, पर किसी देवदूत ने उन्हें निकाल लिया और कहा कि अभी तुम्हें संसार में बहुत से काम करने शेष हैं और भक्ति-महिमा का प्रसार करना है। चेतना लौटते ही मीरा ने अपने को यमुना-तट पर पाया। मीरा वहाँ से रास्ता पूछती-पूछती वृन्दावन पहुँची।

मीराबाई के नाम पर ऐसी अनेकों कथाएँ प्रचलित हैं, परन्तु अपने देश में भाग्य से ही कोई ऐसा संतजन या महापुरुष हो, जिसके कि आस-पास ऐसी कथाओं के तार न लिपटे हों। हमारा अधिकांश इतिहास ऐसी ही लोक-कथाओं के रूप में मिलता है और ऐसी कथाओं में प्रत्येक मनुष्य को मूल बात में कुछ जोड़ देने अथवा उसमें से कुछ निकाल देने का लोभ हुए बिना नहीं रहता। परिणामस्वरूप इतिहास में इतिहास की अपेक्षा दंत-कथाएँ अधिक हैं।

राणा कुंभा की सुन्दर महारानी की प्रेम-भक्ति और संसार-त्याग में जितना अद्भुत रस है, उतना भोजराज की विधवा रानी के आत्म-समर्पण में बहुतों को न मिलेगा। विधवा के भाग्य में तो तप, व्रत और भक्ति लिखी हुई ही है, ऐसी कई मान्यताएँ हमारे समाज में प्रचलित हैं परन्तु सारे भारतवर्ष में अपने नाम का प्रसार करनेवाली इस स्त्री के जीवन में तथा व्यक्तित्व से अपूर्वता भिन्न-भिन्न कथाओं की छलनी में से टपके बिना नहीं रहती। और इसकी कविता का रस तो थोड़े या बहुत अंशों लोक-हृदय के लिए एक संस्कार जितना ही महत्वपूर्ण हो गया है। कविता क्या है, यह समझ में आने लगता है, तभी से मीरा के नाम और पद का परिचय प्रारंभ हो जाता है और जीवन में अनेक बार उसके पद-रस के लालित्य में डूबकर मनुष्य आश्वासन और शांति की खोज करता है। उत्तर, पश्चिम और पूर्व में "मीरा के प्रभु गिरधर

नागर" इस कड़ी की धुन जिसके कान में एक बार भी न पड़ी हो, क्या ऐसी स्त्री या पुरुष होगा ?

मीराबाई-रचित ग्रंथों तथा पदों की सूची :—

१—नरसिंह का मायरा : नरसिंह महेता का मायरा विभिन्न राग-पदों में है। उसकी प्रथम पद की दूसरी पंक्ति में है कि "नरसिंह को मायरो मंगल गावे मीरा दासी" और उसकी पाँचवीं कड़ी से पता लगता है कि वह भक्ति-कथा उसकी मिथुला नाम की सखी ने भक्तों को सुनाई थी।

२—जयदेव कृत गीतगोविंद की टीका : यह टीका राणा कुंभा ने की है, यह भी कहा जाता है। उसके साथ मीराबाई का नाम भी जोड़ते हैं। इससे लगता है कि मीरा तथा राणा कुंभा का संबंध लोगों ने माना होगा इसीसे यह भी प्रचलित हो गया होगा।

३—राम गोविंद : पंडित गौरीशंकर मानते हैं कि यह काव्य-ग्रन्थ था। यह अब प्राप्य नहीं है।

४—फुटकर पद तथा भजन : कहा जाता है कि जोधपुर के दरबार में मीरा के पद तथा भजनों का संग्रह है। वही पद और भजन जो हमारे पढ़ने तथा सुनने में आते हैं, सब मीराकृत हैं; परन्तु उनमें कितने ही क्षेपक भी हैं तथा टुक-पिटकर हिन्दी, मारवाड़ी और गुजराती शब्दों से मिश्रित हो गये हैं।[1]

१—भानुसुखराम निर्गुणराम मेहता के 'मीराबाई' में से यह सूची ली गई है।

एस्पेशिया : स्त्रियों में एक वसंतावतार

जिस नगर में वसंतोत्सव मनाया जाता है वहाँ वसंती रंग से रँगे हुए अंग तथा हृदय के दर्शन हो सकते हैं, जिस जगह का जनसमुदाय जीवन भर वसंत की प्रतीक्षा करता रहा हो वहाँ के लोगों के वसंत के विषय में तथा वसंत की भावना के विषय में क्या कहना ? किसी को वसंत में विलास के दर्शन होते हैं, कोई वसंत-उत्सव मनाता है; कोई स्वयं वसंत पर विजय प्राप्त करता है या अपने पर वसंत को विजित होने देता है; कोई जीवन में वसंत मानता है, तो किसी को सृष्टि पर वसंत ला देने की अभिलाषा होती है; किसी की आयु की वसंत-जयंती होती है तो किसी का हृदय सदा वसंत-रंगी होता है—इस प्रकार सबके जीवन में किसी न किसी रूप में सदा ही वसंत रहता है और जीवन-प्रदेश में वसंत की वायु धीरे-धीरे अपनी सुगंध बिखेरती हुई बहती है।

और यह वसंत प्रत्येक देश का अलग होता है। प्रत्येक मानव समुदाय का अलग-अलग होता है। प्रत्येक जगह वसंत का रंग अनोखा होता है। किसी का वसंत लंबा, किसी का संक्षिप्त, किसी का एक रंग वाला तो किसी का विविध रंगी और किसी का क्षणजीवी होता है।

परन्तु वसंत का अर्थ तो सभी जगह एक-सा है। सभी ने वसंत को यौवन माना है, सभी ने वसंत में नवजीवन की कल्पना की है, वसंत को आशा और उल्लास का अधिकारी माना है। इस प्रकार प्रकृति का और मानव-वर्ग का वसंत आता है तो नवीन पुष्प-पंखुरियों से तथा नवीन आदर्शों से उसका आगमन सूचित होता है और इसीलिए वसंत को ऋतु-राज की उपमा देते हैं।

जीवन और वसंत का बहुत निकट का संबंध है। मानव की या मानव के किसी वर्ग की वसंत-सृष्टि हो, तब सृष्टि वसंत में नवपल्लवित हो जाती है। उसी प्रकार उनके नित्य जीवन-क्रम में भी परिवर्तन हो जाता है और एक बार इस प्रकार प्रत्यक्षीभूत वसंत का पुनरागमन कभी न कभी हुए बिना रहता नहीं। सृष्टि के वसंत की तरह प्रतिवर्ष तो नहीं, पर अनेक बार—बारंबार—जन-वर्ग की एक ऐसी भाग्यशाली आत्मा में नये भाव—नवीन आदर्श—फूलते-फलते हैं। इस फसल में गिरे हुए बीजों में से कोई रह जाता है, कोई नष्ट हो जाता है, किसी पर मिट्टी चढ़ जाती है और कोई पृथ्वी की दरार में घुसकर नष्ट हो जाता है। वसंत की तरह मानव-जीवन की भी ऐसी ही अनंत कहानी है।

परन्तु हम इस सृष्टि की और मानवों के महाकुल की बात छोड़ देते हैं। हमें यहाँ मानवों के एक छोटे समझे जानेवाले; पर फिर भी बड़े वर्ग की—स्त्री वर्ग की—वसंत-वार्ता आरंभ करते हैं। नहीं, उनकी भी पूर्णतया फूली-फली, नवपल्लवित वसंत की नहीं वरन् सुन्दर और कोमल होने पर भी चिरस्मरणीय ऐसी वसंत की प्रथम कोपल की। इस कोपल रूप में—एक वसंतावतार सदृश—आज से चौबीस सौ वर्ष पूर्व ग्रीस के स्वर्ण युग के नाम से परिचित युग के अधिष्ठाता पैरीक्लीस की पत्नी एस्पेशिया से परिचित होंगे।

कोई कहेगा कि भारतवर्ष का जन-वर्ग वसंतोत्सव मनाता है, वहाँ इस दूर देश के स्त्री के परिचय की क्या आवश्यकता है?

उत्तर देना भी कोई कठिन नहीं। वसंत पर जिस प्रकार एक ही देश का अधिकार नहीं उसी प्रकार मानव-कुल के वसंतावतार भी एक ही जगह जन्म नहीं लेते। भारत का स्त्री वर्ग जब जीवन में वसंत ला रहा हो, तब पूर्व में सृष्टि के एक कोने में प्रगटित, इनके जैसी दशा और समय का आभास कराती हुई, प्राचीन वसंत की कथा अनुचित किस लिए कही

जा सकती है ? और किसी देश या जाति की वसंत-कथा के बदले स्त्री वर्ग की वसंत-कथा तो इसलिए कह रही हूँ कि अपने वर्ग के प्रति किसे पक्षपात नहीं होता ?

एस्पेशिया का परिचय देने से पहले उसके स्थान और समय का और समाज में शिशिर की सी शीतलता सदृश स्थिति में रहती हुई उस समय की स्त्रियों की स्थिति का अध्ययन करना आवश्यक है।

एस्पेशिया का समय अर्थात् ग्रीस का विशेषकर एथेन्स की सत्ता का, संस्कृति का और कला का स्वर्ण युग था।

इस स्वर्ण युग में भी स्त्रियों की स्थिति तो पैर की धूल के समान ही थी। जिस प्रकार आज भारत में है उसी प्रकार उन दिनों एथेन्स की स्त्रियाँ बाहर नहीं निकल सकती थीं। वे पर-पुरुष के साथ बात नहीं कर सकती थीं। बात नहीं कर सकती थीं इतना ही नहीं, पर उन्हें मुँह भी नहीं दिखा सकती थीं। उन्हें शिक्षा बिलकुल नहीं दी जाती थी। वे घर-गृहस्थी का काम करने और बच्चों का पालन-पोषण करने के अतिरिक्त बाहर की एक भी वस्तु में भाग नहीं लेती थीं। यह सब तो 'हीटीयरी' नाम से प्रख्यात आज की अशिष्ट समझी जानेवाली स्त्रियों के समान पदवी द्वारा परिचित स्त्री वर्ग ही कर सकता था।

और इस 'हीटीयरी' वर्ग में केवल अशिष्ट वर्ग की ही नहीं, वरन् ऐथेन्स में विवाहित होकर आई हुई विदेशी स्त्रियों का भी समावेश होता था। एथेन्स में उस समय ऐसा नियम था कि एथेन्सवासी का एथेन्स नगर के बाहर के किसी व्यक्ति के साथ, नियम-पूर्वक विवाह-संबंध नहीं हो सकता था। दूसरे किसी नगर या द्वीप की उत्तम वर्ग की

स्त्री भी एथेनियन को पति रूप में स्वीकार करे तो वह 'हीटीयरी' स्त्री में गिनी जाती थी।*

यह नियम एस्पेशिया से पहले, पेरीक्लीस ने प्रचलित किया था। इस नियम के अनुसार एथेन्स में विवाहित होकर आई हुई कितनी स्त्रियाँ "हीटीयरी' वर्ग में गिनी जाने लगीं; कितने ही घर बर्बाद हो गये और इस पाप का प्रायश्चित अपनी प्रियतमा पत्नी को इस अधम स्थिति में देखकर उसे जीवन भर करना पड़ा।‡

---

*गुजरात के कितने ही गाँवों में आज भी रिवाज है कि एक ही जाति के किसी दूसरे गाँव के आदमी से अपनी कन्या का विवाह कर दे तो उसे जाति बाहर कर दिया जाता है। एक ही गाँव में, एक ही धर्म के होने पर भी जाति के किसी दूसरे विभाग के साथ विवाह नहीं हो सकता। उदाहरणतः दसा और वीसा आचार-विचार और धर्म में समान होने पर भी परस्पर विवाह नहीं कर सकते।

‡इस सम्बन्ध में अंतिम खोज के सार रूप में श्री ट्रूड स्थरटन 'The Immortal Marriage' नामक अपनी पुस्तक में ऐतिहासिक टिप्पणी देते हुए लिखते हैं—

'The conclusions of modern scholars, who have made her social status matter of exhaustive research are these: While her irregular marriage with Pericles may have made her a hetoera under the law, she was not one by profession. Her position was much the same as that of the morganatic wife of a prince in subsequent times. Adolf Schmidt seems to have settled the question once for all. The attacks of the comic poets—who were allowed more licence than our yellow press—were directed partly by hatred of Pericles, partly by resentment that a member of a thoroughly despised sex should possess the 'virtues' of a man. In all ancient literature there in no authority for the prevalent belief, so facilely accepted, that she was a professional

इन 'हीटीयरी' स्त्रियों को एक प्रकार का स्वातंत्र्य और भी मिलता था। वे पढ़ती-लिखतीं, नृत्य, गान तथा चित्र इत्यादि कलाओं में पारंगत होतीं। उन्हें लिखना-पढ़ना आता, विना परदे के बाहर जा सकती थीं; पुरुषों के साथ स्वतंत्रतापूर्वक मिल सकती थीं। एथेन्स के संस्कारी पुरुषों के घर का स्त्री-वर्ग अज्ञान से ऊब कर ऐसी स्त्रियों की मित्रता खोजती।

एस्पेशिया भी जन्म से एथेनियन नहीं थी। मीलेटस नाम के टापू में जन्मी और एथेन्स में आकर रहने लगी थी। मीलेटस की स्त्रियाँ भी आज की स्त्रियों की तरह सभी माने में स्वतन्त्र थीं। मीलेटस उस समय एशिया माइनर का सौंदर्य और कला में सर्वप्रथम गिना जानेवाला नगर था। एस्पेशिया वहाँ के प्रतिष्ठित निवासी एक्सीओक्स की पुत्री थी। वहाँ उसे वक्तृत्व, गानकला और दूसरी अनेक प्रकार की कलायें सिखायी गई थीं। स्त्रियों की कलाओं में वह एक ही थी। वाद-विवाद में उसे थोड़े ही व्यक्ति हरा सकते थे। तत्वज्ञान उसका प्रिय विषय था।

---

hetoera except these same comic poets. Plato and Xenophon speak of her with the greatest respect. As the glory and prestige of Athens declined her men of genius were forgotten, to be resurrected later by the Romans. When interest in those great poets, architects, sculptors revived, as well in their patron Pericles, Aspasia too was remembered and libidinous minds accepted without question the savoury libels of the comic poets. Plutarck was the most careless offender. On one page he states that her house was full of young harlots on another that Pericles never left the house nor returned to it without kissing her, which certainly intimates that she lived under his roof, Is it to be imagined that the First Citizen and virtual ruler of democratic Athens kept an assignation house! It is astonishing that for twenty-four centuries scholars seems to have done no thinking for themselves where this remarkable woman was concerned.'

—Historical Notes to the Immortal Marriage.

एस्पेशिया मिलेटस छोड़कर एथेन्स में क्यों रहने आई इसकी ठीक-ठीक जानकारी किसी को नहीं है। कदाचित् कला, संस्कार और शौर्य के शिखर पर पहुँचे हुए नगर में अपनी बुद्धि और ज्ञान की परीक्षा करने के विचार से प्रेरित हुई हो; अथवा एथेन्स के बड़े आदमियों तथा विद्वानों की संगति में अपने विकास की इच्छा से आई हो। युवा तथा आश्चर्यजनक वक्तृत्व कला के शिक्षक के रूप में वहाँ आकर वह अपनी बुद्धि का चमत्कार चारों ओर फैलाने लगी और यथेन्स के विद्वान तथा कलाविद् उसके दरबार को सुशोभित करने लगे।

एथेन्स में उस समय पेरीक्लीस का सूर्य मध्याह्न पर था। ग्रीस में अनेकों सदियों तक सत्ता भोग कर स्पार्टा निस्तेज हो गया था। पेरीक्लीस के मधुर-कंठ की वक्तृत्व छटा, मुरली से प्रेरित सर्प की तरह एथेनियनों को नचा रही थी। अपनी राजनीतिज्ञता तथा भव्य दिखावे से यह देश में तथा दूर-दूर तक विदेशों में भी प्रसिद्ध हो गया था। ऐसा पुरुप जब एस्पेशिया की बुद्धि से आकर्पित हो, तो वह स्त्री असाधारण होनी चाहिए, यह विचार मन में उठे बिना नहीं रहता।

और एस्पेशिया की बुद्धि ने केवल पैरीक्लीस को ही आश्चर्यचकित नहीं किया था; सुकरात जैसा वादविवाद में प्रवीण गंभीर तत्वज्ञानी भी उसका वार्तालाप सुनने के लिए आता था। एनाक्जागोरस सा तत्व-ज्ञानी उससे वादविवाद करता। फीडीआस जैसे अपूर्व कलाकार की वह प्रेरणा-स्थान थी। साफ़ोलीस और युरीपीडिस जैसे नाटककार उसके साथ अभिनय के आदर्श तथा उन नाटकों में आनेवाले स्त्री पात्रों के विषय में चर्चा करते। ब्यूरनडाइडीस और हीरोडोटस् जैसे अपूर्व इतिहासकार सरस वार्तालाप से उसकी गोष्ठी को सुशोभित करते। तत्व-ज्ञानियों को धिक्कारनेवाला एरिस्टोफ़ेनीस तिरस्कार और व्यंग्य से संसार का उपहास करता था फिर भी वह वहाँ आये बिना न रहता और

आल्सीबीआडीस जैसा सुन्दर बालक जिसे पेरीक्लीस ने पाल-पोस कर बड़ा किया था, इधर-उधर की बातें कर इस मंडल की गहन प्रश्नावलियों में मानुषी तत्वों की स्थापना करता था।

जब एस्पेशिया पेरीक्लीस से मिली तो उसकी आयु पूरे पच्चीस वर्ष की भी न थी। पेरीक्लीस की आयु उस समय बहुत अधिक थी उससे लगभग पंद्रह बीस वर्ष अधिक होगी। एथेन्स में उस समय पेरीक्लीस जैसा कोई मनुष्य न था और न एस्पेशिया जैसी कोई स्त्री ही थी। दोनों में लोगों को आकर्षित तथा मुग्ध करने की शक्ति थी। दोनों में महान् आदर्श रखने और उन्हें पूरा करने का बल था। दोनों देश और काल की संकीर्ण सीमाओं के पार देख सकते थे।

फिर भी जो बात एक में थी वह दूसरे में न थी। पेरीक्लीस कठोर और एकांतप्रिय था, एस्पेशिया में कोमलता और आकर्षण था। इस प्रकार दोनों बहुत अंशों में समान और कुछ अंशों में भिन्न थे। पर यह समानता तथा भिन्नता एक दूसरे की पूरक थी। दोनों ने यह कमजोरी देखी और एक दूसरे के समीप आये।

एथेन्स के विवाह के नियमानुसार, एस्पेशिया परदेशी होने के कारण ग्रीक स्त्री की पदवी नहीं ले सकती थी। फिर भी ऐसी दो आत्माओं को दूर रखने में उस नियम या समाज का बंधन समर्थ न हो सका। पेरीक्लीस ने एस्पेशिया से विवाह कर लिया।

कुछ वर्षों तक ये दोनों साथ-साथ रहे। शरीर, भावना और बुद्धि तीनों इस सहचार को समृद्ध करते रहे। पेरीक्लीस मृत्यु को प्राप्त हुआ, तभी यह समृद्धि नष्ट हुई।

एस्पेशिया का प्रभाव पेरीक्लीस के संपूर्ण जीवन में और उसके कार्यों में व्याप्त रहा। उसके कार्यों में वह उत्साह भरती; उसके कठोर जीवन में कोमलता लाती और उसकी एकांतप्रियता के कारण दूर और

दूर रहनेवाले जनवर्ग के साथ संबंध स्थापित कर दोनों के बीच शृङ्खला रूप बनती।

पेरीक्लीस के भाषण तैयार करने में भी वह मदद करती थी। पेरीक्लीस का एक प्रख्यात भाषण उसी का लिखा हुआ कहा जाता है। वह कहीं दूर देश युद्ध करने गया हो तो वह उसके मंत्री का काम करती। वह यदि पास होता तो सूचनाओं तथा सम्मतियों द्वारा उसके कार्यों में पूर्णता लाती थी।

एथेन्स का इस समय का ऐश्वर्य अवर्णनीय था। संसार के इतिहास में दूसरे किसी देश ने कभी प्राप्त न की हो इतनी समृद्धि और संपूर्णता उसने इस समय में प्राप्त कर ली थी और शताब्दियों तक अमर रहे, ऐसी कला और संस्कारों की परिपक्वता का सृजन वहाँ हो चुका था। विख्यात तत्वज्ञानी, अपूर्व नाटककार, अद्वितीय शिल्पी, बेजोड़ वक्ता, अप्रतिम इतिहासकार, अमर कवि, यह सब जैसे किसी दैवी चमत्कार द्वारा हो रहा हो, इस प्रकार पृथ्वी के इस छोटे से कोने में एक साथ उतर पड़े थे। एथेना के--सरस्वती देवी के—इस नगर में उत्पन्न हुए संस्कार तथा साहित्य की अपूर्वता को आज चौबीस सौ वर्ष में भी संसार मलीन नहीं कर सका।

और एथेन्स की सत्ता उस समय के संसार पर कोई ऐसी-वैसी न थी। समस्त सभ्य संसार में उसकी धाक थी। उसका समुद्री बेड़ा ग्रीस की रक्षा में सदैव तत्पर रहता और इस सेवा के बदले में एथेन्स, ग्रीस के दूसरे राज्यों से कर वसूल करता था। सारी दुनिया के व्यापार का वह एक मुख्य केन्द्र था। ईरान के प्रतापी राजाओं के हृदय नींद में भी उसकी ईर्ष्या से अकुला उठते थे। उसकी स्पर्धा में स्पार्टा आदि दूसरे ग्रीक राज्यों के हृदय जलते रहते थे। उसके सौंदर्य, शौर्य तथा समृद्धि की समता कोई भी न कर सकता था। ग्रीस की—एथेन्स की—सत्ता

और संस्कृति का वह वसंत-काल था।

इस समस्त समृद्धि का विधाता पेरीक्लीस था। शत्रुओं के साथ संधि-विग्रह में जितना वह निपुण था, उतना युद्ध के अवसर पर सैन्य-संचालन करनेवाला चतुर सेनापति भी था। एथेन्स की आंतरिक-व्यवस्था में उसका बुद्धि-कौशल भी उतना ही अपूर्व था; उसने उद्योग को बढ़ाया, परदेशों के साथ व्यापार का विस्तार किया। उसने लोक-सत्ता को और भी व्यवस्थित किया। उसने प्रत्येक व्यक्ति को सुलभ हो ऐसा न्याय का नियंत्रण किया। उसके द्वारा कला का संरक्षण हुआ। उसने एथेन्स के आस-पास दीवारें बाँधी और उनको सुदृढ़ बनाया। उसने शिल्प तथा स्थापत्य के उत्तम नमूनों को प्रोत्साहन देकर नगर की भव्यता में वृद्धि की।

एस्पेशिया उसके ऐसे सभी कामों में ओतप्रोत दिखाई देती है।

परन्तु जहाँ सुख होता है वहाँ सुख को देखकर जलनेवाले भी होते हैं। वैसे ही इस सुख की हरी-भरी बाड़ी को देखकर जलनेवाली ज्वालायें भी उस समय उत्पन्न हो चुकी थीं। जिस प्रकार एस्पेशिया के प्रशंसा करनेवाले महापुरुष वहाँ थे उसी प्रकार उसकी निंदा करने, उसे हलके रूप में प्रदर्शित करनेवाले नाटककार—कोमिक पोएट्स—भी थे। एस्पेशिया की स्वतंत्रता उन्हें खलती थी। एथेन्स में कोई स्त्री इतनी स्वतंत्र रह सके, यह तो उनके लिए अशक्य था। स्त्रियाँ पर-पुरुष को मुँह न दिखायें, घर के बाहर पैर न रक्खें, ऐसा उस समय रिवाज था फिर भी एस्पेशिया को देखकर दूसरी बहुत सी स्त्रियाँ भी आगे आने लगी थीं। एस्पेशिया से मिलने और उसकी बातें सुनने के लिए बहुत से पति अपनी पत्नियों को उसके पास ले आते थे। एस्पेशिया का सखीमंडल भी कोई छोटा न था। वह स्त्रियों को शिक्षा देती; उनके मस्तिष्क में

ारोपण करती, उनके मन में नवीन अभिलाषायें उत्पन्न

[illegible]से यह किस प्रकार सहा जा सकता था ? पेरीक्लीस की उत्तरोत्तर होती हुई उन्नति भी उसके दुश्मनों की आँख में चुभी। उन्होंने 'कोमिक पोएट्स' द्वारा उस पर नीच आक्रमण करना आरंभ कर दिया।

उस पर एक आरोप पेरीक्लीस को संतुष्ट करने के लिए दूसरी स्त्रियों को फँसा कर लाने का था।* दूसरा अधिक गंभीर समझा जानेवाला आरोप नास्तिकता का—देव-देवियों में श्रद्धा न रखने का था। इस

---

* And rumours were set aflodt which represented her ministering to the vices of Pericles by the most odious and degrading of officers There was perhaps as little foundation for this report, as for a similar one in which Phidias was implicated, though among all the imputations brought against Pericles this is that which it is the most difficult clearly to refute.

But we are inclined to believe that it may have arisen from the peculiar nature of Aspasia's private circles, which, with a bold neglect of established usage, were composed not only of the most intelligent and accomplished men to be found at Athens, but also of matrons, who it is said were brought by their husbands to listen to her conversation, which must have been highly instructive as well as brilliant, since Plato did not hesitate to describe her as the preceptress of Socrates, and to assert that she both formed the rhetoric of Pericles, and composed one of his most admired harangues. The innovation which drew women of free birth, and good condition into her company for such a purpose, must, even where the truth was liable to the grossest misconstruction. And if her female friends were sometimes seen watching the progress of the works of Phidias, it was easy, through his intimacy with Pericles, to connect this fact with a calumny of the same kind.

—Historians History of the World, Vol. III.

आरोप के मूल कारण एस्पेशिया के दरबार में इकट्ठे होनेवाले एनाक्ज़ागोरस इत्यादि स्वतंत्र विचार के बहुत से तत्त्वज्ञानी थे। सामीयन और पेलोपोनिशीयन विग्रहों में पेरीक्लीस ने एथेन्स को फँसाया यह भी उसी की प्रेरणा से हुआ, यह उस पर तीसरा आरोप था।

पहले-पहल यह आरोप निंदकों की जिह्वाओं ने खोज निकाले और दूसरों पर धूल फेंककर जीनेवाले व्यंग लेखक, कवियों ने चित्रित किये। इनका प्राबल्य इन्होंने इतना बढ़ा दिया कि पेरीक्लीस के शत्रुओं ने एस्पेशिया पर लादे गये आरोपों को प्रत्यक्ष रूप से न्यायासन के समक्ष रक्खे‡।

ऐसे आरोपों को खोज निकालना जितना सहज है, उतना ही उनको निर्मल सिद्ध करना कठिन है। झूठ बोलनेवाले को अपना झूठ सुन्दर ढंग से बनाकर, केवल उसका प्रचार करना होता है और एक झूठ चल जाये तो फिर दूसरे हजारों झूठ केवल मस्तिष्क से ही पैदा करने होते हैं। हानि तो केवल उनके विरुद्ध लड़नेवाले की होती है। यह झूठ का कीचड़ जितना अधिक मथा जाय उतने ही दाग अच्छी या बुरी तरह केवल निर्दोष पर ही पड़ते हैं।

---

‡ The comic poets, as the chief organs of the opposition, engaged in this merciless and unjust tirade against the party of the philosophers. None of their charges, however, can be said to have had any basis in fact, and all may easily be accounted for when the envy and hatred of the ignorant towards the beautiful and accomplished and independent woman is taken into consideration. In the Athens of the fifth century before our era, when people were just beginning to break away from the narrow conservation of centuries, a woman who enjoyed an unheard of degree of liberty, and because of her talents and regarded with admiration by the greatest men of the city, might well be the target for the grossest abuse. A vicious woman would be the last to undertake, as did Aspasia the study of philosophy, which, with Socrates, was the study of virtue.

—Mitchell Carroll's Woman in all Ages in all Countries.

एस्पेशिया के प्रति पेरीक्लीस का प्रेम इस समय खरी कसौटी पर कसा गया। उसे एस्पेशिया अपने जीवन जितनी ही—कदाचित् उससे भी अधिक—प्रिय थी। उसने न्यायासन के आगे एस्पेशिया का पक्ष लेकर वकालत की और उसे छुड़ा लिया।

परन्तु कितना मूल्य चुका कर? जिस महापुरुष की मुख की रेखाएँ शत्रुओं के साथ लड़ते हुए अपने प्रेमियों की मृत्यु के समय जरा भी न बदली थीं, जिसकी स्वस्थता देवाधिदेव जैसी ही अभेद्य समझी जाती थी; जिसकी शांति कटु से कटु प्रसंगों पर भी भंग न होती थी; उसने एस्पेशिया के लिए न्यायासन के आगे वकालत करते हुए आँखों से आँसू बहाये। गौरव और भव्यता की संपूर्णता में विश्वास रखनेवाले इस नगर में इन आँसुओं से एक तो क्या दस एस्पीशियाओं को अपराध से मुक्त कर दिया जाय तो अधिक अच्छा हो, ऐसा पैरीक्लीस के शत्रुओं को भी लगे बिना न रहा होगा। इतिहासकार थ्युसीडाइडीस, एस्पेशिया का प्रशंसक होने में हिचकता है, वह इसीलिए कि एस्पेशिया पेरीक्लीस जैसे अभेद्य वीर की आँखों में आँसू लाने का कारण बनी।

एथेन्स पर इसके बाद युद्ध के बादल घिर आये; बहुत सी कठिन परिस्थितियों से गुजरना पड़ा; पर इस दंपति का आंतरिक जीवन उसके बाद शांति में बीता। पेरीक्लीस की सत्ता अंत तक टिकी रही। मरते समय उसके मुँह पर 'एस्पेशिया' और 'एथेन्स' दो ही शब्द थे।

प्रो० केरोले ने इसी प्रसंग को बहुत सुन्दर शब्दों में नीचे लिखे अनुसार वर्णित किया है:

"इस मरते हुए राजनीतिज्ञ के विचारों में 'एथेन्स' और 'एस्पेशिया' दोनों मिले हुए थे। जिस प्रकार उसने पहले को महान् बनाया उसी प्रकार उसने दूसरे को अमर बना दिया। यदि एस्पेशिया और पेरीक्लीस के जीवन का कल्याणकारी सुयोग न हुआ होता, यदि पेरीक्लीस का स्वभाव

एस्पेशिया की मैत्री से मीठा न बना होता, यदि उसकी राजनीति, एस्पेशिया की कितने ही अंशों में बुद्धि तथा परामर्श से न गढ़ी गई होती; यदि उसकी रुचि एस्पेशिया के कलात्मक स्वभाव के सहवास से सूक्ष्म और संस्कारी न बनी होती, तो जिन कला-कृतियों से यह नगर आज मनुष्यों की भावना पर अपूर्व ढंग से राज्य करता है, उन कृतियों से वह सुशोभित न होता। स्त्री का प्रभाव जहाँ बहुत अधिक होता है वहाँ वास्तव में वह मूक ही होती है और पुरुष द्वारा ही वह प्रभावोत्पादक बनती है। उस 'वायोलेट पुष्प के मुकुट से सुशोभित नगर' में एस्पेशिया के कार्यों का परिणाम देखकर क्या वह फूलमाला का उपहार देने योग्य नहीं?"

एस्पेशिया अर्थात् स्त्रियों के स्वातन्त्र्य तथा बुद्धिबल की प्रथम वसंत। चौबीस सौ वर्ष बाद जिस स्वतंत्रता का उपभोग स्त्रियाँ आज कर सकती हैं उसका प्रथम बीजारोपण करनेवाली एस्पेशिया थी। जिस युग में ग्रीस की संस्कृति का मध्याह्न काल होने पर भी स्त्रियों के जीवन में मध्य रात्रि का ही अंधकार था, उस युग में उसने स्त्रियों के लिए आशा की प्रथम किरण प्रस्फुटित की। स्त्रियों में भी शक्ति है; अवसर मिलने पर पुरुषों जितनी ही विद्या में, कला में, तत्वज्ञान में, वाद-विद्या में वे भी निपुण हो सकती हैं, इसका उदाहरण-रूप बनने के लिए वह नारी थी। पुरुषों के साथ समानता अथवा स्त्री-पुरुष के समान अधिकार इस बात की पहली ध्वनि प्रकट करनेवाली यदि कोई थी तो वह एस्पेशिया।

ग्रीक ने संसार को तीन स्त्रियाँ दी हैं। विनाश का दावानल प्रकट करनेवाली सौंदर्य-मूर्ति हेलन; साहित्य में प्रथम योग देनेवाली, भाव भरे गीत गानेवाली कवियित्री सेफो और स्वातंत्र्य तथा समानता का दावा करनेवाली एस्पेशिया। इन तीनों स्त्रियों की ख्याति एक दूसरे से भिन्न है, फिर भी इन तीनों स्त्रियों के नाम विद्याभ्यासियों की जिह्वा पर रहते हैं।

संसार के इतिहास में सैकड़ों वर्ष तक देश-विदेशों में जिनकी

स्मृतियाँ सजग रहेंगीं ऐसी स्त्रियों के नाम उँगुलियों पर गिने जा सकें इतने ही हैं। इजिप्ट ने क्लिओपेट्रा के रूप में ज्वलंत वासना की चिंगारी संसार को दी। अदम्य अतृति की अवतार सदृश रशिया की महारानी केथेराइन ने अपने संस्मरण संसार भर में भेजे। फ्रान्स ने एक और अद्वितीय, वीरता की साक्षात् मूर्ति जोन आफ आर्क को उत्पन्न किया। भारत ने सतीत्व का आदर्श सीता, प्रेरणा की ज्वलंत मूर्ति द्रौपदी, काल्पनिक होने पर भी सत्य लगनेवाली मृदुल शकुन्तला और प्रणय-मूर्ति राधा—ये चार स्त्रियाँ संसार के कीर्ति-मंदिर में भेजीं। दूसरी छोटी-बड़ी अनेक प्रतापी सुन्दरियों के स्मारकों पर छोटे-मोटे, सोने-चाँदी के अनेक कीर्ति-कलश चढ़े हैं, परन्तु कारण या अकारण से किसी का तेज इनके जितना सारे संसार में नहीं फैला।

एस्पेशिया का स्थान इस प्रकार संसार की प्रख्यात स्त्रियों में है। उसकी यह ख्याति वह सुन्दर और मोहक थी इसलिए नहीं है। संसार में सुन्दर और मोहक स्त्रियों की कमी कभी नहीं थी। वह बुद्धिशाली तथा सरस वार्तालाप करनेवाली थी इसलिए भी नहीं—ऐसी स्त्रियाँ एक या दूसरे रूप में सभी जगह मिलती हैं—पर स्त्री-जाति की महत्ता का भान करानेवाली वह पहली थी इसलिए उसे ख्याति मिली है। आज की 'स्फ्रेजेट—मुवमेंट' का मूल भी इसी में दिखाई देता है। उसके सहे हुए दुःखों और निंदाओं का कारण भी इसमें मिलता है। इन झूठी निंदाओं से प्लुटार्क जैसा लेखक भी उसे न्याय नहीं दे सका। चौबीस सदियों तक उसकी निर्मलता अंधकार में दबी रही। स्त्रियों का व्यक्तित्व पहचाननेवाली इस स्त्री का उस युग में मूल्यांकन हुआ और अंतिम गवेषणात्मक प्रमाणों द्वारा उसे स्वीकार किया गया।

जब से सृष्टि का इतिहास मिलता है, तब से स्त्रियों की दशा पराधीन ही चित्रित की गई है। पुरुष स्त्री के लिए नियम बनाये, उनका

जीवन के दूसरे व्यावहारिक क्षेत्रों में बहिष्कार कराये, उनकी रक्षा का भार अपने सिर पर लेकर उनको निर्बल बनाये रखे और उससे समस्त स्त्री वर्ग का व्यक्तित्व इतना कुम्हला जाय कि वर्षों और सदियों के अंधकार के बाद अकस्मात् ही कोई व्यक्तित्वशाली स्त्री झलक उठे। कितनी कम स्त्रियाँ सतीत्व के एक सर्वमान्य गुण के अतिरिक्त और दूसरे क्षेत्रों में अमर हुई हैं, इसका हिसाब लगायें तब ठीक-ठीक वस्तुस्थिति की तीव्रता का पता लगता है।

और इस प्रकार दबी हुई—मुरझाई हुई—स्त्री जाति का प्रभाव मानव जाति पर कम नहीं है। स्त्रियों ने इतिहास नहीं लिखा होगा, पर बहुत से स्थलों पर इतिहास की घटनाओं का मार्ग निश्चित करनेवाली स्त्रियाँ ही थीं। उन्होंने साहित्य सृजन न किया होगा, पर साहित्य के जन्म और प्रेरणा की कारण हुईं, वे स्वयं कलाकार नहीं थीं, पर बहुत सी कलाओं का उद्देश स्त्री की विविधता और भावों को ग्रहण करना तथा एक संपूर्ण स्त्री के आदर्श को मूर्तिमान करना था! संगीत के स्वर सबसे पहले उनके मस्तिष्क में न आये हों, पर माधुर्य, कोमलता तथा भाव-समृद्धि से उसे स्वर्गीय बनानेवाली तो स्त्रियाँ ही थीं।

और जीवन में भी पालन-पोषण करनेवाली स्त्री ही है, उसको मधुर तथा मानवतामय बनाने वाली भी स्त्री ही है। उसमें विमलता तथा सात्विकता का संचार स्त्री के द्वारा ही हुआ। पुरुष के साहस तथा सौजन्य स्त्री के ही कारण विकास पा सके।

जैसी एकनिष्ठा स्त्री में होती है, जिस मृदुता और नम्रता से वह दुःखों को सह लेती है, जिस धैर्य से वह संसार चलाती है, जिस श्रद्धा और स्नेह से वह अन्याय सहती है, जो आत्मबलिदान वह पग-पग पर करती हुई दिखाई देती है, जिस धैर्य से जरा-जरा सी बातों और घटनाओं में वह अपना पूरा जीवनयापन कर देती है, जिस स्नेह और सहिष्णुता

से संसार के सभी दुःखों को वह सह लेती है, और जीवन-पर्यंत जिस तरह वह एक आदर्श पर दृढ़ रहती है—इतना और इस तरह तो केवल स्त्रियाँ ही कर सकती हैं।

एस्पेशिया की महत्ता का एक दूसरा कारण बताना शेष रह गया। आरंभ काल से स्त्री और पुरुष का संबंध केवल शारीरिक सहानुभूति पर ही रचा गया था। पुरुष आत्मा के विकास के लिए संसार पर्यटन करता, मानसिक समभाव मित्रों में खोजता और शारीरिक प्रवृत्तियों को संतुष्ट करने का विचार जब उसके मस्तिष्क में उठता है तो उसे घर याद आता! प्राचीन काल में स्त्रियों के लिए सौंदर्य के अतिरिक्त—पुरुष की आँख को अच्छा लगने के अतिरिक्त—दूसरी कोई वस्तु विशेष आवश्यक नहीं मानी जाती थी। सुन्दर स्त्री के लिए पुरुष युद्ध करते, सुन्दर स्त्री की खोज में पुरुष विश्व-यात्रा आरंभ करते और अंत में आत्म-तृप्ति की साधन-रूप एक सुन्दर स्त्री को लाकर अपने घर में, जहाँ किसी की दृष्टि न पड़े, वहाँ, छिपा कर रख देते थे।

इस स्थिति से संसार कुछ आगे बढ़ा और स्त्री-पुरुष के संबंध में भावनाओं का समभाव आया। सुख-दुःख की संवेदनाओं का जो साथ-साथ अनुभव कर सके, सृष्टि की छोटी-मोटी सुन्दरताओं में जो साथ-साथ रस ले सके, प्रेम या भक्ति के गान साथ-साथ गा सके; संसार और समाज के व्यवहारों को जो एक दृष्टि से देख सके ऐसी अनेक वस्तुओं पर इस समभाव की सृष्टि हुई। और केवल शारीरिक स्पर्श से भिन्न होने पर भी हृदय को जो अधिक निकटता से जोड़ सके ऐसा संबंध स्त्री-पुरुष के बीच स्थापित हुआ।

तीसरी और अंतिम स्थिति है, बुद्धि के साहचर्य पर निर्मित संबंध। वासनाओं और भावनाओं से परे केवल सत्य और सत्व के वातावरण में दो आत्मायें साथ-साथ विचरण करें—हवा में पक्षियों का जोड़ा साथ साथ

उड़ता है उस प्रकार—और दूर-दूर के प्रदेशों का सूक्ष्म सौंदर्य विशाल दृष्टि-मर्यादा के कारण देख सके ऐसा संबंध पृथ्वी की मलिनताओं से दूर व्योम में विचरण करनेवाली दो आत्माओं के बीच स्थापित होता है।

परन्तु विवाह अर्थात् संसार और संसार अर्थात् व्यवहार। बीमारी और मृत्यु, बाल्यावस्था और जरा, निर्बलता और नियंत्रण, क्षुधा, तृषा, और निद्रा यह सब संसार व्यवहार के साथ विचरण करनेवाले मनुष्य को जन्म से ही मिली हुई संपत्ति है और इस संसार में दूसरी सब बातें भुलाकर केवल, आठों प्रहर बुद्धि के साहचर्य पर जीवन व्यतीत करना कठिन ही नहीं, प्रायः असंभव है। बुद्धि के सहयोग की यह दशा आठों प्रहर की नहीं है, वरन् बीच-बीच में आई हुई संवेदन की एक दशा है। वास्तविक विवाह केवल प्रवृत्ति और भावनाओं का पोषक नहीं, उसी प्रकार केवल बुद्धि पर भी नहीं निभ सकता। परन्तु प्रवृत्ति, भावना और बुद्धि इन तीनों के त्रिगुणात्मक प्रभावों पर ही विवाह का आदर्श माना जाता है।

संस्कारी समझे जानेवाले ग्रीस में आज के भारतवर्ष की तरह शारीरिक विवाह करने की प्रथा उस समय थी। घर अर्थात् शयन तथा भोजन करने का स्थान; पत्नी अर्थात् घर चलानेवाली और संतान के लिए लाई हुई स्त्री। पुरुष को सबसे कम बात करने का प्रसंग अपनी पत्नी से पड़ता। भावनाओं और बुद्धि का सहयोग केवल पुरुष मित्रों के साथ ही संभव समझा जाता था। उस समय के पुरुष अपने से छोटी आयु के एक पुरुष मित्र की खोज कर उस पर अपनी भावना और बुद्धि का जल उँड़ेल देते। विवाह की अपेक्षा मैत्री उस समय प्रथम वस्तु समझी जाती थी। शरीर, भावना और बुद्धि इन तीनों की सहानुभूति पर आधारित विवाह, सर्वप्रथम संसार के इतिहास में एस्पेशिया और पेरीक्लीज का ही है।

इस प्रकार एस्पेशिया से पुरुष की इच्छा को पोषित करनेवाली दासी भावना नष्ट होकर उसकी मित्र और सहायक होने की भावना स्त्री वर्ग में

सर्वप्रथम जगी। और स्त्री-पुरुषों की विवाह-संबंधी भावना-परिवर्तन के बीज उसी के द्वारा रखे गये। तब से स्त्री दासी न रहकर, सुहृद बनी और सुहृद से इस समय साथी रूप में परिवर्तित हो गई है।

और एथेन्स की उस समय की संस्कृति की घटना में एस्पेशिया की देन कुछ कम न थी। वास्तव में स्त्री अपने कार्य-प्रदेशों की संकीर्ण सीमाओं के कारण, पुरुष द्वारा ही अपने आदर्शों को प्राप्त कर सकती है और उनकी रक्षा कर सकती है। एस्पेशिया ने भी ऐसा ही किया। परन्तु जो स्त्री पेरीक्लीस जैसे पुरुष—*उत्तम मनुष्य*—की *प्रिय पत्नी* तथा सहायक हो; जिसे संसार आश्चर्य से देख रहा हो ऐसे पार्थिनोन के मंदिर के निर्माता फीडीयास जैसे अद्वितीय कलाकार की प्रेरक हो; जो एनाक्जोगोरस की प्रिय शिष्या तथा सुकरात की गुरु हो; अनेक कवि और नाटककार जिसके अभिप्राय को अमूल्य बताते हों और दूसरे समकालीन महापुरुष उसके परामर्श का ऋण सहर्ष स्वीकार करते हों और इतिहास में जो अमर हो गई हो—उस स्त्री का प्रभाव एथेन्स के उस स्वर्णयुग की संस्थापना में बहुत अधिक होना चाहिए, यह निस्संदेह है।

स्त्रियों में प्रथम वसंत के समान एस्पेशिया के जीवन का यह आदर्श, आज के नारी वर्ग में ऐसे कितने वसंतों का आदर्श उत्पन्न करेगा ?

कविवर शेली

पाठको ! कविवर शेली के विषय में लिखने का साहस करूँ तो क्षमा करेंगे न ? सूर्य का परिचय देने के लिए दर्पण रखने जैसा ही प्रयत्न तो यह न होगा ? जिसने शेली के सब काव्य पूरी तरह नहीं पढ़े, केवल उसमें चंचुपात कर उसका परिचय देने की धृष्टता कर रही है उसका अनधिकार सिद्ध करने के लिए तैयार तो न होंगे ? उत्तर देने का साहस कर यह पूछती हूँ कि सरिता के जल की मधुरता परखने के लिए क्या केवल पात्रभर पानी ही पर्याप्त नहीं होता ? अतृप्ति बनी रहे, पर स्वाद तो परखा ही जा सकता है।

उसकी जीवन-कथा को करुणा-कथा कहूँ, तो अनुचित न होगा। आपके सम्मानित और दिव्य भौम में आपको ले जानेवाले कवि की कथा क्या करुण नहीं हो सकती ? उसके अकेले बाल-हृदय का एकान्त चाहे आप को सुन्दर लगे, फिर भी क्या दर्दभरा नहीं लगता ? उसके समस्त जीवन में ही हम क्या देखते हैं ? उसके छोटे से जीवन की समानता शचि के सुन्दर पति के साथ भी नहीं हो सकती। पर वह तो हमारे लिए और हमारे स्वार्थ के लिए है, उससे क्या उसकी वेदना कुछ कम हो गई ?

संसार ने उसके साथ अन्याय किया। ज्ञानधात्री महापाठशाला को भी उसका विचार स्वातंत्र्य हानिकारक और भयंकर लगा। अपनी पूर्व परंपरा का जिसने अनुकरण नहीं किया ऐसी उदीयमान बुद्धि को आज तक किस संस्था अथवा समाज ने सभय नहीं देखा ? पर प्राचीन संस्कृति के नाम पर परंपरा की रक्षा करनेवालों का भी क्या कुछ दोष निकाला जा सकता है ? यह तो परंपरा से चला आनेवाला शाश्वत नियम है।

इस नियम का आक्रमण जिस पर हो उसकी बुद्धि की प्रतिभा के विषय में विचार करना आवश्यक हो जाता है। संस्था या समाज जिस विचार या व्यक्ति का बलपूर्वक प्रतिकार करे उसी में उसके विजय के चिह्न छिपे रहते हैं। आक्सफोर्ड ने कहाँ ऐसा नहीं किया? जिस नास्तिकता के निबंध के लिए उसे वहाँ से निकाल बाहर किया था वह आज शेली के स्मरणावशेष रूप में द्विगुणित भक्तिभाव और गर्व से, धर्म-ग्रंथ जैसी सावधानी से—वह वहाँ लिखा गया था—इसको स्मृति में सुरक्षित रखा है। ऐसे अन्याय चिरकाल तक टिकते नहीं। कभी-कभी ऐसे अन्याय और भी बल प्रेरक हो जाते हैं, परन्तु ऐसे अन्याय सुनने में किसी को आनन्द आता है?

अच्छा, तो आपको उसके प्रथम विवाह की बात कहती हूँ। अठारहवें या उन्नीसवें वर्ष में एक होटलवाले की लड़की हेरीएट वेस्टब्रुक उससे स्नेह करने लगी। पिता के विचार से तंग आकर उसने शेली की मदद माँगी। कवि की कोमल आत्मा को उसके दुःख से आघात पहुँचा। उसने उसे वहाँ से मुक्त कराया और संरक्षकवृत्ति या उत्साह के आवेश में उससे विवाह कर लिया। कुछ भी हो, उसने विवाह कर लिया। फिर संरक्षकवृत्ति का नशा उतर जाने पर भावनाओं और हृदय का अंतर दृष्टि में आया—पत्नी और अपने बीच, उसने एक गहरी खाई देखी। यह क्यों ऐसा कल्पनाशील तथा भावनामय हो गया था यह तो आप न पूछेंगे। इसके जैसी आत्मा अर्धांग के बिना कैसे काम चला सकती? अधूरी रहने से तुरन्त सूख जाती, किन्तु ऐसा नहीं हुआ, यह संसार का सद्भाग्य है।

ऐसी बातें करना क्या निंदा कही जायगी? उसने किया और हम कह रहे हैं। हमारे पास नीति का मापदंड है, परन्तु किसी ने हृदय को भी कभी मापदंड बनाया है? और ऐसी सरस चर्चा पर अपना मत प्रकट किये बिना भी कैसे रहा जा सकता है? हम अपने से अधिक महान् लगनेवाले के प्रति कोई बात क्षमाभाव दिखाते हुए और कुछ दबी हुई

आवाज़ में कहा करते हैं; क्या इतनी नम्रता से कहना कुछ कम है ?

परन्तु यहाँ चर्चा करने से पहले शेली की ही बात समाप्त करना चाहते हैं। उसने इस विवाह से छुटकारा पाने के लिए क्या किया ? उसने अपनी आत्मा का अर्धांग खोजा। व्यवहार-निपुण जहाँ सोचता हुआ ही रह जाय वहाँ यह अपनी अंतरात्मा की पुकार को सम्मान देकर अपनी प्रियतमा—मेरी गाडवीन—को ले भागा। अपनी शक्तियों को रोकने-वाली सभी वस्तुओं को पीछे छोड़, वह जीवन-सखी को लेकर जीवन सफल करने के लिए निकल पड़ा। सारी दुनिया के विरुद्ध टक्कर लेकर उसने अपनी प्राणेश्वरी की संस्थापना अपने जादुई-राज्य में की। उसकी प्रेरणा से बल प्राप्त कर उसने ऐसी सृष्टि रची कि जहाँ दृश्य जगत की अपेक्षा, मनुष्य अधिक शांति पाते हैं। उसे कायर कौन कह सकता है ?

दो वर्ष हेरिएट दूसरे के साथ रही—उससे भी अलग हो गई और बहिन के त्रास से तंग आकर आत्महत्या कर ली। प्रभु प्रेममय है, फिर भी उसी की सृष्टि में उसके रथ के चक्र के नीचे कितने ही पिस जाते हैं।

कितने ही परिणाम अनिवार्य होते हैं। ये परिणाम अवश्यम्भावी हैं यह जानते हुए भी आत्मा-संबंधी कितने ही धर्म छोड़े नहीं जाते; छोड़ दें तो अधर्म अधिक असह्य हो जाता है और परिणाम सुधर नहीं पाते।

इसके बाद वह थोड़े वर्ष तक ही जीवित रहा। मेरी के साथ उसका विवाह हुआ वह जीवित रहा तब तक वह उसकी सखी, सहचरी रही। उसकी मृत्यु के बाद वह भक्त की सी एकाग्रता से उसके संस्मरणों की रक्षा करती रही। उसके काव्य-भंडार को वह प्रकाश में लाई—उसका पुनरुद्धार किया। एक बार संसार से तिरस्कृत दोनों अमर प्रेमी आज ब्रिटिश पोरट्रेट गेलरी में विराजमान हैं और संसार भर के यात्री इन्हें अर्घ्य अर्पित कर कृतार्थ होते हैं।

उसके समय में बहुत से लोगों ने उसकी प्रशंसा की तो बहुतों ने अधिक निंदा। आलोचकों की तीखी आलोचनाओं ने उसके अंग-अंग

को जलाने का प्रयत्न किया। जीवन-संग्राम की ऐसी कलहों का किसे सामना नहीं करना पड़ता ?

महापुरुष अपने समय में नहीं पहचाने जाते। समाज इनके गुणों की अपेक्षा इनके दोषों पर अधिक दृष्टि डालता है। इनके कार्यों की विपुलता की अपेक्षा इनके दोषों का परिमाण अधिक बढ़ा हुआ लगने लगता है। किसी भी प्रकार की महत्ता की खोज करते हुए समकालीन टीकाकारों को अपने शस्त्र अधिक धारदार बनाने में आनंद आता है। अपने लिए नवीन मार्ग बनानेवाले को तो इन सबसे बचना असंभव ही हो जाता है।

बहुत से लोग शेली को अस्थिर मनवाला मानते हैं, क्योंकि उसके प्रेम का विपुल प्रवाह किसी एक संकीर्ण नहर में नहीं समा सकता था। इसका परिणाम यह होता था कि वह उमड़ कर दूसरे स्रोतों में से बहने लगता था। यह जहाँ-जहाँ भी बहा वहीं-वहीं रस की सृष्टि करता गया। जहाँ उसे मार्ग नहीं मिला तो उमड़कर अपने प्रवाह में आस-पास की वस्तुओं को भी बहाता ले गया। अधिकांशतः जन-समूह की भावनाओं का प्रवाह बहुत सूक्ष्म होता है—थोड़ी दूर नीचे जाकर पृथ्वी में समा जाता है अथवा सूर्य के ताप में सूख जाता है। अत्यंत वेगवाले महाप्रवाह की शक्ति के सामने यह कैसे टिक सकता है ?

वाचकवृन्द ! शेली के विषय में संसार का अभिप्राय आपने जान लिया। संसार की विराट् समग्रता के साथ न्याय करने की मेरी अशक्ति पर भी आप हँसे होंगे। मेरी अकेली अल्पता में यह कैसा लगा, आशा है, उसे सुनने का धीरज आप रखेंगे ही।

शेली सौंदर्य-द्रष्टा था, कम से कम यह तो उसके विषय में कहा ही जा सकता है। कितनी ही धन्य आत्माओं ने सौंदर्योपासना में अपना समस्त जीवन खपा दिया है, परन्तु शेली का सौन्दर्य—साक्षात्कार का जादू—उनसे कुछ भिन्न ही लगता है। कितने ही कवियों की कविता में केवल वृक्षावलि में से चाँदनी छन-छन कर और चुँदरी जैसे फूल बनाती,

नई-नई लहरदार रेखायें बनाती, नई-नई रम्यताओं के दर्शन कराती है तो उस दृश्य में आकर्षणशक्ति अधिक होती है। कहीं छाया-परिधानों से शरीर ढँकती हुई, कहीं चाँदनी के मद में मस्त होकर सौंदर्य का साक्षात्कार कराती हुई गिरि-वधुओं की क्रीड़ा देखने को मिलती है, तो कहीं प्रकाश की पारदर्शी चादर में सुशोभित या अंधकार का दुपट्टा ओढ़े खिन्न अभिसारिका की तरह खानें छिप-छिप कर आकर्षित करती हैं, सपाट मैदान में निरभ्र आकाश में मुस्कराते हुए चाँद के निरंकुश साम्राज्य के दर्शन से दृष्टि उन्मत्त हो उससे पहले बादलों के बीच से थोड़ी झाँकी दिखला कर ओझल होती हुई चंद्रिका को देखकर आतुरता जग उठती है। ऐसे सौंदर्य की विविधता के दर्शन शेली की काव्य-ज्योत्स्ना के अतिरिक्त और कहाँ हो सकते हैं? सौंदर्य की विविधता का दर्शन शेली के काव्य का विशेष लक्षण है और इसीलिए वह सौंदर्य-द्रष्टा कहा जा सकता है।

विदेशी सुमनों जैसा केवल सौंदर्य ही उसमें नहीं है, वरन् माधुर्य और गान उसके काव्य के प्रत्येक शब्द से प्रस्फुटित होता है। यदि उसके कल्पना विमान में बैठने का अधिकार मिला होता, दृष्टि-मर्यादा की संकुचित सीमाओं के संकीर्ण बंधन टूट जाते और उसकी इन वस्तुओं से दिव्य-चक्षु मिल गये होते, तो सौंदर्य के नवीन तत्वों का दर्शन हो जाता।

शेली की उड़ानों में भाग लेना यह जीवन का एक अद्भुत आनंद है। दृष्टि को अवरुद्ध करनेवाली पार्थिवताओं से मानव ऊपर उठ जाता है और इन्द्र-धनुष के सुन्दर प्रकाशवाले प्रदेश में खड़ा होकर सुन्दर प्रदेशों तक देख सकता है; आकाश की महानदी में तारात्रों के तैरते हुए दीपक देखकर, गंगाद्वार जैसी लोकमान्यताओं की खोज वहाँ संकोच-रहित होकर की जा सकती है; मेघखण्डों के विविध रंगी पर्दों के बीच लुका-छिपी खेली जा सकती है; सूर्य-चन्द्र के दर्पणों में प्रेमियों तथा अपने इच्छित स्वरूपों के दर्शन किये जा सकते हैं; स्वर्गंगा के कमलों

को तोड़ने तथा उन्हें छितरा डालने का निषेध करनेवाले मालियों का वहाँ अभाव होता है; उषादेवी की कुसुमी ओढ़नी का छोर पकड़ कर उसे अपनी ओर लौटा कर उसके मुस्कराते हुए मुख का दृष्टिपात प्राप्त करने जितना भाग्यशाली भी हुआ जा सकता है। ऐसे धन्यभाग्य का सहभागी कविवर का क्या-क्या सम्मान किया जाय ?

चंडूल पक्षी के मधुर दिव्य स्वर की तरह शेली की कविता का सुदूर का स्वर भी हृदय को आह्लाद से भरनेवाला और उन्नत प्रदेश में ले जानेवाला बन जाता है। शोक मिश्रित उल्लास से इस ध्वनि की हृदयहारिता में अपूर्वता आ जाती है। आकाश के गांभीर्य में नादब्रह्म ध्वनित हो उसी प्रकार हृदय के गांभीर्य में शेली रस-ब्रह्म की सृष्टि कर देता है। दूर-दूर उड़ते हुए पक्षी के मधुर कलकल सदृश वातावरण में मधुरता ला देनेवाला उसका स्वर मधुर गुञ्जन की लहरें जगा देता है। वेदोच्चार सदृश उसके रस-मंत्रों से हम समाधिस्थ हो जाते हैं। प्रभात की सुखकर समीरण जैसी शांति तथा नवजीवन उसकी आत्मा में से बहता है और परितृप्त करता है। पर्वत की गोदी में झरते हुए झरने की तरह उसमें से भावनाओं के स्रोत वेगमय गति से बाहर पड़ते हैं और रस-पिपासु पथिक को तृप्ति देते हैं। उसकी काव्यमय आत्मा से अमृत झरता है और उसके पान करनेवाले की आत्मा की जरावस्था क्षण भर में समाप्त हो जाती है।

प्रभात में ध्यान लगानेवाले ऋषियों की भव्य पवित्रता, मध्याह्न के समय कर्मों में प्रवृत्त मुनियों की मानवता और संध्या को समाधि में निरत सच्चिदानंद के दर्शन करते हुए महर्षियों की अलौकिकता इन सबके एकत्र भावों का प्रदर्शन शेली की आत्मा से प्रकट होता है। तीनों काल की मृदुता, शांति, प्रखरता और शक्ति उसमें मूर्तिमान हो जाती है। कहीं कूलों के बंधन में सरल बहती हुई, कहीं इन बंधनों की अवगणना कर वेग से उछलती, कहीं चट्टानों से टकराकर छिन्न-भिन्न होती, कहीं भँवरों के रूप में रासमंडल खेलती, कहीं तीर पर खड़ी हुई

नृत्यवनिताओं को दर्पण दिखाती हुई, कहीं मनस्वी तथा मस्त चाल से चलती हुई, भूमि को रसमय बनाती हुई, आकाश के विविध रंगों से सुशोभित, प्रकृति के सभी भावों में एकता साधती हुई सीता की तरह, उसकी काव्य-सरिता के नये नये रूप हृदय को आच्छादित कर लेते हैं। अप्रत्याशित तथा अचित्य भाव-परिवर्तन से वह विस्मित कर देता है। उसके स्रोत की प्रबलता हृदय को बलपूर्वक बहा ले जाती है।

कवि रस का अधिष्ठाता है। पुष्प से जिस प्रकार पराग का प्रस्रवण होता है उसी प्रकार वह चाहे अथवा न चाहे, उसके अंतर से काव्य की निर्मल धारा निकलती रहती है। स्वभाव से ही कवि हो तभी काव्यों का स्वयंभू और सहज स्फुरण होता है। प्रत्येक पल वह प्रकृति को एक नवीन रूप में देखता है। अपने सब मानसिक दृश्यों को वह व्यक्त न कर सके तो उसमें उसका दोष नहीं, वरन् भाषा और शरीर की मर्यादित स्थिति का है। जिस परिमाण में वह इन मर्यादाओं का उल्लंघन कर जाता है उतने ही परिमाण में उसकी महत्ता बढ़ जाती है। शेली को इस नियम की कसौटी पर चढ़ाने से उसकी महत्ता के विषय में कोई भी संदेह नहीं रह जाता। उसकी कल्पनाओं का बाहुल्य, उसके शब्दों का लालित्य, उसके भावों की विविधता उसके काव्यों की गेयता, और इन सबके सम्मिश्रण से आनेवाली अद्भुतता से वह कविकुल में अद्वितीय स्थान का अधिकारी बन गया है।

प्रकृति की तरह मानव भी यदि अपने स्वभाव में निहित तत्वों का विकास करे या अस्तित्व सिद्ध करे तो स्रष्टा को भी थोड़ी देर के लिए अपनी सृष्टि की ओर आश्चर्य से देखते रह जाना पड़ेगा। सामान्य जन को इसमें निहित किसी विशिष्ट तत्व का ज्ञान ही नहीं होता और इसी कारण ऐसे विरल तत्वों की ओर वह शंका की दृष्टि से देखता है। परन्तु जिनका युग समाप्त हो जाने पर भी उनके स्मरण नष्ट नहीं होते वह तो केवल किसी भी तत्व का प्रतिनिधित्व प्रदर्शित करनेवाले व्यक्तियों का ही होता

है। उनकी शक्ति के प्रमाण में ही उनकी सफलता रची जाती है। शेली ने प्रेमतत्व, सौंदर्यतत्व, काव्यतत्व और स्वातंत्र्य-तत्व अपनाये। यह अमर हो गया, केवल उन्हीं के कारण। अपने संक्षिप्त जीवन के चिरकाल के संस्मरण अपने स्वभावतत्व के साथ सारुप्य देकर संसार में छोड़ गया।

स्वातंत्र्य उसके जीवन का उद्देश्य था। उसके स्वातंत्र्य की व्याख्या शरीर तक ही सीमित न थी। आत्मा को बाँधनेवाले बंधन भी उसे खटकते थे। वह जानता था कि यदि आत्मा स्वतंत्र हो तो देह के बंधन भी नहीं टिकते। 'प्रोमीथीयस अनबाउंड' यह आत्मा के स्वातंत्र्य की कथा है। किसी नियमों का स्वरूप छोड़कर बंधनों का स्वरूप धारण करने लगते हैं तो व्यवस्था पालन का अपना उद्देश्य साधने के बदले वह कुचल डालनेवाले बन जाते हैं। कल्पना के बंधन से रहित प्रदेश में उड़नेवाले को मनुष्यकृत नियमों के जड़-पिंजरों की शलाखें क्यों अच्छी लगने लगीं?

उसमें भी उदासीन वृत्तियाँ थीं—हमारी अपेक्षा अधिक होंगी। हममें हैं, पर उनकी अभिव्यक्ति के लिए हमारे पास वाणी नहीं होती—उसने उन्हें शब्दों की अभिव्यक्ति देकर अमर बना दिया। मानव-हृदय के सनातन भावों का उसने विविध रूपों में गान किया। हमारे हृदय में इनकी प्रतिध्वनि उठती है, यही कारण है कि उसकी महत्ता की माप हम निर्णय कर सकते हैं। कलाकार या कवि की कला की सार्थकता मानव-हृदय के अकथ्य भावों को मूर्त स्वरूप देने में ही है।

मनुष्यों से अपना व्यक्तित्व व्यक्त किये बिना नहीं रहा जाता। जितने अंशों में भावों की सूक्ष्मता अधिक होगी उतने ही अंशों में उसे व्यक्त करने की आवश्यकता भी अधिक होगी, परन्तु उससे भी अधिक कठिनाई तो उसके व्यक्त करने का माध्यम खोजने में पड़ती है। मनुष्य अकेला जीवित नहीं रह सकता। कवि लिखता है तो इसी आशा से कि निरवधि-काल में कोई तो उसका समझनेवाला जन्म लेगा। यथा-

शक्ति सभी ऐसे भाव-प्रदर्शन करते हैं। आत्मा की अभिव्यक्ति की कठोर प्रेरणा के कारण संसार को कितना अधिक मिला है ?

× × ×

मृत्युदेवता यदि इतना कठोर न हुआ होता तो ? समुद्र ने अपने लाड़ले बेटे को घर आने दिया होता तो ? उसकी वसंत ऋतु विकसित होने से पहले ही मुरझा न गई होती तो ? शेली जीवित रहा होता तो ?

इस महाकवि की कब्र के दर्शन करने जाते हुए और उस पर पड़े हुए एक फूल को उसकी विभूति की प्रसादी रूप में उठाते हुए हृदय पर चित्रित भावों को पाठकों ! आपको बताऊँ ?

दिल्लीश्वर ने 'दीवाने खास' में खुदवाया था कि 'पृथ्वी पर यदि स्वर्ग है तो यहीं है, यहीं है।' शेली की कब्र के लिए भी अंतरिक्ष में यही लिखा होगा कि—

'दिव्य गायक, सौंदर्य का द्रष्टा और स्रष्टा, प्रणय का भिखारी, अखंड शांति की गोदी में सोया हुआ यहीं है, यहीं है !'

'सरस्वती का वरद पुत्र, स्वतंत्रता का ध्वजा-वाहक, प्रकृति तत्वों से पोषित और सागर सुन्दरी की गोद के अभिलाषी शेली की देह-भस्म यहीं है, यहीं है !

'सनातन भावों के जगानेवाले, वायु के पंखों पर उड़नेवाले, आकाश सदृश कल्पना की सुनहरी झलक से आश्चर्यान्वित कर देनेवाले कवि के देह की सुवास यहीं है, यहीं है !

शूरवीर और केवल स्वानुभव के उपासक, गान में रस लेनेवाले और रस लेने योग्य बनानेवाले, सहृदय मित्र और प्रेमपथ के पथिक शेली की देह-गंध यहीं है, यहीं है !'

पाठको ! इसके काव्य-शरीर के सहवास में यदि आपने दो पल भी स्वर्ग के दर्शन किये हों, तो इस तर्पण में दो बूँद आप भी अवश्य छोड़ देना !

अनातोल फ्रांस

जिस प्रकार मलय पर्वत की वायु चंदन तरुओं की सुगंध ले आती है; वृक्ष दिखाई नहीं देते पर फिर भी चित्त प्रसन्न होता है तथा गंध परख ली जाती है, उसी प्रकार फ्रांस की सुदूर भूमि से आती हुई एक अपूर्व सुगंध से, साहित्य-वन में विचरण करनेवालों का हृदय सहसा विस्मित हो उठा ! यह सुवास कीमती तथा अनमोल है यह उसके उपभोगियों ने जाना, पर यह गंध कुछ अलग ही है ऐसी अनुभूति भी उन्हें हुए बिना न रही।

फिर एक दिन खबर आयी कि इस गंध का प्रसार करनेवाला 'नोबेल प्राइज' जीत गया है, तो वे आनंद से नाच उठे। हमारे यहाँ कविवर टैगोर ने यह इनाम जीतकर भारतवासियों के लिए महान् साहित्य का एक आदर्श स्थापित कर दिया है। जो यह इनाम जीते उसकी साहित्यिकता में क्या कमी हो सकती है ? वर्तमान फ्रेंच लेखकों में से हम जिन दो लेखकों को जानते हैं वे गांधीजी के प्रशंसक रोमारोलाँ और 'नोबेल प्राइज' के विजेता अनातोल फ्रांस हैं। तब से भारतवर्ष में मों० अनातोल फ्रांस की पुस्तकें और अधिक पढ़ी जाने लगी हैं।

शेक्सपीयर की तरह उत्तरोत्तर विकास पाती हुई कला, उसकी विजय तथा प्रातियों की कथा में ही इस महान् साहित्यिक का जीवन-इतिहास रचा गया है। कवि और लेखक—जिन्होंने कल्पनामय सृष्टि रची हो—ऐसे लेखकों—की जीवन-सृष्टि में होनेवाले परिवर्तन तथा अद्भुतता से भरी हो ऐसी जन-समह की धारणा इनके जीवन में सच्ची नहीं उतरती। पर बाहर से अद्भुत दिखाई देनेवाली प्रकृति का अद्भुत विकास

तथा परिवर्तन इनके अंतर में भी हुए हैं और परिणामस्वरूप इन्होंने एक नवीन सृष्टि का ही सृजन किया है।

अनातोल फ्रांस १६वीं अप्रैल, सन् १८४४ के दिन पैदा हुए। उनका पिता एक पुस्तक बेचने वाला था और उसकी दूकान पर सदा ही प्रसिद्ध विद्वानों तथा उदीयमान साहित्यिकों की चर्चा चला करती थी। साहित्य संस्कार से रस में डूबा हुआ घर छोड़कर फ्रांस के स्कूल में गये और वहाँ थोड़ी बहुत शिक्षा प्राप्त कर, जवानी में साहित्य-सृष्टि में स्थान प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगे।

उनका बचपन बिलकुल स्वप्निल था। और उन्हें स्कूल में जाकर पाठ याद करने की अपेक्षा स्वप्न देखने का अधिक शौक था। उनकी पाठशाला की पोथी में अच्छा 'मार्क' या अच्छा 'रिमार्क' तो कदाचित् ही लिखा जाता। उनके पिता की ऐसे बालक के विषय में कुछ ऊँची सम्मति न हो यह स्वाभाविक ही है।

फ्रांस का स्वभाव इस समय कुछ लजीला तथा एकांतप्रिय था। प्रत्येक बात में उन्हें संकोच-सा लगता। स्कूल में दूसरे बालकों के साथ बहुत हेल-मेल या खेलना-कूदना उन्हें बहुत अच्छा न लगता। जब सब लोग चाहे जो करते हों, यह स्वप्न-द्रष्टा बालक 'सोफोक्लीस' और 'युरीपीडिस', 'आल्सीयस' और 'ग्रेन्टीगोन' पढ़ता तथा इन्हें पढ़ते-पढ़ते वह दिव्य सुन्दरता के स्वप्न देखता।

बालक फ्रांस पर पिता की अपेक्षा माता का प्रभाव अधिक पड़ा था। उसका पिता फ्रांकोइज नोएल थीबोल्ट—रोमन कैथोलिक संप्रदाय का तथा बहुत आस्तिक था। पर उसे बहुत व्यावहारिक नहीं कहा जा सकता। अपनी पुस्तक बेचने की दूकान पर बैठकर अच्छा मुनाफा कमाने की अपेक्षा विरोधी पक्ष से वाद-विवाद करने में उसे अधिक आनंद आता था। परन्तु उसकी व्यावहारिक बुद्धि की कमी मादाम थीबोल्ट पूरी कर देतीं। उनमें सूक्ष्म व्यवहार-बुद्धि तथा धार्मिकता थी। वह घर का

पालन करनेवाली गृहिणी और स्नेहमयी संबंधिनी हो सके ऐसी थीं। सुन्दर होना—दिखाई देना—उन्हें अच्छा लगता था। बालक फ्रांस को वह खूब कहानी सुनातीं। उन्हें अपने पुत्र पर अद्भुत श्रद्धा थी। अनातोल फ्रांस को लेखक होने की प्रेरणा देनेवाली भी यही थीं।

बाल्यावस्था में पड़ी हुई छोटी से छोटी छाप भी महान् फ्रांस ने अखंडित रूप से सुरक्षित रक्खी और नर्स से लगाकर दूर के संबंधियों के रेखाचित्र और अपनी बाल्यावस्था की छोटी-छोटी सूक्ष्म बातें उन्होंने अपनी पुस्तकों में अत्यधिक सरस रंगों से चित्रित कर दीं।

उनका यौवन शिक्षकों का व्यंग करने और शुष्क पद्धति पर दी जानेवाली शिक्षा के प्रति तिरस्कार ग्रहण करने में ही बीत गया। परन्तु उनकी वास्तविक शिक्षा और वास्तविक विकास का मुख्य साधन पेरिस नगर था। फ्रांस फ्रेंचमेन थे और फ्रेंचमेन की-सी पेरिस-भक्ति उनमें थी।

पेरिस नगर का फ्रांस देश में जो स्थान है वह किसी भी देश में उस देश की राजधानी का नहीं। पेरिस फ्रांस का हृदय है; फ्रेंचमेन के जीवन का केन्द्र स्थान है। 'पेरिस के बाहर कुछ सीखने के लिए होता ही नहीं,' यह फ्रेंच लोगों का परंपरा से चला आनेवाला दृष्टिकोण है। सामान्य मनुष्य अपने पूर्वजों के निवास-स्थान की ओर जिस श्रद्धा और भक्ति से देखता है वैसी ही श्रद्धा से फ्रेंच अपनी राजधानी पेरिस को देखते हैं।

वहाँ अर्वाचीन विज्ञान के विजयस्तंभ हैं; वहाँ जगह-जगह ज्ञान के भंडार उनके लूटनेवालों की प्रतीक्षा में पड़े हैं। वहाँ अनेक रूप में अनेकों प्रकार के आनंद उछलते हैं। वहाँ संस्कार के पूर्णतया दर्शन होते हैं। वहाँ पग-पग पर शताब्दियों की ऐतिहासिक महत्ता के चिह्न अर्वाचीन गौरव को प्राचीन गौरव से दीप्त कर रहे हैं। शार्लमैन से मार्शल फोश तक सब फ्रेंचमेन जैसे संदेह हों इस प्रकार फ्रेंच जनता को प्रेरणा देते हैं

और जोन आफ़ आर्क तथा नेपोलियन—फ्रेंचों के आदर्श स्त्री और पुरुष —फ्रेंच प्रजा को प्रोत्साहन देते और उनके जीवन का निर्माण करते हैं।

इस स्मरण-समृद्ध तथा संस्कारी नगर में किसी भी कथाकार की वृत्तियाँ सतेज हो और प्रौढ़ बने तो इसमें कुछ आश्चर्य नहीं। और यदि वह कथाकार फ्रेंच हो तो उसे उस नगर की अपेक्षा और दूसरी कौन-सी परिस्थिति चाहिये ? उसे तो वहाँ के प्रत्येक पत्थर में सृजन की कहानी दिखाई देती है, और मो० फ्रांस को भी ऐसा ही लगा।

इस नगर में उन्होंने जीवन के विविध क्षेत्रों के मनुष्यों की निर्बलताओं का, दुःख का, वियोग का और सुख की चंचलता का दर्शन किया। मनुष्य में रहनेवाले सनातन लगन का स्थायी और अस्थायी रूप में वहाँ उन्होंने साक्षात्कार किया और वहीं उन्हें आंतरिक सौंदर्य प्राप्त हुआ। अपने साहित्य में वह व्यंग करते हैं, कटाक्ष फेंकते हैं, तिरस्कार प्रदर्शित करते हैं, फिर भी उनमें मतभेद, दुःख, पतन तथा विवशता के प्रति अपनी उदारता तथा अनुकंपा प्रदर्शित किये बिना नहीं रहते।

स्कूल छोड़ने पर बहुत समय तक तो वह क्या व्यवसाय करें यह अनातोल फ्रांस की समझ में नहीं आया। पिता को इस बालक से कुछ अधिक आशा न थी। माता के लिए उसका पुत्र सर्वत्र प्रकाश करने के लिए ही पैदा हुआ था। पिता के व्यावहारिक स्वभाव को पुत्र को एकदम किसी जगह स्थित कर देने की जल्दी न थी। माता ने बहुत बड़े कामों के लिए पैदा हुए पुत्र को एकदम किसी भी क्षेत्र में अग्रसर होने के लिए नहीं कहा। फलस्वरूप अध्ययन समाप्त करने के बाद, बिना किसी व्यवसाय के ही बहुत दिनों तक फ्रांस इधर-उधर घूमते रहे।

परन्तु ये वर्ष उन्होंने व्यर्थ ही नहीं बिताये। साहित्य-रसिकों की मंडलियों में वह घूमते और बहुत से उदीयमान साहित्यिकों के समागम में दिन बिताते। उनके इस समय के बहुत से मित्र, बाद के अग्रगण्य साहित्यिकों में गिने गये हैं। उन्हें तभी से साहित्य-सेवा की धुन लगी।

कवि अलफ्रेड द० वी० के जीवन की पहली पुस्तक १८६६ में उन्होंने लिखी। फ्रांस की शक्ति इस समय अधिक विकसित नहीं थी। उन्होंने पत्रों में भी अपने लेख देने आरंभ कर दिये। बी० मार नाम के प्रकाशक के लिए बहुत-सी प्राचीन पुस्तकों की भूमिकाएँ भी लिखीं, परन्तु इतने से जीवन निर्वाह करने योग्य कमा लेना असंभव था।

इतने में सन् १८७० का युद्ध आरंभ हो गया और फ्रांस ने कलम के बदले तलवार पकड़ी। गोलों की वर्षा के नीचे भी वह अपना प्रिय वर्जिल पढ़ने से न चूकते थे। इस समय शांति के उपासक इस मनुष्य ने युद्ध के बचाव में एक पुस्तक भी लिखी है।

वहाँ से वापिस आने पर फ्रांस फिर साहित्य के क्षेत्र में आ गये। पर उन्हें जो काम मिलता वह उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता था। इसलिए उन्होंने १८७० में लग्जंबर्ग की लाइब्रेरी में लाइब्रेरियन की जगह स्वीकार कर ली। इसी लाइब्रेरी में पहले से काम करनेवाले उनके तीन साथी थे। उनकी प्रशंसा में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि ये अपने विषय में एक ऊँचा विचार रखनेवाले लेखक थे; परन्तु एक दूसरे के प्रति तिरस्कार की भावना इनमें बहुत गहरी थी। ये तीनों एक विषय में एकमत थे। स्वयं कुछ काम न करते, अनातोल फ्रांस से ही सब काम कराया जाता था। अंत में पारस्परिक वैमनस्य अधिक बढ़ता गया और अनातोल फ्रांस ने यहाँ से त्याग-पत्र दे दिया।

मो० अनातोल फ्रांस इस समय में विद्वान्, विनोदी, चतुर, अच्छे स्वभाव के और सुन्दर वार्तालाप करनेवाले समझे जाते थे। ये सब गुण, विद्वत्ता, संस्कारिता और सुन्दरता परखने की शक्ति, इस जीवन के बहुत अमूल्य सद्गुण है। मस्तिष्क के शृङ्गार की तरह ये सुन्दर भी लगते हैं। परन्तु पैसा कमाने के लिए तो काम ही करना चाहिये। मो० फ्रांस ने आमदनी बढ़ाने का एक दूसरा साधन—'ला रुशे' के शब्दकोष के लिए काम करना—खोज निकाला, परन्तु इससे हर समय पैसा न

मिलता और भविष्य के इस महान् लेखक को पाकशास्त्र की पुस्तक में लेख लिखकर पैसा कमाना पड़ता था।

मो० अनातोल फ्रांस ने गद्य-रचना के साथ-साथ पद्य-रचना भी की है। उसके काव्यों में सुरुचि है, कविता है, कल्पना है और भाव भी हैं। पर महान् साहित्यिक का पद तो उन्हें गद्य लेखों ने ही दिलाया है।

फ्रांस का पहला विवाह जीन गेरीन की भतीजी के साथ हुआ था इस विवाह से उन्हें एक लड़की हुई। आरंभ में यह जोड़ी सुखी थी पर बहुत समय तक रह नहीं सकी। 'माई फ्रेंड्स बुक' में इस गृह-जीवन का एक सुन्दर चित्र फ्रांस की कलम ने चित्रित किया है। पर इस जीवन की थोड़ी ही सुन्दरताएँ जिस पल अनुभव की गई होंगी उन पलों के बीत जाने पर वे इसी आकर्षण रूप में सुरक्षित रह गई हैं।

इन वर्षों में फ्रांस ने एक के बाद एक पुस्तक प्रकाशित करने का कार्य भी चालू रखा था। कदाचित् एक भी वर्ष ऐसा नहीं गया जिसमें उनकी कोई पुस्तक प्रकाशित न हुई हो। अब तक वह पूरी तरह विख्यात हो चुके थे। मो० फ्रांस सन् १८९६ के दिसंबर मास की २४वीं को फ्रांस की एकेडेमी के सदस्य चुने गये।

मो० फ्रांस ने यात्रायें खूब की हैं स्पेन और इटली से तो वह अपने देश जैसे ही परिचित हैं। अमेरिका और इंग्लैंड में भी वह हो आये हैं। इंग्लैंड की मुलाकातों से उन्हें पुष्कल सम्मान मिला था। उन्हें सम्मान देनेवाली सभा में मि० बर्नार्डशा प्रमुख थे। इस समय घटी एक अपूर्व घटना का उल्लेख करना यहाँ अनावश्यक होगा :—

अनातोल फ्रांस का भाषण समाप्त होते ही एक विचित्र और अद्वितीय प्रसंग उपस्थित हो गया। सामान्यतः अनातोल फ्रांस और स्वाभाविक स्वस्थता के बीच बारह कोस का अंतर समझा जाता था; परन्तु इस ऐतिहासिक प्रसंग में तो उन्होंने सारे जीवन की शारीरिक शक्ति का एक क्षण में इस प्रकार उपयोग किया कि सब आश्चर्यचकित

हो गये। हाथ फैलाकर इंग्लैंड के मोलिअर' की ओर वह आगे बढ़े। और एकदम उसके गले से लिपट कर उसके (बर्नार्डशा के) लज्जा से लाल हुए गालों को एक-एक चुंबन लिया कदाचित् रंगभूमि पर इंद्र का वज्र गिरा होता तो भी इस रमणीय अवसर पर फेबीन्सो जितने आश्चर्य-मुग्ध हुए उतने न हुए होते।

मि० शा—लजीला और अस्पर्श्य एक क्षण के लिए घबराये। पर एक ही क्षण में उन्होंने स्वस्थ होकर वेधड़क तथा आनंदपूर्वक हर्ष की करतल-ध्वनि के बीच मो फ्रांस के आलिंगनों का प्रत्युत्तर दिया।

मार्क रूथफोर्ड के इतिहास प्रसिद्ध चुम्बन, इज़राइल के गले लिपटता जोसेफ़, एफेसस पर पोल के गुरुजन की ओर से मिले चुम्बन; एकांत वातावरण को सशब्दित करते हुए रोमियो और जुलियट के चुम्बन; अद्भुत पराक्रम के बाद पेनीलोप और युलीसीस के हृदय-मिलन से एक भी स्टेनापोर में उत्पन्न हुए इंगलैंड के ज्योर्ज चौथे तथा फ्रांस की लुई अठारहवीं के हृदयालिंगन जितना महत्वपूर्ण आलिंगन नहीं समझा जाता परन्तु यदि वे बर्नार्डशा और अनातोल फ्रांस के आलिंगन देखने के भाग्यशाली हुए होते तो अवश्य ही इसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान देते।

इसके बाद अनातोल फ्रांस के जीवन की अन्तिम महत्वपूर्ण घटनाओं में दो वस्तुएँ ही उल्लेखनीय हैं। १९२० में मेडेमोजेल एमाले प्रेवोट के साथ उनका विवाह और १९२१ में उन्हें मिला 'नोवेल प्राइज़'। एक दूसरी घटना भी उल्लेखनीय है। १९२२ की पतझड़ ऋतु में साहित्यिकों और बुद्धिमानों की दुनिया एक खबर सुनकर चौंक उठी कि अनातोल फ्रांस की सभी पुस्तकें रोमन कैथोलिक संप्रदाय की ओर से बहिष्कार की सूची में रख दी गई हैं। उसमें न तो सारा-प्रसार विवेक का ही उपयोग किया गया था और न उसमें कुछ दूरदर्शिता ही थी। अनातोल फ्रांस की पुस्तकों का इससे और भी प्रचार हुआ। इंगलैंड में सांप्रदायिक इस प्रकार के आज्ञापत्रों से कदाचित् ही कुछ प्रभाव पड़ता हो।

अनातोल फ्रांस

मो० अनातोल फ्रांस युद्ध के विरुद्ध हैं और अंतिम महायुद्ध के समय उनके विचार बहुतों को विचित्र लगते थे। उन्होंने अपनी पुस्तकों में जितना अपना व्यक्तित्व चित्रित किया है उतना किसी भी महान् लेखक ने नहीं किया और धातु के कीर्ति-स्तंभों से भी अधिक स्थायी स्मरण-स्तंभ अपने लिए उसमें रच दिये हैं।

अनातोल फ्रांस की पहली कहानी पुस्तक सन् १८७६ में प्रकाशित हुई। परन्तु उसने लोगों का ध्यान अधिक आकर्षित नहीं किया। लोगों ने तो उन्हें १८८१ में लिखी 'क्राइम आफ सील्वेस्टर बोनार्ड' नामक पुस्तक से ही पहचाना। इस समय अनातोल फ्रांस की उम्र ३७ वर्ष की थी। उनकी दूसरी पुस्तकें 'माई फ्रेंडस बुक', 'पीयर नोजीएर', 'लीटल पीएरे', 'दी ब्लुम ऑफ लाइफ' वास्तव में ये सब उनके जीवन से संबंधित लिखी गई हैं। 'थाइस' उन्होंने १८९० में लिखी। कोई दूसरी पुस्तक न भी लिखी होती तो भी इसी पुस्तक से संसार के साहित्य-कोष में उन्हें अग्र स्थान मिलता।

'रेड लीली', यह भी उनकी अत्यन्त आकर्षक पुस्तक है। इसमें उस महान् कलाकार का शब्दों तथा भावों पर कैसा अद्भुत अधिकार था यह प्रत्यक्ष हो जाता है। अनातोल फ्रांस ने दूसरी भी कई पुस्तकें लिखी हैं। इस छोटे से लेख में केवल उनका नाम निर्देश हो सकता है। इनमें से अधिकांश का अंग्रेजी में अनुवाद हो चुका है।

उपरोक्त पुस्तकों के अतिरिक्त उनकी दूसरी सुप्रसिद्ध पुस्तकें इस प्रकार गिनाई जा सकती हैं : 'मदर ऑफ पर्ल', 'ऐट दी साइन ऑफ रेन पेदोक', 'दी ओपीनीयस ऑफ जेरोम कोईनार्ड', 'दी एमेथीस्टरिंग', 'पेंगवीन आइलैंड', 'गोडज आर एथर्स्ट', 'रीवोल्ट ऑफ एन्जल्स' और 'केकनबिल' आदि। इनके अतिरिक्त भी उनकी लिखी दूसरी बहुत सी पुस्तकें हैं। साहित्य और साहित्यिकों की आलोचना करते हुए उनके 'ओन लाइफ एंड लेटर्स' के चार भाग . भूतकाल के साहित्यिकों में एक

अपूर्व स्थान रखते हैं।

मो० अनातोल फ्रांस की शैली विविध और कलात्मक है। परन्तु उनकी अधिकांश पुस्तकों में एक संपूर्ण बात होने की अपेक्षा, भिन्न-भिन्न घटनाओं की शृङ्खला—अलग-अलग फूलों की गुँथी हुई एक पुष्पमाला जैसी—वस्तु-रचना का अधिक प्राधान्य है और बहुधा एक भाग को हानि न पहुँचे, इसलिए एक दूसरे से कुछ भी संबंध न रखनेवाले विभाग भी होते हैं; जैसे एक-एक प्रकरण अलग-अलग कहानी हो, ऐसा लगने लगता है। 'रेड लीली' या 'थाइस' जैसी पुस्तकें इस तरह की नहीं कही जा सकतीं। इनमें से यदि एक भी वस्तु निकाल लें तो सारी रचना ही बिगड़ जाय। ऐसी अलग-अलग या एकत्र चाहे जैसी रचना में वह परिस्थिति का वर्णन और मनुष्य-स्वभाव के दर्शन अद्भुत रीति से कराते हैं। सूक्ष्म से सूक्ष्म घटना में वह बड़ी खूबी से सुन्दर रंग भर देते हैं। मानव-स्वभाव की सभी दुर्बलताओं का उन्हें अनुभव है, परन्तु बालकों की भूलों को देखकर जिस प्रकार बड़े आदमी हँस देते हैं, उसी प्रकार कुछ विनोदी, कुछ सहानुभूति भरे ढंग से, बिना चिढ़े सह लेते हुए उन्हें देखते रहते हैं। बाहर से वह विक्रमावी (cynical) दिखाई देते हैं, परन्तु चतुर द्रष्टा को तुरन्त ही उसके पीछे हृदय की धड़कन दिखाई दे जाती है।

उनका विनोद सूक्ष्म, सचोट और अचूक होता है, परन्तु स्वयं गंभीर दिखाई देते व्यंग करनेवालों की तरह अपनी गंभीरता का डौल दिखाना कभी नहीं छोड़ते। प्रत्येक वस्तु का—पवित्र और पूज्य समझी जानेवाली वस्तुओं से लगाकर जीवन की सामान्य बातों का—वह उपहास करते हैं, कभी-कभी खटक जाय, ऐसी भव्यता और सरसता के लिए उनके हृदय में जो भाव हैं वैसे भावों का दावा थोड़े ही कलाकार कर सकते हैं। उनका परिहास जितना तीखा होता है उतना सहृदय भी होता है, परन्तु मित्र-भाव से किया गया हो तभी। शत्रु-भाव से किये गये कटाक्ष में तीर से भी अधिक तीक्ष्णता होती है।

तादृश्यता लाने की उनकी शक्ति अपूर्व कही जा सकती है। बालक से लगा कर वृद्ध के स्वभाव तक एक-एक सूक्ष्मातिसूक्ष्म भेदों से वह परिचित हैं। स्त्रियों का उन्होंने विशेष अध्ययन किया हो ऐसा लगता है—पर ज़रा क्रूरता से। प्रत्येक वर्ग और प्रत्येक अवस्था की स्त्रियाँ उनकी जिज्ञासा का विषय हैं और स्त्रियों का उनसे परिचय भी अधिक हो, ऐसा भी लगता है।

मनुष्य के स्वभाव में निहित मनोभाव और इंद्रियजनित प्रवृत्तियों को छिपाने का प्रयत्न नहीं करते, परन्तु प्रत्येक सूक्ष्म भेद को भी ग्रहण करते और व्यक्त करते हैं। इंद्रिय वृत्तियों को भी बहुधा प्रधान स्थान—क्षोभ उत्पन्न करें इस प्रकार—देते हैं और इन सब में कभी-कभी तो सहानुभूति रहित हों ऐसा लगे बिना नहीं रहता। इस शुद्धि के आडंबरवाले (prudish) स्वभाव के अतिरिक्त उनमें ज़रा भी दया हो, ऐसा दिखाई नहीं देता। और फिर भी बहुधा सरसता तथा भव्यता के शिखर पर वह पहुँच जाते हैं। चित्रकार की तरह नये-नये चित्रफलक जो सानंद आश्चर्यान्वित कर दें इस प्रकार जल्दी-जल्दी आँखों के सामने रखते चले जाते हैं। बहुधा निम्नकोटि की बात कहकर घबरा भी देते हैं, पर उससे उनको महत्ता के शिखर से पदच्युत करने का साहस किसी का नहीं हो सकता।

अनातोल फ्रांस के मन कोई भी क्षमा न कर सके ऐसा अपराध सरसता का द्रोह है और इस एक ही देवी की उपासना में उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन बिता दिया है। उनकी कला-परीक्षा और रसवृत्ति के लिए दो मत हो ही नहीं सकते।

मनुष्य की तरह ज़रा आत्माभिमानी, कदाचित् अहंकारी, अच्छे स्वभाव के, अत्यंत आकर्षक व्यक्तित्ववाले, ऐसे कुछ बिना देखे ही हम उनकी कल्पना कर सकते हैं।

ऐसे समर्थ साहित्यिक हमारे गुजरात में भी कब अवतार लेंगे?

कवि दलपतराम डाह्याभाई

जिस प्रकार किसी प्रतिभाशाली मनुष्य के आगमन से युग आरंभ होता है उसी प्रकार ऐसे युग के द्वार बंद करने का कार्य भी बहुधा किसी ऐसे ही प्रतिभाशाली मनुष्य के हाथ से संपादित होता है। बहुधा इस समाप्त होते हुए युग की सभी शक्तियाँ इस मनुष्य में मूर्तिमान हो जाती हैं। ऐसे मनुष्य की दृष्टि भूतकाल से प्रेरणा लेती है। नवीन पीढ़ी की उन्मत्तता ऐसे व्यक्ति को बहुत अच्छी नहीं लगती। कवीश्वर दलपतराम को भी हम इसी वर्ग में रख सकते हैं।

इनका जन्म उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में—सन् १८२० में हुआ था और शताब्दी के अंत तक—१८९८ तक ये जीवित रहे। इस अठहत्तर वर्ष की लंबी जीवनावधि में बूँद-बूँद करके कालांतर में सरोवर हो जाय, इस प्रकार इन्होंने बहुत सी कविताएँ रची हैं और उस युग के उन्नति-क्रम में इन्होंने यथाशक्ति गति प्रदान करने का प्रयत्न किया है।

कवि दलपतराम का समय प्राचीन और नवीन शक्तियों तथा प्राचीन और नवीन मतों के संघर्ष का युग था। पश्चिम की नवीन शक्तियों तथा विचार-प्रवाहों का आक्रमण उसी समय में हमारे देश में होना आरंभ हुआ था। यह नवीन पवन किस तरह की बह रही है उससे अनभिज्ञ प्राचीन मतवादियों ने संसार में और साहित्य में, आत्म-संरक्षण के प्रलोभन में पड़कर उसी समय पूरी तैयारी से विग्रह भी आरंभ कर दिया था। कवि दलपतराम ने प्राचीन साहित्य की सभी शक्तियाँ अपने में मूर्तिमान कर ली थीं। इनका उचित स्थान तो एक बार हमारे

प्रमुख महाशय ने किसी स्थान पर कहा था, उसके अनुसार प्राचीनों के अंतिम प्रतिनिधि रूप में समझा जा सकता है।

परन्तु इन्होंने अपनी कविता का उपयोग वास्तव में नवीन शक्तियों के पोषण में ही किया है। इनकी कविता का विशेष उपयोग मनोरंजक होने पर भी उपदेशात्मक तथा शनैः-शनैः, पर दृढ़ता से अज्ञानता की जड़ काट दे, कुछ ऐसा ही है।

यह तो सच है कि इनकी कविता का जितना विस्तार है उतना गांभीर्य नहीं और उसमें आवेश—भावों के साथ पाठक को भी प्रवाह में बहाकर ले जाय, ऐसा आवेश नहीं है। इसका कारण यही कहा जा सकता है कि इनकी कविताएँ अंतर के आंदोलन के परिणामस्वरूप पैदा नहीं हुई, बल्कि गणितशास्त्री की तरह व्यवस्थित मस्तिष्क से ठीक-ठीक व्यवस्थित रूप में बहार आई हैं। ऐसा जान पड़ता है इनकी कविता का उद्देश्य लोगों का अज्ञान नष्ट करना, भ्रम और दुष्ट रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह करना, चेतावनी देना, उपदेश देना और कदाचित् एक ज़बरदस्त प्रतिद्वन्द्वी के सामने टिके रहने का भी था। इन्होंने 'सहसा परिवर्तन' करने के बदले 'धीरे-धीरे सुधार करने का सार' बतला कर लोकप्रियता प्राप्त की। अपने इस उद्देश्य को इन्होंने जीवन भर रक्खा, और प्रतिष्ठा तथा लोकप्रियता दोनों प्राप्त की। इस कारण से इनकी कविता उड़ान न भर सकी, बल्कि लोक-रंजन करके ही संतुष्ट हो गई। और इस प्रकार इस उपयोगिता की दृष्टि से लिखी हुई कविताओं का रस भी जब इनकी उपयोगिता नष्ट हो गई, तो कम हो जाना स्वाभाविक है।

कवि दलपतराम ने पिंगल और अलंकारशास्त्र का अच्छा अध्ययन किया था और इनकी कविता पिंगल के नियमों का अनुकरण करने वाली तथा अलंकारों की क्रीड़ा में आनंद माननेवाली है। इन्होंने बहुत से प्रबंधों का चौखटा बना कर भी विनोद करने और कराने का प्रबंध किया है। ऐसी क्रीड़ाओं में प्रतिभा नहीं होती और न हो सकती है। प्राचीन

काल में कदाचित् शिष्ट साहित्य का यह एक प्रकार होगा। अतः दलपत-राम ने भी ऐसी शिष्टता लाने का सरस प्रयत्न ऐसी कविताओं में किया है।

कवि दलपतराम इस समय हमें तो कवि की अपेक्षा एक बड़े-बूढ़े जैसे—शिक्षा देते हुए, समझाते हुए, धीरे-धीरे हमारी हठों को दूर करते हुए और कभी-कभी विनोद भी कराते हों—ऐसे अधिक लगते हैं। और लोगों की श्रद्धा कवि दलपतराम पर थी वह बहुत अंशों में इसीलिए थी। इनकी कविता में खामियाँ थीं या नहीं यह देखने की बात कदाचित् ही किसी के मन में उठती हो।

कवि को प्रेरणा तथा उत्साह देकर टिकाये रखने वाले फार्बस साहब थे। इन दोनों का संबंध, कवि और नृप जैसा—मित्रता का था। कवि नर्मद के साथ विग्रह के कारण इनमें आग्रह तथा धारणा शक्ति उत्पन्न हो गई। फार्बस साहब ने इनकी अभिलाषाओं को अपनी इच्छानुसार मोड़-कर जल-सिंचन किया तथा आश्रय दिया! फार्बस साहब न होते तो कवि दलपतराम यदि रहते भी तो कवीश्वर की पदवी को न पहुँचते। इन्होंने भी 'फार्बस-विलास' और 'फार्बस-विरह' रचकर अपनी कृतज्ञता का पूरा-पूरा प्रदर्शन किया है।

इनके जीवन में और काव्य में तूफान नहीं—आया ही नहीं—यह कहें तो अनुचित न होगा। बुद्धिमान् दलपतराम में हमें प्राचीनों द्वारा कितने ही हज़ार वर्षों के अभ्यास से प्राप्त शांति ही दृष्टिगोचर होती है। नर्मद की तरह इन्होंने कभी भी प्रलोभन तो जाना तक नहीं और इसी कारण इनको कभी मानभंग या गौरवभंग होने की या इनकी समता को हिला दे ऐसे आत्ममंथन करने का समय ही नहीं आया। कुलीनता, प्रतिष्ठा और वंश-प्रतिष्ठा का इन्होंने मृत्यु पर्यंत अनुभव किया है।

एक बात सहज ही मन में उठती है और वह यह कि यदि कविवर नर्मद इस युग में पैदा हुए होते तो क्या कवीश्वर दलपतराम में

प्राचीनता के प्रतिनिधित्व का इतना स्पष्ट स्फुरण होता ? इसी प्रकार क्या इनकी काव्य-सरिता का तट इतना विस्तृत हुआ होता ? नर्मदाशंकर के विरोधी भाव से उत्पन्न इस प्रकार का प्रभाव दलपतराम पर कितना होगा यह तो कोई समर्थ काव्यशास्त्री ही खोज सकता है। इस प्रसंग में इस प्रकार की चर्चा अप्रासंगिक ही गिनी जायगी।

कवि दलपतराम ने अंग्रेजी का अभ्यास नहीं किया था, पर विधवा-विवाह के पक्ष में अपना मत प्रकट करने जितने प्रगतिशील विचार वे रखते थे। हास्य रस को भी इनकी कविता में उचित स्थान मिला है। इन्होंने अपनी कविता में किसी भी रस को निरंकुशता से नहीं बढ़ने दिया, परन्तु प्रत्येक रस का आवश्यकतानुसार जैसे तोल-जोख कर करते हों, ऐसा उपयोग किया है। अपनी साहित्य प्रवृत्ति उन्होंने वृद्धावस्था तक, नेत्र गँवा देने के बाद भी चालू रखी थी। गुजराती भाषा के विकास में इनकी देन महान् थी।

ऐसे एक प्राचीन काव्य-साहित्यिकों में अंतिम परन्तु विचारों में या विस्तार में किसी तरह भी पीछे नहीं, ऐसे कवीश्वर को श्रद्धा और प्रेम की नम्र अंजलि अर्पित करते हुए मन आनंदित होता है।

कवि नर्मद

महिलाओ तथा सज्जनो !

नर्मद की नगरी की ओर से ता० १८ को सवेरे मुझे नर्मद के विषय में भाषण देने के लिए निमंत्रण पत्र मिला तब इतने थोड़े समय में इतना बड़ा काम मैं कैसे कर सकूँगी इस विषय में मुझे संशय हुआ। घर में दो बालक बीमार, सिर पर लिये हुए दूसरे काम प्रतिदिन आधा दिन ले लेते और गृहकार्य का भार न होने पर भी गृहकार्य के रूप में न गिना जानेवाला, परंतु गृहिणी के सिवाय किसी दूसरे से न हो सके ऐसा समाज के साथ जुड़ा हुआ गृहतंत्र भी चलाना होता है; ऐसे समय पर एक अध्ययनपूर्ण भाषण तैयार करना यह कितना कठिन कार्य है इसका अनुभव स्त्रियों के अतिरिक्त दूसरे बहुत थोड़े लोगों को होना संभव है।

परन्तु ऐसे भावपूर्ण आमंत्रण को अस्वीकार भी कैसे किया जा सकता? यथाशक्ति जहाँ तक हो सके कठिनाई सहकर भी स्नेह और सम्मान को वापस न लौटाया जाय ऐसा हमारी पद्धति है, इसलिए आपके भाव के वशीभूत होकर ही आज मैं आपके सामने उपस्थित हुई हूँ। थोड़े समय के कारण मैं कवि नर्मद के जीवन या काव्य के विषय में गंभीर अध्ययन नहीं कर सकी। इसलिए कवि नर्मद के जीवन के विषय में थोड़ी सी बातें ही बता कर मैं संतुष्ट हो जाऊँगी। आपको इतने से संतोष न हो तो उसका दोष स्वीकार करने के लिए मैं बँधी नहीं हूँ।

अँग्रेजी में एक कहावत है, 'कोई महापुरुष अपने देश और काल से पहले जन्म नहीं लेता।' इसमें जिस प्रकार सत्य निहित है उसी प्रकार

'कितने ही महापुरुष अपने देश-काल का निर्माण करने के लिए पैदा होते हैं।' ऐसा सुधार कर कहें तो इस बात में भी कुछ कम सत्य नहीं। जिस प्रकार युग की शक्तियों को ग्रहण कर ये अपने स्वभाव और चारित्र्य का निर्माण करते हैं उसी प्रकार उनके स्वभाव और चारित्र्य के विशिष्ट तत्व समाज में नवीन आंदोलन का प्रसार करते हैं। प्रजा की प्रगति का इतिहास ऐसे ही महापुरुषों द्वारा चलाये हुए आंदोलनों का इतिहास है। आज से छः-सात पीढ़ियाँ पहले जब गुजरात प्रगति-पथ में पहला कदम ही रख रहा था तब जिस आंदोलन को नर्मद ने जन्म दिया उससे इसका विकास कितना पास आ गया, यह बात तो तभी जानी जा सकती है जब उस समय की शक्तियों का अध्ययन करें।

नर्मद समय-मूर्ति था, उससे भी अधिक समय का गढ़नेवाला था। गौरवशाली गुजरात—कभी मूर्ख समझा जानेवाला गुजरात—में उस समय बहुत सी बातों का अभाव था। गुजराती भाषा का उस समय विकास न हुआ था। गुजराती में पद्यशास्त्र के अध्ययन करने के उस समय कुछ भी साधन न थे। गुजराती भाषा में विचारों को व्यक्त करने की सामर्थ्य न थी। शब्दों को संग्रहीत करे और शब्दों का अर्थ बतलाये ऐसा एक भी शब्दकोष न था। इस प्रकार के अभावों की पूर्ति के लिए बहुतों को आजीवन परिश्रम करना पड़ता है। साहित्य-परिषद अनेक व्यक्तियों का सहयोग होने पर भी जो न कर सकी वह नर्मद ने अकेले और अकिंचन अवस्था में किया। उसने रस और अलंकार, पिंगल और छंदशास्त्र, पद्य-गद्य के विविध भावों को व्यक्त करनेवाले और विविध रसों का पोषण करनेवाले प्रकार तथा सबका मुकुट-मणि, ऐसा एक कोष गुजरात को दिया। गुजरात के लिए अनेक प्रांतों जीत ले ऐसे लड़ाकू होने की अपेक्षा इस प्रकार के भाषा के अनेक क्षेत्रों में काम करने तथा गुर्जरी को समृद्ध करने वाले इस एक नरवीर की सेवा कुछ कम मूल्यवान है, यह कौन कह सकता है ?

इस महाकवि का जन्म आज से लगभग एक शताब्दी पूर्व ई० स० १८३३ में हुआ था। परिवार मध्यम स्थिति का तथा माता-पिता साधारण पंक्ति के थे। ऐसे घर में और ऐसे संयोग में पैदा हुए नर्मदाशंकर में साहित्य के ऐसे ऊँचे संस्कार कहाँ से आये, यह संतति-शास्त्र के नियमों के अंतर्गत आनेवाला प्रश्न है। बाल्यकाल में यह कवि डरपोक था ऐसा वह स्वयं स्वीकार करता है। स्वभाव का जो गुण या अवगुण बचपन में या बड़े होने पर मनुष्य की गति को रोके उसके प्रति उसे अत्यंत घृणा उत्पन्न हो जाती है और उसके विरुद्ध विद्रोह कर, उसके बिलकुल दूसरे छोर पर जा बैठता है। कवि नर्मदाशंकर को भी निडरता का गुण इस प्रकार और भी अच्छा लगने लगा हो इसमें कुछ आश्चर्य की बात नहीं।

कवि नर्मदाशंकर का बचपन किन्हीं विशेष घटनाओं से भरपूर नहीं लगता। पर बंबई आने तथा कालेज में प्रवेश करने के बाद इन्होंने एक-दो मंडलियों की स्थापना की थी। उसमें कवि का सबसे पहला गद्य-भाषण 'मंडली के इकट्ठे होने से लाभ' पढ़ा गया था। कवि की भाषा में उसी समय से प्रभावों की व्यापकता तथा वेग दिखाई देता है।

यह समय कवि का यौवन काल था। उसके मन में इस समय प्रेम तथा नाम प्राप्त करने की अनेक तरंगें उठतीं। इस समय के सँजोये हुए सपने अंत तक उसके साथ रहे। प्रेम की भूख मिटाने के लिए उसने सुख और प्रतिष्ठा खो दी और दारिद्र्य बटोर लिया। नाम प्राप्त करने के लिए शौर्य दिखाने तथा शौर्य की प्रेरणा देनेवाले अनेक प्रतिस्पर्धी उसने खड़े किये और थोड़े से मित्र भी बनाये और अंत में दुःख, दर्द, दारिद्र्य और दुश्मनों से घिरा होने पर भी इस नरसिंह की धारणा अंत तक अडिग रही।

कवि को काव्य लिखने की पहली प्रेरणा लगभग १८४४ में हुई। अपनी मनोवृत्तियों के लिए विकास का साधन मिलने से उसको उस समय एक प्रकार का श्मशान वैराग्य हो गया था और इसी कारण उसके

पहले पद धीरा भक्त की शैली पर 'परब्रह्म जगकर्ता रे, स्मरोनी भाई हर घड़ी' और 'जीव तू मूरख समजे रे, कहुँ छु घेला फरी-फरी' ऐसे वैराग्य और भक्ति के थे। यह प्रयत्न अपनी वृत्तियों को स्थिरता प्रदान करने और किसी वस्तु में भी आनंद अनुभव न करनेवाले उर्ध्वमुखी चित्त को आनंद देने के लिए थे। कविता करने का व्यसन कुछ ऐसा-वैसा व्यसन न था। अपनी कविता में अपूर्णता का आभास हो और जिसमें रसानंद की कल्पना की हो उसमें कुछ क्षति जान पड़े, ऐसा कवि को रुचिकर नहीं था। उसने गुजराती भाषा में अलभ्य ऐसे पिंगल, छंदशास्त्र, अलंकारशास्त्र, रस-प्रवेश इत्यादि ग्रंथ, संस्कृत तथा अन्य भाषाओं से अत्यंत परिश्रमपूर्वक प्राप्त किये तथा उनका अध्ययन किया। इतना ही नहीं, वरन् उन अध्ययन किये हुए विषयों को गुजराती भाषा में भी रक्खा और इस दिशा में अभ्यास करने वाले बहुत से व्यक्तियों को सरलता करदी। महापुरुष केवल स्वयं जानकर अथवा प्राप्त कर अकेले ही संतोष नहीं मान लेते, बल्कि अपने ज्ञान और अध्ययन से दूसरों को मार्ग दिखाने में ही उन्हें संतोष होता है, यह लक्षण कवि नर्मदाशंकर में आरंभ से लक्षित होता है।

लगभग सन् १८५५ से ५६ तक का समय कवि नर्मदाशंकर ने अपने कवि-जीवन में उपयोगी हो, ऐसे अध्ययन में व्यतीत किया। काव्यशास्त्र के ग्रंथ प्राप्त करने तथा उनका अध्ययन करने और उसमें श्रम करने में उसने कोई कसर नहीं रखी और साथ ही उसकी काव्य-रचना के ग्रंथ भी प्रकाशित होते रहे। इतने वर्षों की तपश्चर्या के बाद उसने माता सरस्वती की गोद में सिर रखने का संकल्प किया। कवि के अपने ही शब्दों में इस धन्य दिवस का उल्लेख इस प्रकार हुआ है—"घर आकर लेखनी के सामने देख आँखों में आँसू भरकर उसने प्रार्थना की कि अब मैं तेरी शरण में आ गया हूँ," जिस युग में वह पैदा हुआ उस युग में गुजराती की गोद में सिर रख कर ही जीने का संकल्प करनेवाले व्यक्ति में कितना वीरत्व होगा उसकी तो इस समय केवल कल्पना ही की जा सकती है, या

कदाचित् यह भी हो सकता है कि इस प्रकार की वीरता केवल उसी युग में सम्भव हो। इस समय तो यदि कोई ऐसी वीरता दिखाने भी जाय तो उसे याचक-वृत्ति जैसी दीनता में जीवन बिताना पड़ता है।

नर्मद के युग में प्रमुख समझे जानेवाले दलपतराम और नर्मद दोनों जीवन में एक बार वाद-विवाद करने के लिए मिले थे, यह नर्मद के जीवन की एक उल्लेखनीय घटना है। किस लिए? शिक्षाओं से भरी हुई और प्रधानतया अलंकार और प्रास-अनुप्रास की गाँठों में ही उलझी हुई दलपत की कविता तथा प्रेम-शौर्य के गीत गाती हुई नर्मद की कविता का मेल किस प्रकार संभव है? दोनों की वाग्धारा जब परस्पर प्रवाहित हो उठी होगी तब सभा-रंजनी तथा वेगवती दो शैलियों के संगम, गर्मियों में छिछली पर बड़े विस्तार वाली साबरमती और प्रमाण में छोटी दिखाई देने पर भी सबको बहा ले जाय ऐसे वेगवाली हाथमती के नीर, दोनों एक साथ मिलें तब जैसी स्थिति हो, वैसी ही स्थिति कुछ-कुछ उस समय भी हुई होगी।

१८५६ का वर्ष दूसरे बहुत कारणों से कवि के जीवन में उल्लेखनीय है। उसने इस वर्ष से सुधारों के विषय में खूब लिखना आरंभ किया। कवि का हृदय अपने देश की दुर्दशा और हानिकारक सामाजिक रीति-रिवाजों से खूब ही द्रवित होता और दुखता भी। विशेषकर विधवाओं की दशा देखकर उसे बहुत दुःख होता था। उसकी वाणी में भी गुजराती गद्य में न मिलने वाला वेग और तीक्ष्णता थी। ऐसे प्रतिपक्षी तक पहुँच न होने पर उसे तोड़ डालने का ढंग (Mob-Psycology) समाज में—प्राचीन विचार वाले समाज के बहुत बड़े भाग में—खूब जोरों से फैला हुआ होगा। संसार के प्रत्येक महापुरुष को ऐसा काँटों का ताज पहनना पड़ता है और उसके कणों से टपकता हुआ रुधिर जनता को शाप न देकर उसमें कल्याण की भावना जगा देता है।

इसके बाद के वर्ष में सन् १८६० ई० में आज जिसकी कल्पना भी

न की जा सके ऐसा वीरत्व—उस समय तो युद्ध में जूझने जैसा वीरत्व—दिखाया और वह था यदुनाथ महाराज के साथ पुनर्विवाह संबंधी शास्त्रार्थ करने जाना। आज से सत्तर वर्ष पहले यदि पुनर्विवाह का नाम भी ले लो तो एक महान् पाप—चौरासी लाख योनि में भी जिससे मुक्ति न मिले ऐसा पाप—माना जाता होगा। तब उस संबंध में श्रद्धालुओं के इस लोक के ईश्वर और परलोक के तारणहार समझे जानेवाले वैष्णव महाराज, भक्ति रस में विभोर विधवा नारियों के साथ असहाय अवस्था और मानसिक दुर्बलताओं का लाभ उठाकर मन चाहे निंद्य व्यवहार करते हों, तो भी उनके साथ वाद-विवाद करने में तथा पुनर्विवाह से भक्तिमुग्ध दासियों को मुक्ति का मार्ग दिखाने में अपने साहस और पुरुषार्थ की कितनी पराकाष्ठा कवि को दिखानी पड़ी होगी उसका चित्र तो केवल कल्पना द्वारा ही कुछ धुँधला-धुँधला सा आँखों के सामने आ खड़ा होता है।

कवि के पिता का स्वर्गवास सन् १८६६ में हुआ उस समय कवि का कीर्ति-सूर्य भी मध्याह्न पर पहुँच चुका था। इसी वर्ष कवि ने 'डांडीया' में वज्रप्रहार आरंभ किये, परंतु कवि की आर्थिक विपत्तियाँ इसके बाद और अधिक बढ़ने लगीं। इस समय का करुण चित्र इनकी जीवन-कथा पढ़ते हुए हृदय पर गहरा प्रभाव डालता है। कवि का उदार स्वभाव, उनकी अपव्ययिता, सांसारिक और सामाजिक विपत्तियाँ और अर्थप्राप्ति के लिए अनेक तरह के प्रयत्न, कभी-कभी चार आने के दूध-चौले खाकर रह जाना पड़े ऐसी स्थिति, और अन्त में जीवन भर निभाई प्रतिज्ञा तोड़ देना और उससे अनुभूत मानसिक व्यथा, ये सब कवि की महत्ता को बताते हैं। इतना दुःख गुजराती के बहुत थोड़े उपासकों ने उठाया होगा।

बीच में एक उल्लेखनीय घटना रह गई। कवि ने १८६९-७० में एक विधवा-स्त्री के साथ गुप्त रूप से पुनर्लग्न कर लिया था। इस लग्न ने

उनके आंतरिक जीवन में क्या-क्या परिवर्तन किये यह बात उनके जीवन-चरित्र में नहीं है। प्रेम की जीवनभर लालसा रखनेवाले कवि को इससे प्रेम की लालसा शांत हुई या नहीं इस प्रश्न का उत्तर किसी भावी जीवन-चरित्रकार के लिए छोड़े देती हूँ।

अपने साहित्य-मनवन्तर के मनु के जीवन की रूपरेखा इस प्रकार हम देख गये। इस जीवन का निर्माण करने वाली शक्तियाँ कौन-सी थीं इस पर भी हम थोड़ा विचार करेंगे।

नर्मद का युग हमारे देश में संक्रान्ति का युग था। पश्चिम की नवीन भावनाएँ और आचार-विचारों का निरीक्षण करनेवाले दृष्टिकोण भी इस भाषा के अध्ययन के साथ ही इस देश में आने लगे थे और प्रत्येक प्रश्न पर विचार करने के दृष्टिकोण भी बदलने लगे थे। भाई ज्योतीन्द्र दवे ने इस समय का वर्णन लिखते हुए और नर्मद पर उसका प्रभाव दिखाते हुए, इस युग-शक्ति के समस्त प्रभावों का एक सुन्दर चित्र इस प्रकार खींचा है।

"यह युग संक्रान्ति का था। प्रातःकाल के समीर की तरह आंग्ल-विद्या ने गुजरात के जीवन में शनैः-शनैः स्पष्ट संचार करना आरंभ कर दिया था। हमारी दशा—आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, वैसे ही साहित्यिक बिलकुल अधमावस्था को पहुँच गई है, इसमें सुधार करना चाहिए, ऐसे विचार देशवासियों को उनकी निर्धारित कर्तव्य-दिशा की ओर प्रेरित कर रहे थे। मुसलमानी राज्य के कोलाहल में हमारी पुरातन संस्कृति की प्रतिध्वनियाँ बहुत कुछ अंशों में दब गई थीं और उनमें नवीन संस्कृति और नवीन राज्य के सर्वप्रथम ही दर्शन हुए थे।" इसलिए लोग स्वाभाविक रीति से उसके मोहक चमत्कार से आश्चर्यचकित रह गये। जगह-जगह समाज-सुधारक पश्चिम के रंग में रंग कर पूरे भारतवर्ष को इस रंग से रँग देने के लिए कटिबद्ध हो गये। अनेक सभाओं की स्थापना हुई। अनेक पत्र निकलने आरंभ हुए। पुनर्विवाह

शुभ समझे जाने लगे। सामाजिक विषयों पर निबंध लिखे जाने लगे और सुधार संबंधी भाषण—गद्यमय भाषणों की परंपरा प्रारंभ हो गई। इन सभी प्रवृत्तियों का केन्द्र-स्थल बंबई उस मंथन-काल का समुद्र बन गया।

इसका प्रभाव सभी लोगों पर पड़ा, परन्तु सबसे अधिक नर्मद का स्वभाव अति उग्र होने के कारण वह इन नवीन संस्कारों का सबल उद्घोषक बना। नर्मद अर्थात् वातावरण में होनेवाले परिवर्तनों की सूचना देने वाला अचूक "बैरोमीटर" परन्तु पारे की तरह उसकी समस्त भावनाएँ आसपास के वातावरण पर ही अवलंबित रहती हों, यह बात न थी। समय ने उसे बनाया और उसने अपने समय को बनाने में बहुत कुछ सहयोग दिया है।

इस समय अंग्रेजी शिक्षा का आरंभ नया-नया था। लोगों को अंग्रेजी के कवियों की मोहिनी प्रथम ही लगी जिससे साहित्य में नवीन प्रेरक शक्तियाँ उत्पन्न हुईं। श्रोताओं के मनोरंजनार्थ लिखे गये व्याख्यान या राधाकृष्ण के नाम पर रचे गये शृङ्गारिक गीत प्राचीन प्रणाली के बंधन वर्ड्स्वर्थ, बायरन और स्कॉट के निजी भावों का प्रत्यक्ष दर्शन कराने वाले गीतों के मोह के आगे शिथिल हो गये और आत्मलक्षी कविता का आरंभ हुआ।

और आत्मलक्षी कविता के युग-द्वार खोलने के लिए नर्मद पूर्णतया योग्य था। ऊपर बताये गये नवीन संस्कारों का वह सबसे सबल उद्घोषक था। उसी प्रकार कविता लिखने का आरंभ भी उसने अपनी मनोव्यथा हलकी करने के लिए किया था। 'कविता कहिये कल्पना, जन-मन रंजन जान' कविता की व्याख्या उसने इस प्रकार नहीं की थी। उसे श्रोताओं को प्रसन्न नहीं करना था, दूसरों की पर्वाह न थी। लोकमत का भय न था। 'मन में जब पद-रचना से आनंद होता है तो फिर मैं यही काम करूँगा।' ऐसा उसका निश्चय था, इसलिए उसने अपने आनन्द के लिए काव्य लिखने आरंभ किये। इतिवृत्तात्मक कविता का

उसमें अभाव था और उसके नाटक इस बात की साक्षी हैं। अपने को जैसा लगे फिर चाहे वह कड़ुवा हो या मीठा, योग्य हो या अयोग्य तो भी कहना ही चाहिए यह उसका स्वभाव था। जो जैसा हो उसको वैसा ही चित्रित करने की प्रेरणा से जो न लिखना था वह भी इसने लिख डाला। परदेश-गमन, विधवा-विवाह, जाति-बंधन, देशाभिमान इत्यादि उस समय के सभी पुरुषों का मनोमंथन करने वाले अनेक प्रश्नों ने उसके हृदय का भी मंथन किया और मंथन का महाफल थी नर्मद की कविता। इसी कारण नर्मद की कविता इन सुधारों का बाइबिल समझी जाती है।"

इस वर्णन में कवि नर्मद की युग-प्रेरणा तथा उसकी कविता का बड़ा ही प्रभावोत्पादक चित्र हमें मिलता है। नवीन भावों को ग्रहण करने और उसको व्यक्त करनेवाले नर्मद का स्थान अपूर्व है।

किसीने कहा है, 'नर्मद कवि के रूप में महान् था, साहित्यिक रूप में उससे भी महान् और सबसे महान् तो वह मनुष्य रूप में था।' ऐसे कितने साहित्यिक हैं जिनकी मानवता की महत्ता इस प्रकार स्वीकृत की जा सके?

इस काव्य में कवि नर्मद की मानवता की महत्ता की उद्घोषणा है और मुझे भी लगता है कि नर्मद की वास्तविक महत्ता उसके कवि में नहीं, वह साहित्यकार था उसमें भी नहीं, पर वह मानव रूप में महान् था इसमें है।

समाज-सुधार का झंडा उठाना उसकी धाँधली नहीं थी, बल्कि उसकी मानवता से समाज में होनेवाले अन्याय न सहे गये, इसलिए उठाया था। उसकी दृढ़ आत्मा को देशवासियों के दुःख, उनका पग-पग पर होनेवाली अपमान और उस अपमान के वे स्वयं कारण-भूत थे और थे उनके दुष्ट आचरण, ऐसा लगने लगा था। बाल-विवाह और विधवा-विवाह इन सब दुःखों के मूल-कारण थे और उसमें भी विधवाओं पर होने वाले

अत्याचार और उनकी करुण दशा और इसकी वजह से समाज के मूल में गंभीर संक्रामक रोग था। ये हमारे देशवासियों की महान् पीड़ायें हैं, इनसे उद्धार न हो तब तक हमारा और हमारे समाज का किसी तरह भी कल्याण नहीं होने वाला, यह भी वह निश्चय मानता था।

उसने अपनी शक्तियों का अधिकांश व्यय समाज के इस कोढ़ के विरुद्ध आंदोलन चलाने में किया। विशेषतः विधवा-विवाह के प्रश्न के लिए उसने जोर-शोर से आंदोलन आरंभ किया।

इस बात का महत्व आज हम पूरी तरह नहीं समझ सकते। आज से दस-पंद्रह वर्ष पहले विधवा-विवाह का पक्ष लेने और विवाह करने-वाले को कितनी विपत्ति सहनी पड़ती थी इस बात पर जरा विचार करें, तो आज से साठ-सत्तर वर्ष पहले इस प्रश्न को हल करनेवाले का समाज में जीना भी अशक्य था, ऐसी हमें पूर्ण प्रतीति होती है। और श्री यदुनाथ महाराज से वाद-विवाद करने के लिए, जब बेचारा नर्मद असहाय और अकेला वहाँ गया होगा तो भाई दवे के कहे अनुसार हमको मार्टीन लूथर की याद हो आती है।

इस महापुरुष में अहंभाव था, कई लोग कहते हैं। परन्तु यह अहंभाव भी कोई निरर्थक न था। सारे गुजरात में चार अक्षर पढ़े-लिखे की कमी थी और कायरता का अतिरेक जीवन-व्यवहार को निष्प्राण बनाये दे रहा था। उस समय एक महापुरुष—जिसने इतना सृजन किया, इतना युद्ध अकेले हाथों लड़ा और अनेक आघात झेले, उस व्यक्ति को अपनी शक्तियों का भान हो, तो इसमें अहंभाव कैसा? निर्वीर्य मनुष्य का अहंभाव उपहासास्पद है। शक्तिशाली मनुष्य तो स्वयं करता है, अपने में करने की शक्ति है, इस ज्ञान से ही अपनी कार्य-दिशाओं तथा क्रियाओं का विस्तार करता है। और नर्मद जैसे समर्थ पुरुष को अपनी शक्तियों का भान न हो यह कैसे हो सकता है?

और जैसा वह शक्तिशाली था वैसा ही उदार भी। उसे अर्थ के

लिए अत्यन्त श्रम करना पड़ा, फिर भी उसने अर्थ-पूजा के लिए अर्थ-पूजा नहीं की। मित्र को पुस्तक अर्पण कर उसकी सहायता द्वारा अपनी कठिनाइयाँ आसान करने का मनोरथ, मित्र निर्धन होने से भंग हो गया, फिर भी सहायता मिले, ऐसे किसी दूसरे व्यक्ति को अपनी कविता-पुस्तक अर्पण न करके अपने मित्र किसनदास को ही अर्पण की। इस बात में मित्रों और संबंधियों को अव्यावहारिकता लगी, इससे कठिनाइयाँ अनेक गुनी बढ़ गईं, पर उसकी आत्मा की महानुभावता इससे सहस्र गुना अधिक प्रकाश देती हुई दिखाई देती है।

नर्मद ने एक बार अधिक व्यय करके कदाचित् यथाशक्ति धन व्यय करके कोट बनाया और कोई मित्र मिलने आया तो उसे वह दिखलाया। मित्र ने प्रशंसा की तो ऐसा कोट पहनने की अपनी अशक्ति प्रकट कर 'यह तुम्हारे लिए ही बनवाया है' ऐसा कहकर बड़े प्रेम से बनवाया हुआ कोट मित्र को दे डाला। एक सम्पन्न या अच्छी स्थिति वाले व्यक्ति की दृष्टि में इस बात का कदाचित् कुछ मूल्य न हो, पर नर्मद की स्थिति में एक पलभर यदि अपने को रखकर सोचें तो इस औदार्य के सुन्दर स्वरूप के दर्शन हो सकते हैं।

नर्मद में नीति-शैथिल्य था यह बहुत से लोग मानते हैं। परन्तु उसमें निज की अपेक्षा उस युग का अधिक दोष था। इस समय का चित्र खींचते हुए श्री विनायक नन्दशंकर महेता 'नर्मदाशंकर जीवन-चरित्र' में इस प्रकार कहते हैं, 'मदिरा को निषिद्ध समझनेवाले, मुसलमान से छू जाने पर अपवित्र हो जानेवाले, परन्तु वेश्या के हाथ की बीड़ी पीने में सम्मान समझनेवाले, गानेवाली सलाम करे तो—अपनी नानी के व्यंग्यात्मक शब्दों में कहूँ तो—वायसराय से हाथ मिलाने जितनी खुशी और महत्ता समझते और सलाम के बाद यदि कहीं वह हँस दी तब तो मनकमल खिल उठे और मुख सस्मित हो जाये।' ऐसे युग और वातावरण में जन्म लेने और जीनेवाले, हमारी आज की दृष्टि से कदा-

चित् सक्रिय नीति से युक्त न दिखाई दे, परन्तु इतना तो सत्य है कि नर्मद की नीति-शिथिलता केवल भोग की लालसा से नहीं जन्मी किन्तु उसके रसिक स्वभाव की अतृप्त स्थिति में से उत्पन्न हुई थी। उसके स्वभाव में स्त्री के रसिक सहवास की और इसकी प्रेरणा की एक तीव्र क्षुधा थी। और उस युग में रसिकता या बुद्धि के ऊँचे स्तर पर विचरण कर सके, ऐसी स्त्री मिलना कठिन था इसलिए असंतुष्ट मन केवल बुद्धि की ऊँची भूमिका पर न रहकर नीचे फिसल गया।

नर्मद के आदर्श बायरन और दयाराम थे और अपने आकृति में भी दयाराम का साम्य देखनेवाला अपने गुणों में भी इन कवियों का अनुकरण करे—अनुकरण हो सके तो—इसमें बहुत आश्चर्य जैसी बात नहीं है।

नर्मद का व्यक्तित्व अत्यंत आकर्षक होना चाहिए, यह उसके विषय में परिचित ही कह सकता है। और था ही, ऐसा उसके जीवन-चरित्र-कार कहते हैं। उसका दिखाव प्रभाव-दर्शक, बातचीत करने की कला उच्च प्रकार की—वश में करने जैसी थी; बातचीत के विषयों में विविधता: उसका ज्ञान अनेक प्रदेशों को स्पर्श करने जैसा और उसकी बुद्धि तीक्ष्ण थी। अपने आस-पास मनुष्यों को इकट्ठे करने तथा मंडली जमाने की उसमें अद्‌भुत शक्ति थी। किसी भी काल या युग में ऐसा मनुष्य पूजा जाय और महत्ता प्राप्त करे इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

परन्तु नर्मदाशंकर की ये सब शक्तियाँ उस समय के अज्ञान-काल में कई तरह से लड़ने और वादविवाद करने में अपव्यय हो जाती थीं। अकेले योद्धा को आघात करने तथा आघात झेलने में जीवन की सार्थकता लगती थी। उसका आन्दोलन एक प्रकार का न था। अंधकार में दबे हुए शास्त्रों का अध्ययन कर उसने काव्य-शक्ति का विकास किया था और ऐसा करते हुए, प्राचीन काल से स्वीकृत और जड़ हुए आदर्शों —काव्य-प्रदेश के आदर्शों—में उसे परिवर्तन करना था। उसे लोगों

को अंकधारग्रस्त मनोदशा से जागृत करना और सदियों के भयंकर अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह करना था। उसे लोगों की रगरग में प्रविष्ट हुई भय और कायरता को निकालकर बाहर करना था और जनता का उद्बोधन करना था। इतना सब करने में उसने छल-प्रपंच या अप्रामाणिकता का प्रयोग नहीं किया, किन्तु अपनी वरदायिनी लेखनी को चारों ओर तलवार की-सी तीक्ष्णता से घुमाया है और उससे त्रस्त 'अत्यन्त निर्बल लोगों का वैर-भाव' उसको अंत तक खटका है।

उसने वृद्धावस्था में अपने विचार बदल दिये और 'धर्म-विचार' ग्रंथ का प्रणयन किया। कितने आघात उसके हृदय को सहने पड़े होंगे? सुधारक-संगठनों का द्रोह उसमें कितने अंशों में कारण-भूत होगा? और प्राचीन संस्कृति का आह्वान कितना प्रबल हो गया होगा? और अपयश की पर्वाह किये बिना अपने परिवर्तित विचारों को इतने खुले रूप में प्रदर्शित करनेवाला गुजराती, गांधीजी के अतिरिक्त कोई दूसरा कदाचित् ही दिखाई देगा।

इसी बात को दूसरे दृष्टिकोण से देखते हुए श्री मुन्शी कहते हैं, "नर्मद वीर था, उसने समाज-सुधार के लिए संघर्ष किया, वह तत्व-द्रष्टा था और उसने स्वसंस्कारों में निहित रहस्य समझा हो, इतना ही नहीं बल्कि परसंस्कारों को भुलाकर स्वसंस्कार को पुनर्जीवन देनेवाले महागुजरातियों की अनंतमाला जिस अनादि काल से चली आ रही है उसका यह एक मनका बन गया।"

ऐसा यह वीर और प्रेमी, नवीन गुजराती गद्य और पद्य का आद्य लेखक जीवन के साथ जीनेवाला और सब को नवजीवन का द्वार दिखानेवाला, आत्मलक्ष्मी साहित्य का प्रथम सर्जक इस गुजराती महापुरुष को अपने अर्घ्य की नम्र अंजलि अर्पित करते हुए मुझे आनंद होता है।

धारा-सभा में दो दिन

[यह विवरण वास्तव में पूना की अंतिम धारा-सभा के समय लिखा गया था। शेष कुछ समय बाद पूरा किया परन्तु तब तक धारा-सभा भंग हो गई और कुछ कारणों से 'गुजरात' के प्रकाशन में विलम्ब हुआ, इसलिए यह लेख छपने से रह गया था। अब धारा सभा बंबई में फिर आ गई है और साइमन कमीशन भी अभी हमारे देश में घूम रहा है, इसलिए यह विषय बिलकुल अप्रासंगिक नहीं यह सोचकर प्रकाश में ला रही हूँ।—लेखिका]

थोड़े दिन हुए एक महाशय ने मुझसे पूछा था, 'क्यों, तुम पूना प्रदर्शनी देखने नहीं गयीं?'

आश्चर्य से मेरी आँखें ऊपर चढ़ गईं, 'प्रदर्शनी कैसी?' पूना में इस समय कोई प्रदर्शनी हो रही हो यह मुझे याद नहीं आ रहा था।

"अरे वाह, बंबई सरकार ने मनुष्य-प्राणियों का जो संग्रह स्थान बनाया है वह अब खोल दिया गया है, वही तो!" वे महाशय आँखें टिमटिमाते हुए जोर से हँस पड़े!

एक मिनट विचार करने पर मुझे ख्याल आया कि ये महाशय हमारी धारा-सभा की बैठक जो पूने में होने वाली है उसके विषय में कह रहे थे। ऐसी मोटी बुद्धि रखने के कारण मुझे अपने पर भी हँसी आई और बात वहीं समाप्त हो गई।

बंबई प्रांत की धारा-सभा यदि कोई पहले-पहल देखे तो कदाचित् एक बार जैसा कि इन महाशय ने कहा था, कुछ वैसा ही ख्याल आये

बिना न रहे। प्रांत में कितनी जातियाँ और कितने मत हैं इन सब की सरस से सरस माप केवल धारा-सभा को देखकर ही हो सकती है।

इस समय की धारा-सभा एक बहुत बड़ी यादगार हो गई है, यह कहा जा सकता है। बहुत बड़े-बड़े बिल इस समय समाप्त हो गये थे, बारडोली के ऐतिहासिक सत्याग्रह में उसने अंतिम प्रकरण का समावेश किया पर फिर भी साइमन कमेटी के विश्वास पर प्रजापक्ष ने मजबूत हार खाकर प्रजापक्ष में कितनी फूट है इसका सुन्दर प्रदर्शन किया। बहुत से परस्पर विरोधी तत्व बाहर आये और बहुत से उस समय दबा दिये गये। इस समय प्रजापक्ष में अंग्रेज़ी कहावत के अनुसार 'जूता कहाँ काटता है' यह ठीक-ठीक मालूम हो गया।

इस समय धारा-सभा में कितने ही पक्ष और पार्टियाँ हैं, वहाँ नायकों का भी कुछ पार नहीं और उन सब नायकों के अनुयायी होने ही चाहिए, ऐसा भी कुछ प्रमाण नहीं मिलता। सिंधी मुसलमानों के भुत, खुर तथा नूरमुहमम्द; प्रेसीडेन्सी मुसलमानों में हुसेनभाई, केरवाडा, मन्सुरी; दलितों के आंबेडकर, सोलंकी, बोले और अब्राह्मणों में जाधव कंबली, अंगडी, चिकोड़ी, आसवले; दक्षिणियों के चंद्रचूड़, काले और स्वराजीस्टों में, बालुभाई, नरीमान से लगा कर जीवाभाई तक सभी—और सिंधी पहाला-जानी, जैरामदास और नारणदास बेचर ये तीन थे; कालेशन नेशनलिस्ट में लालजीभाई, दादूभाई मुन्शी और सुरत मेंबर्स और सरदारों में अपने 'एरिस्टोक्रेट' और 'नेचरल लीडर' की तरह माने जानेवाले सरदार मजमूदार इत्यादि सभी नायक थे। इनमें से प्रत्येक के अनुयायियों के नाम गिनाने का साहस तो बहुत निम्न कोटि का समझा जावेगा।

इसके बाद वसंतराव डामोलकर जैसे नियुक्त (Nominated) सदस्य और सरकार के तो सभी मेंबर अपने को 'लीडर' समझते होंगे यह अनुमान कोई भी सहज ही लगा सकता है। इनके नायक पद के

लिए शंका प्रकट करने का अधिकार किसी को हो सकता है अथवा नहीं, यह शंकास्पद विषय होगा।

इस महीने की पहली तारीख को इस धारा-सभा में सरकार ने सायमन कमेटी नियुक्त करने का प्रस्ताव लाने का निश्चय किया था। बारडोली के प्रश्न ने सायमन कमीशन के प्रस्ताव को बिलकुल ढँक दिया था। तो भी धारा-सभा में तो गरमागरम बहस होगी ही यह सब ने सोच रक्खा था और इसी आशा से मुझे भी अन्त में इसे देखने का शौक हो आया।

हम पहली तारीख को सवेरे ट्रेन से रवाना हुए। ('हम' सर्वनाम बहुमानदर्शक या संपादक पद के अधिकार का नहीं पर वास्तविक बहुवचन है।) स्टेशन पर से शुद्ध खादी का किनारीदार दुपट्टा कंधे पर डाले हुए 'सौराष्ट्र' के संपादक श्रीयुत अमृतलाल सेठ और भाटीआशाही खादी पगड़ी बादामी लंबा कोट और बूट मोजों से सज्जित श्री लालजी भाई तथा मितभाषी और मीठी हँसी हँसनेवाले डा० गिल्डर भी साथ हो गये।

इनमें श्री अमृतलाल सेठ काठियावाड़ी हैं और काठियावाड़ी प्रजा के पक्ष में वे खूब जोर से आंदोलन चलाते हैं और राणपुर की ब्रिटिश सीमा में से सौराष्ट्र की रियासतों पर अपने तीर कामठे चलाते रहते हैं। एक बार सेठ बहुत लोकप्रिय थे। आज भी हैं। परन्तु इनके विरोधी दिन पर दिन बढ़ते जा रहे हैं, ऐसा लगता है। जल के प्रवाह जैसी लोकप्रियता किसकी एकसन से टिकी है जो उनकी टिकी रहे?

परन्तु सेठजी ने कोई बड़ी से बड़ी भूल की है तो उन्होंने इस लोकप्रियता की बालू पर अपनी 'Career' के भवन का निर्माण किया है। इस कारण उसका संरक्षण सदैव डाँवाडोल स्थिति में रहे, यह संभव है। वे समय को पहचानना जानते हैं, उससे लाभ उठाना भी और यही कारण है कि वे सौराष्ट्र को और अपने को इतना ऊपर उठा सके हैं।

इनके स्वभाव में तीखापन है; मिर्चों जैसा हानिकारक तो नहीं पर

आदरख की तरह जरा मुँह जलाकर फिर रस लाये, ऐसा। और ऐसी ही तीखी और तमतमाती हुई अलंकारपूर्ण भाषा इनके 'सौराष्ट्र' पत्र का एक विशेष लक्षण है।

इनका वेश श्री वल्लभभाई से मिलता है, पर अधिकतर सेठजी सफेद टोपी पहनते हैं और वल्लभभाई नहीं पहनते। इनमें गांभीर्य होगा पर उससे अधिक इनमें अपने को फैलाने की शक्ति है।

लालाजी भाई का व्यक्तित्व बिलकुल भिन्न प्रकार का है। ये महाशय पक्के राजनीतिज्ञ हैं, यह तो कोई भी कह सकता है। अपनी निर्धारित वस्तु को ये किसी के कहने से छोड़ नहीं देते। उदाहरणतः सन् १६२१ में जब प्रिंस ऑफ़ वेल्स भारतवर्ष आये तो प्रजा ने उनका बायकाट करने का निर्णय किया पर ये अपने मत से ही डटे रहे और प्रजा को सहयोग नहीं दिया।

इनका स्वभाव मीठा है, जहाँ तक हो सके किसी को अनावश्यक रूप से दुःख न पहुँचे, ऐसा है। ये मिजाज बिगाड़ना भी जानते होंगे, पर ऐसे प्रसंग ये बहुत थोड़े ही आने देते होंगे, जिससे इस शक्ति की आवश्यकता पड़े, पर प्रत्येक की चोटी अपने हाथ में रहे यह उन्हें अच्छा लगता है, पर इनकी सत्ताकांक्षा सहसा दूसरे भी समझ सकें ऐसी बात नहीं है।

ये स्वयं पक्के वैष्णव हैं और किसी के घर या ट्रेन में पानी तक नहीं पीते। बहुत से राजा-रजवाड़ों को उनसे संबंध रखना उपयोगी सिद्ध होता होगा। इनमें आदर्शमयता नहीं है, पर सत्कार्य करने में इन्हें श्रद्धा है और कोई बाधा न पड़ती हो तो प्रत्येक की सहायता करना इन्हें अच्छा लगता है।

धारा-सभा में इनका स्थान सम्मानपूर्ण है। ये वास्तव में प्रजा-पक्ष की ओर से बोलते हैं, पर सरकार पक्ष में भी इनकी अच्छी आवभगत है। आप को एलीशल नेशनलिस्ट—धारा-सभा में सबसे बड़ी प्रजापक्ष की

पार्टी—के प्रमुख हैं, इनकी वृत्ति 'माडरेट' पक्ष से मिलती-जुलती है।

डॉ० गील्डर बारडोली के लिए जो जाँच-समिति नियुक्त हुई थी, ये उसके एक सदस्य और मेडिकल प्रेक्टीशनर हैं। ये महोदय अपने काम से खूब पैसा कमाते हैं और यथाशक्ति दूसरी बातों में बहुत माथा नहीं मारते। स्वभाव से मीठे तथा धैर्यशील लगते हैं। इनकी पत्नी भी इनके काम में इनकी सहायता करती हैं। सम्मान देना तथा प्राप्त करना इनका आदर्श लगता है।

[२]

और ऐसे महत्वपूर्ण मनुष्य जहाँ जायें वहाँ प्रेस का भूत न हो, यह कैसे हो सकता है? इसलिए दादर तक तो ए० पी० का रिपोर्टर भी साथ था। दादर पर अहमदाबाद से महात्माजी से मंत्रणा करने के बाद आये हुए नरीमान और सफेद दाढ़ीवाले श्री हरीभाई अमीन को ट्रेन में सवार होते देखकर वह उतर पड़ा। वह विशेष रूप से इन्हीं से मिलने आया था। उन्हीं के साथ गालों में गड्ढा डालकर हँसने वाले स्वामी आनंद भी वल्लभभाई के प्रतिनिधि रूप में आये थे।

स्वामी आनंद के नाम से तो बहुत से परिचित होंगे पर यह वास्तव में कौन हैं इस विषय में बहुत थोड़े लोग ही जानते हैं। इन्हें स्वामी की उपाधि रामकृष्ण मिशन से संबंधित होने के कारण मिली है। पर ये भगवाँ कपड़े पहने हुए कोई बाबाजी होंगे यह समझने की भूल भी कदाचित् कोई कर बैठे। मैंने ऐसी भूल एक बार की थी। इनकी वेश-भूषा गांधीजी के सभी सिपाहियों की तरह शुद्ध सफेद खादी की है। ऐसा कहा जाता है कि इन्होंने यात्राएँ बहुत की हैं। चौबीस घंटे में चाहे जिस वख्त तैयार हो सकें ऐसे सबल तन और मन इनमें है। वल्लभभाई और गांधीजी की गुप्त मंत्रणाओं की ये तिजोरी रूप हैं। 'नवजीवन' के लिए इन्होंने रात-दिन चिंता और परिश्रम किया है। अनुवाद करने में इनकी कुशलता की प्रशंसा की जाती है और न

अधिक लम्बे और न बहुत ठिगने ऐसे शरीर पर जिस प्रकार समुद्र के सैकत तट पर चिह्न पड़ जाते हैं उसी प्रकार हास्य चिह्नों से अंकित मुख और हास्य की किरणें बिखेरने वाली दीपक जैसी दो आँखों से ये तुरन्त ही पहचाने जा सकें, ऐसे हैं।

श्री नरीमान का परिचय देने की कोई आवश्यकता ही नहीं। इनकी रात-दिन की प्रजा-सेवा और हारवे-नरीमान केस अभी तो ताजा है। इनके झुर्रियोंदार मुँह पर कठोरता और कोमलता दोनों लिखी हुई हैं। कठिनाइयों के सामने ये चट्टान की तरह अडिग और भावना के सामने ये बिलकुल कोमल बन जाते हैं। इनके संपर्क में रहनेवाले की निर्बलता नष्ट हो जाती है। इनकी प्रामाणिकता और विनोद शत्रुओं पर भी प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकती।

श्री हरीभाई अमीन इन दोनों से भिन्न प्रकार के दिखाई देते हैं। इनकी लंबी सफेद दाढ़ी और माथे पर सफेद बालों का जूड़ा और इनकी शुद्ध श्वेत पोशाक इनसे अपरिचित व्यक्ति को किसी संसार-त्यागी संन्यासी महात्मा का आभास हो सकता है। पर सूक्ष्म दृष्टि से देखनेवाले को इनका कोई भी अलंकार ये संसारी हैं ऐसा प्रकट किए बिना नहीं रह सकता। इनकी बातें और विनोद सुनने के बाद तो यह तुरन्त कहा जा सकता है कि ये भरुची हैं। भरुची जल्दबाजी भी इनमें है। इनके हृदय में यथाशक्ति सब की भलाई करने की आकांक्षा प्रबल रूप से है।

इन तीनों सज्जनों के आने से हमारा साथ बढ़ गया और हम बारडोली के विषय में बातें करते हुए आगे बढ़े। वास्तव में ट्रेन बढ़ी, हम नहीं, अथवा ट्रेन और हम सब आगे बढ़े।

रास्ते में खबर मिली कि प्रेसीडेंट की गैलरी के पास तो तीन दिन पहले ही दे दिये गये थे इसलिए मुझे जगह मिलना कठिन जान पड़ा। अतः बारह बजे ट्रेन से उतरते ही हम सीधे कौन्सिल हॉल की ओर गये। बात सच निकली इसलिए तुरन्त घर न जाकर 'विजिटर्स गैलरी

के टिकट ले कर बैठ जाने में ही बुद्धिमानी जान पड़ी। वहाँ जगह न मिलती तो 'गुजरात' के रिपोर्टर की तरह प्रेस गैलरी में बैठ जाने का विचार मन में आया था। जरा आनन्द भी आता पर वह सौभाग्य तो प्राप्त ही न हुआ।

पर एक बात मजे की हुई। मिसेज गिल्डर को अपनी जगह सौंपकर मुझे घर हो आने का मन हुआ और मैं वापस लौटी तो देखा सब दरवाजे बंद और मेरी जगह भर गई है। सायमन कमेटी के प्रस्ताव के सम्मान में उस दिन गोरे और काले सिपाहियों की एक छोटी-सी फौज वहाँ खड़ी कर दी गई थी और दो बजे बाद न तो कोई बाहर से आ सके और न बाहर जा सके ऐसी स्थिति कर दी गई थी और उसपर भी सिपाहियों का पहरा बैठा दिया गया था। सम्भव है, कालेज के लड़के और प्रेक्षक स्त्रियाँ विद्रोह कर दें तो फिर बेचारे सायमन प्रस्ताव का क्या हो? पर सौभाग्य से प्रेसीडेंट की गैलरी से तीन बजे दो तीन आदमी चले गये और मुझे जगह मिल गई।

[३]

मैं जब वहाँ पहुँची तो पहालाजानी बोल रहे थे। ये पहालाजानी सिंधी हैं और सिंध के प्रतिनिधि हैं। और बहुत से लीडरों में से ये भी एक लीडर ऑफ़ दी हाउस गिने जाते हैं। स्वभाव से अच्छे आदमी हैं। बोलना इनके जीवन की मुख्य आवश्यकता है। इनका झुकाव माडरेट पक्ष की ओर होगा पर एक्स्ट्रीमिस्टों का दृष्टिकोण भी कभी-कभी ग्रहण कर लेते हैं और सिक्खों जैसी दाढ़ी और स्नेहमयी मुखमुद्रा से ये आकर्षक लगते हैं।

इनके बाद जो उठे उनका पूरा नाम खानबहादुर शाहनवाज खाँ भुत्तो था। बड़ा लंबा-चौड़ा नाम है और अपने नाम को सार्थक करे ऐसा बोलते भी हैं। उनके भाषण का सारांश यह था कि हिन्दू मुसलमान आपस में कटे-मरते हैं और यह विषपूर्ण लड़ाई जब होती है तब दोनों पक्षों को

जितना अंग्रेजों में विश्वास होता है उतना अपने आस-पास के लोगों में नहीं होता, इसलिए अच्छा ही हुआ कि कमीशन ने किसी हिन्दुस्तानी को नहीं रक्खा। ये साहब कट्टर मुसलमान हैं और इनका वश चले तो ये संपूर्ण पृथ्वी को हिन्दू-विहीन कर दें। सरकार के अतिरिक्त किसी दूसरे को अपना मत देने की तो इन्होंने कसम खा ली है और इनके अनुयायी भी इनका ही अनुकरण करते हैं।

गैलरी में बैठे-बैठे खानबहादुर भुत्तो (भुट्टो? भुतो?) को सुनते हुए मुझे एक विचार आया। जब तक हिन्दुस्तान में भुत्तो, खरे और नूरमहम्मद रहते हैं तब तक स्वतंत्रता क्या कभी संभव है? और स्वतंत्रता मिले तो किसे मिलेगी? इन्हीं अकेलों को, हमें नहीं। आज भी जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली बात सत्य है। लघु-मत के नाम पर मुसलमानों को बहुमत वाले अलग प्रान्त चाहिए तथा अधिक सीट्स चाहिए और जहाँ हिन्दुओं का बहुमत हो वैसे प्रान्त अलग हो जायें तो मुसलमानों के प्रति अन्याय हो जाने का भय उठ खड़ा होता है। जब हिन्दुओं में से हिस्सा बटवाना हो तो "यूयं वयं, वयं यूयं" * हो जाता है और जब अपने को कुछ करना पड़े तो 'वयं वयं और यूयं यूयं' ‡ नीर-क्षीर की तरह अलग हो जाते हैं। सरकार को जो अपना मत दे, वह सरकार की प्रिय प्रजा और क्या कहा जा सकता है? 'राजा को अच्छी लगे वह रानी' नहीं तो भुत्तो, खुरो और नूरमहम्मद जैसे व्यक्तियों पर प्रजा की भावी निर्भर रहती?

अब अपनी कथा आगे बढ़ने दें।

श्री मरजबान —जामे जमशेद के अधिपति—ने इन भाई को ठीक

---

* 'तुम हम और हम तुम' अर्थात् हम तो एक ही हैं।

‡ 'हम हम और तुम तुम' अर्थात् हम और तुम बिलकुल अलग-अलग हैं।

जवाब दिया। इन्होंने कहा कि यदि हिन्दू और मुसलमान इतने नालायक हैं तो सारी कौन्सिल के लिये यूरोपियन सदस्यों को ही चुन लिया जाया करे तो इसमें क्या बुराई है? ये लोग हिन्दुस्तानियों की भलाई के लिए राज्य किया करेंगे। इनका दूसरा विरोध भारतवासियों को भंगी-चमार समझकर कमीशन से दूर रखने के संबंध में था।

गैलरी में मेरे पास बैठे हुए एक पारसी भाई ने मुझसे पूछा, 'ये ही सूरती मेंबर्स हैं क्या?'

इसी समय श्री भीमभाई दरवाजे से दाखिल हो रहे थे। उनकी ओर संकेत कर मैंने कहा, 'वह सूरती कीरमची पगड़ी पहिन कर दुपट्टा हिलाते चले आ रहे हैं। सूरत के ये बहुत बड़े आदमी हैं, दूसरे मि० शिवदासानी जो उस बेंच पर सफेद कोट पतलून में टेढ़ी टाई लगाये हुए बैठे हैं वे और तीसरे मि० दीक्षित यहाँ दिखायी नहीं देते।'

गुजरात के मेंबरों को और उसमें भी विशेषतया सूरत के इन तीन मेंबरों को गवर्नर ने इस समय बहुत दुखी कर डाला है। जिस बात में इनकी सलाह उसने पहले नहीं मानी उस बारडोली के बारे में समस्या बहुत उलझ गई और सारे गाँव का भार उसने इनके सिर पर डाल दिया और एकदम धमकी देते हुए गवर्नर ने भाषण दिया कि चौदह दिन में बारडोली का निर्णय यदि तुम न कर सके और बारडोली शरण में न आया तो मैं फिर सख्त कार्रवाई करूँगा। 'अरे भाई, ये जब तुझसे कहने आये थे और त्याग-पत्र दे दिया था, तब न तो तूने इनके साथ कोई फैसला किया और तेरे कर्मचारियों ने जब इतनी बात बढ़ा दी तो न तूने उनसे कुछ पूछा और न उनकी सलाह मानी और जब लड़नेवाले लड़ने के लिए और मरनेवाले मरने के लिए तैयार हो गये तो बेचारे सूरती मेंबरों के सिर पर गाँव भर का भार रखने की बात तुझे कहाँ से सूझी?' पर यह उससे कहे कौन? और इतने बड़े आदमी ने कहा इसलिए सूरती मेंबर्स भी सब भार अपने सिर पर समझकर फिरने

लगे। पर इन मेंबर्सों की कथा लंबी है। इनको भी खूब कसौटी पर कसा गया है और जो इन्होंने किया वह किसी से होता भी नहीं। इन्होंने बारडोली के 'सेटलमेंट' में यथाशक्ति जो परिश्रम किया उसकी प्रशंसा करने के शिष्टाचार का पालन करना हमारा धर्म है।

इस समय श्री मरजवान अपना भाषण समाप्त कर चुके थे और श्री हुसैनभाई बोल रहे थे। ये हुसैनभाई बंबई के हैं, जाति-भेद की भावना से रहित कुछ गिने-चुने मुसलमानों में से एक हैं; स्वराजिस्ट हैं, हारवे-नारीमान केस के समय श्री नारीमान की इन्होंने खूब सहायता की थी। इस समय भी इनका अभिप्राय प्रजापक्ष में, कमेटी नियुक्त न करने के पक्ष में था।

इसके बाद आये खाँसाहब मन्सुरी। आप अहमदाबाद के, देखने में मोटे, ठिगने और साँवले हैं। इन्होंने कमीशन के पक्ष में मत देने के लिए लिखा हुआ भाषण पढ़कर अपना दुःखदायक कर्तव्य समाप्त किया और उसके बाद श्री जाधव की पार्टी के कोई श्री नवल ने अब्राह्मणों को भी इसी मार्ग से जाना ठीक बतलाया।

श्री जे० बी० पिटीट का भाषण अच्छा खासा और ठीक था। इनके लिए कहा जाता है कि ये महाशय पंखे और आइस के बिना जीवित नहीं रह सकते। हो सकता है, पर कौन्सिल में भी ये गरम दल के प्रतिनिधि नहीं। गुजरात कदाचित् इन्हें जाइजी पिटीट के पति रूप में या मीठी बहेन पीटीट के मौसाजी के रूप में अधिक जानती होगी। बहुत अंशों में 'इन्डियन डेलीमेल' नामक पत्र इन्हीं की संपत्ति है। श्री नटराजन इसके अधिपति हैं। यह पत्र सुन्दर अक्षरों में छपता है और 'हेरल्ड' तथा 'क्रानीकल' तो इसके आगे गरीबों जैसे दिखाई देते हैं। परन्तु इसके लेख वास्तव में ऐसे होते हैं कि नरम से नरम दल वालों के गले उतरें अथवा अंग्रेजों के दृष्टिकोण से लिखे गये हों। हो सकता है, यह धनिकों का प्रतिनिधि भी हो।

[४]

पीर्टाट के बाद बोले शीवदासानी, प्रस्ताव था सायमन कमेटी का, परन्तु ये बोले वास्तव में बारडोली पर और उसके बाद बारी आई श्री स्वामीनारायण की।

श्री स्वामीनारायण को कौन नहीं जानता ? इनकी बोली और इनके बोलने की रीति, इनका वेश और इनके पहनने का ढंग, इनके विचार और उन्हें प्रदर्शित करने की रीति, ये सब कुछ कवि के शब्दों में अनोखे कहे जा सकते हैं। खेतिहर प्रदेश की संपूर्ण संस्कृति के आप प्रतीक समझे जाते हैं इससे अधिक परिचय यदि किसी को चाहिये तो वह एक बार गणित के प्रोफेसर थे और जब कालेज में थे तो नहाने की कोठरी की दीवारें इनकी गणित-भक्ति का परिचय देतीं। विचारों में ये गरम-दली हैं और आजकल कौन्सिल में स्वराज्य पक्ष के प्रतिनिधि रूप से हैं।

श्री स्वामीनारायण को मैंने पहले-पहल अहमदाबाद में जब वे विद्यापीठ के प्रोफेसर थे, तो देखा था। लंबे कोट में छिपी हुई खादी की छोटी ऊँची धोती पहने हुए मैं रोज उन्हें पुल पर से जाते देखती थी और कभी-कभी पुल पर विद्यार्थियों को एकत्रित कर भाषण भी देने लग जाते। किसी का कहना था कि प्रेमानंद की तरह उन्होंने भी स्वराज्य न मिले तब तक आठ दिन में एक ही बार हजामत बनवाने की प्रतिज्ञा कर ली है। यह बात बहुत वर्ष पहले की है। प्रोफेसर महोदय ने अपना लाल डंडा सरकार पर आजमाना जारी रक्खा—पर हमेशा की तरह जोर से नहीं—इसलिए इनके जैसे ही आये मीरमहम्मद बलोच (स्वराजिस्ट) ये साहब बैठने की जगह कितनी घेरें इस विषय में मौलाना शौकतअली के साथ भी स्पर्धा कर सकें, ऐसा शरीर और बल रखते हैं। इन्होंने हिन्दुस्तानी में शेरबाजी के साथ लिखकर लाया हुआ भाषण पढ़ना आरंभ किया और विनोदी वाक्यावलि के साथ पाक नसीहतें सरकार को देकर कौन्सिल को हँसी से मुखरित कर दिया।

कौन्सिल इस समय खूब रंग में थी और मुझे तो विश्वास था कि श्री सा० दादूभाई अवश्य इस समय सरकार की पीठ झाड़ने उठेंगे पर उसके बदले उठे श्री जोग। ये क्या बोले यह कुछ सुनाई ही नहीं दिया।

श्री दादूभाई कौन्सिल में एक जानने योग्य व्यक्ति हैं। बड़ी चित-कबरी मूँछें, सूखा हुआ शरीर और सफेद कोट तथा काली टोपी—यह इनकी हमेशा की वेश-भूषा है। धीरे बोलें, धीमे चलें और गिन-गिनकर अक्षर मुख से निकालें, पर रहते हैं सब बातों में सावधान। सभी बातों में प्रजापक्ष का साथ देनेवाले और सरकार की धूल झाड़ने का मौका मिले तो कभी भी न चूकनेवाले हैं।

एक बार बात करते-करते याद पड़ता है यूनीवर्सिटी बिल के बाद—उन्होंने श्री मुन्शी से जो कहा था वह अभी तक मुझे याद है। 'इस सरकार ने हमारी क्या समस्या हल की ? हम अलग-अलग कई डिवीजन चाहते थे उसकी बात अब तय होने पर आ गई तो भी इसने हमारे मत की क्या कदर की ?' सच बात है। सरकार को तो भेड़ों की धँसान चाहिये।

इनके विषय में इस स्थान पर अधिक नहीं लिखूँगी, क्योंकि यदि मैं कुछ लिखूँ भी तो कौन्सिल में स्त्रियों के विरुद्ध इन्होंने, मत देने की धमकी दी है। ऐसे काम के आदमी के मत के बिना स्त्रियों को रुकना पड़े यह तो कुछ ठीक नहीं जान पड़ता।

कौन्सिल का कार्य आगे बढ़ा। श्री नरीमान अच्छा खासा बोले। पर वास्तव में मजा तो तब आया जब सरकार द्वारा नियुक्त सभासद पर वसंतराव डाभोलकर बोले। इनके सौभाग्य से गवर्नर उस समय खास तौर से इनका भाषण सुनने के लिए मौजूद था और इससे इनको इतना जोश आ गया कि भारतवासियों के विरुद्ध इन्होंने इतनी कड़ी बात कह दी। कड़ी क्या इतनी कड़ी कि ऐसी तो अँग्रेज भी हमारे विषय में नहीं कहते। और कौन्सिलों के मेंबरों ने बीच-बीच में इनको चिढ़ाया भी खूब।

ऐसी मनोदशा वाले मनुष्य इस देश में यदि थोड़े से और हों तो स्वराज्य की आशा आकाश-कुसुमवत् समझना निस्संदेह सत्य है।

सिंध के मियाँ मि० नूरमहम्मद तो इस समय सरकार के साथ हों तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? ये तो हमेशा ही इसके साथ रहते हैं। केवल सरकार इनकी सेवाओं की कोई कदर न करके इन्हें जलाती रहती है तो कभी-कभी गुस्से में आकर प्रजापक्ष में अपना मत दे देते हैं। इन सेशन्स में भी मौलवी रफीउद्दीन अहमद प्रधान बनकर सम्मान पा गये और ये रह गये इसलिए इन्होंने पहली बार अपना पानी दिखाने के लिए फ्रेगमेंटेशन बिल के समय प्रजापक्ष में वोट दिया, परन्तु इन जैसों का सरकार से अधिक समय तक रूठे रहने में काम कैसे चल सकता है !

फिर आये बोलेमहाराज—सरकार द्वारा नियुक्त तथा डिप्रेस्ड क्लास के प्रतिनिधि। अधिक परिचय चाहिए तो सायमन को स्टेशन पर 'Father, forgive them' कहने वाले। हाँ, इन्होंने भाषण में अवश्य ज़ोर-शोर से कहा कि नहीं मैं 'Father forgive them' कह कर नहीं आया तो किसी ने कहा कि 'तो क्या mothr कह आये ?'

श्री बोले के भाषण में हिंदुओं के प्रति विरोध स्पष्ट दिखाई दे रहा था। इन्होंने मुक्ति का एक ही द्वार बताया और वह था सायमन के साथ सहयोग करने का; और वह उन्होंने किया भी। परिणामस्वरूप वे कमेटी में नियुक्त भी किये गये। ऐसे चूले, हाड़-चाम के बने दुबले-पतले, बोले महाराज कमेटी में बैठेंगे तो लंबे, ऊँचे-पूरे अंग्रेजों की दृष्टि में कहीं रह न जायँ, यह भय बना रहता है।

बोले के बाद डॉ० सोलंकी (Depresed class) और केरवाड़ के ठाकुर ने प्रस्ताव का समर्थन किया और कौन्सिल दूसरे दिन के लिए स्थगित की गई।

[५]

सायमन कमेटी का प्रस्ताव धारा-सभा में दूसरे दिन भी चला और

उसके दूसरे दिन की बैठक के समय भी प्रेक्षकों की गैलरियाँ पूरी तरह भर गई थीं।

शुरुआत में लाल पोशाकवाले चोबदारों के बीच चलते हुए देहलवी साहब आये और अपने आसन पर बड़े रोब के साथ बैठे और सभा का कार्यक्रम आरंभ किया।

सबसे पहले प्रेसीडेन्ट साहब ने उठकर श्री चिकोड़ी (अब्राह्मण, बेलगाँव) का धारा-सभा के अेडजर्नमेंट मोशन का प्रस्ताव निकाल दिया। यह प्रस्ताव बारडोली पर गवर्नर ने जो भाषण दिया था, उसके लिए ही रखा गया था और उसमें गवर्नर के भाषण पर वाद-विवाद करने की स्वतंत्रता माँगी थी। देहलवी साहब ऐसी स्वतंत्रता क्यों देने लगे ?

मि० देहलवी बोल-चाल में तथा स्वभाव में बहुत मीठे हैं। मिठास भी बड़ी पक्की मिठास। सबको अच्छा लगे ऐसा बोलना यह कला इन्होंने बहुत अच्छे ढंग से साध ली है।

ये एक बार मिनिस्टर भी रह चुके हैं। निंदक उनकी उस समय की कार्रवाही की ओर शंका की दृष्टि से संकेत करते हैं, पर इसमें कुछ सत्य नहीं। पाक कुरान शरीफ में पैगम्बर मुहम्मद के फरमानों का वे बहुधा अक्षरशः पालन करते हैं।

आज की बैठक में अधिकतर भाषण दो तरह के हुए थे। कुछ तो तोते की तरह सिखाये हुए थे और अधिकतर लिखकर तैयार किये गये आफिशियल ब्लाक के और मुसलमानों तथा अब्राह्मणों के, और दूसरी ओर से परिणाम पहले से ही जाना हुआ होने पर भी अपनी छोटी-मोटी आवाज सुनाने तथा प्रोटेस्ट के उल्लेख की आकांक्षावाले प्रजाकीय सदस्यों में सबसे पहला शंखनाद अब्दुल-लतीफ-हाजी-हजरत-खाँ ने किया और एईमेन ने उनके स्वर में स्वर मिलाया।

फिर रा० ब० काले—स्वभाव से कौन जाने पर विचारों में माडरेट-उठे और उन्होंने अपना विरोधी मत प्रदर्शित किया। श्री काले, ओ०

मी० प्रधान (मिनिस्टर) के बहुत बड़े मित्र होते हैं, ऐसा सुना है।

खादी की मोटी धोती और खादी की सफेद टोपी पहने हुए श्री वामन मुकादम उठे और प्रेसीडेन्ट को नमस्कार कर बाहर चले गये। 'अरे! ये कौन हैं? अरे, ये कौन हैं?' मेरे पास बैठी हुई एक बहिन ने (या भाई ने ठीक याद नहीं) पूछा।

'उनका नाम वामन मुकादम है। वे गोधरा के रहनेवाले हैं।' मैंने कहा।

ये वामन मुकादम—पहले-पहल बंबई में मेरे यहाँ एक बार भोजन पर आये थे तब मैंने उनको देखा था और सबसे पहले मेरा ध्यान इनकी—हमलोगों में बहुत कम देखने में आती है—सुन्दर उँगलियों की ओर गया था। इनमें विनोदपन भी खूब है और बहुत तरह से उपयोगी बन सके ऐसी इनमें शक्ति है, पर इन्होंने अपनी उपयोगिता अपने प्रांत के और गाँव के राजनीतिक षड्यंत्रों के कीचड़ में फँसकर बहुत अंशों में कम कर दी है। श्री हरीलाल देसाई के ये गहरे मित्र हैं। सेशन्स में बहुधा वे इन्हीं के घर ठहरते हैं और यथाशक्ति इनकी मदद भी करते हैं। श्री जयकर जब धारा-सभा में थे तब इन्होंने पार्टी के 'व्हीप' रूप में उनकी खूब मदद की थी।

सोचती हूँ कि तब तक इन्होंने एक्सीट्रीमिस्ट के रूप में राजकीय जीवन आरंभ कर दिया था। हिमालय से गंगा पृथ्वी पर आये उसी प्रकार वे धीरे-धीरे, अधिक और अधिक माडरेट होते गये होंगे? 'He is good as a friend; formidable as an enemy.' इसका पहला आधा वाक्य उनके लिए उचित है।

श्री मुकादम के वर्णन में मि० स्यु का भाषण रह गया। इन्होंने भारत के शुभचिंतक या अधिकारी के तौर से नहीं, बल्कि व्यक्तिगत तौर से बिल का समर्थन किया। समर्थन करते ही, क्योंकि जैसे इनका विरोध

करना हमारा धर्म है वैसे ही इनका समर्थन करना भी धर्म है ही, इस धर्म का पालन करें तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात नहीं ?

र्‌यु के बाद नंबर आया श्री मुन्शी का। टाइम्स की आँखों में खटके ऐसा भाषण इन्होंने दिया और अधिकारी वर्ग की आँखें भी जरा ऊपर चढ़ गईं। इनका भाषण मुझे तो सबसे सुन्दर लगता ही। परन्तु इस विषय में लिखते हुए मुझे पक्षपाती समझे जाने का भय लगता है।

मुन्शी के बाद सिंध के जैरामदास उठे और वह भी अच्छे बोले। इनके भाषण ने मि० गुलामहुसैन की धूल झाड़ दी, और टाइम्स के कथनानुसार सर गुलामहुसैन को Apdoplectic fit आ गया था। पर यह बात फिर होगी। इससे पहले जैरामदास का परिचय देना यहाँ आवश्यक है।

धारा्सभा में गोरे, लंबे, विशाल डील-डौलवाले खादी के कोट-पतलून में सुसज्जित, तुरन्त ध्यान आकर्षित करे ऐसे किसी आदमी को यदि आप प्रजापक्ष की बेंच पर बैठा हुआ देखें तो उसका नाम जैरामदास दौलतराम है, यह आपको समझ लेना चाहिए। बोलने की शक्ति इनमें अच्छी है और जब ये बोलते हैं तो सभी इन्हें ध्यानपूर्वक सुनते भी हैं।

श्री जैरामदास बहुत अनुभवी, गंभीर और चतुर हैं। इनका स्वदेश-प्रेम बहुत शक्तिशाली है और वैसा ही विस्तृत अध्ययन इन्होंने हिन्दू-मुस्लिम प्रश्नों का किया है। हिन्दुओं के साथ जहाँ-जहाँ और जब-जब अन्याय होता है तो उसे देखकर इनका हृदय जल उठता है और धारा-सभा में भी 'लाडले बेटे' की तरह पाले जानेवाले मुसलमान भाई जब हिंदुओं को दबाने का प्रयत्न करते हैं तो ये उनकी धृष्टता को प्रकट करने से कभी नहीं चूकते।

श्री जैरामदास को स्वयं सत्ता लेना अच्छा नहीं लगता, पर सत्तावालों के साथ क्रीड़ा करने का शौक उन्हें अवश्य होगा। शतरंज के मोहरों की तरह मनुष्यों को व्यवस्थित करना इन्हें अच्छा लगता है, पर इनकी

संस्कारिता इनको कभी गंदे पानी में नहीं गिरने देती। मोती की खोज में वे गहरे पानी में उतरते तो हैं, पर प्रत्येक पानी में मोती थोड़े ही निकलते हैं ?

सिंध के विशेष जलवायु में इनके शरीर और मन का निर्माण हुआ है और सिंध के दृष्टिकोण से ही वे सब प्रश्नों पर मनन करते हैं। सिंधी मुसलमानों ने जो विषमय जातिभेद धारा-सभा में ला दिया है, उसका प्रत्याघात इनके मन पर हुआ है और जाने या अनजाने में जैसे उनमें भी जाति-भावना आती गई है।

परन्तु यह सब कुछ होने पर भी ये सरस और संस्कारी व्यक्ति हैं।

[६]

जैरामदास दौलतराम के बोलने के बाद सर गुलामहुसेन उठे। शांत और मीठा बोलनेवाले तथा एक समय के उस्ताद मिनिस्टर महोदय ने एक्जिक्युटिव कौन्सिलर के पद से पहला भाषण देकर अपने वास्तविक स्वभाव का परिचय दे दिया। टाइम्स के लिखे अनुसार इन्हें 'वात' का दौरा हो आया था और जब सब की चिंता समाप्त हो गई तो अपना शुद्ध मुसलमानी रूप-प्रदर्शन करने का मौका इन्हें मिला। इन्होंने टेबल पर घूँसे पछाड़े, अपने स्थूल शरीर के कारण बोलते-बोलते साँस चढ़ आई, मुँह में से थूक उड़ने लगा और इनकी छोटी-छोटी आँखों से इस्लामी चिनगारियाँ विशेषतः जैरामदास की ओर और सामान्य रीति से सभी हिंदुओं की ओर उड़ीं। परन्तु इस महान् घटना का मूल्य किसी की समझ में नहीं आया। कितने ही बाधक सदस्यों ने बीच में बोलने का महापाप किया और अंत में 'तुम मजाक करोगे तो उससे मैं डरनेवाला नहीं' इनको कहना ही पड़ा। पर ऐसे कठिन समय पर प्रेसीडेन्ट दहेलवी इनकी गौरव की रक्षा के लिए दौड़े और इनके प्रति कैसा सम्मान प्रदर्शित करना चाहिए इसका पाठ सब ऑनरेबिल मेंबरों को पढ़ाया

और अंत में यह महान् भाषण समाप्त कर सर गुलामहुसैन बेंच पर धब्ब से बैठ गये।

तुरन्त खड़े हुए मियाँ रफ़ीउद्दीन अहमद। नये मिनिस्टर—थोड़े समय में ही मिनिस्टर पद इन्हें खटकने लगता है। कहा जाता है कि किसी समय ये रानी विक्टोरिया के मौलवी थे। अंग्रेजी माई-बापों के प्रति इनका सद्भाव—अतिभाव—का उत्साह बहुत समय से ज्ञात है, और उस भाव की कदर सरकार ने इनको मिनिस्टर पद देकर की है। इनके मस्तिष्क में मनुष्य जाति के लिए तीन खाने हैं। एक गोरी चमड़ी-वाले महापुरुषों के जिनके प्रति इनके हृदय में अत्यंत मान है—दूसरे पैगंबर मुहम्मद साहब के अनुयायी—पाक मुसलमान के और तीसरा जिनके लिए इस दुनिया में कोई स्थान न होना चाहिए ऐसे काफिरों के लिए। बेचारों का जन्म यदि इस युग में—कुसमय में—होने के बदले मुगलों के राज्य में हुआ होता तो एक-एक काफिर को ये मुसलमान बनाने का पुण्योपार्जन कर पाते।

शतरंज के शौकीनों की तरह ये धारा-सभा के शौकीन थे और हैं, और यथाशक्ति एक दिन भी गैरहाजिर न रहने के संकल्प का पालन करते हैं। ऐसा महान् मिनिस्टर बोलने के लिए खड़ा हो तो वह जातीय दृष्टिकोण के अतिरिक्त और क्या बोले ? पर 'एवन साहब' बोले तो कुछ सदस्यों ने गड़बड़ की। दहेलवी मियाँ को इनकी सहायता करनी पड़ी।

रफ़ीउद्दीन अहमद के बाद बालुभाई देसाई खड़े हुए। बालुभाई स्वभाव से तीखे और कड़ुवे हैं यह सब मानते हैं, पर हैं स्वराजिस्ट। धारा-सभा में बैठने लायक सहयोग देकर बाकी पूर्ण असहयोग करना इनकी नीति है। जैसे ही ये बोलने को उठे कि 'गांधीजी बारडोली गये' यह खबर गैलरी में पास बैठे हुए पड़ोसी की ओर से सुनकर मैं अखबार लेने के लिए नीचे चल दी।

लॉबी में इस समय थोड़े से सदस्य चाय पी रहे थे, कुछ घूम रहे थे। मिलने पर प्रत्येक यही कहता था कि अब प्रस्ताव का भविष्य Foregone conclusion है। कमेटी नियुक्त करने या सायमन-सहयोग की बातें करना व्यर्थ है।

इस समय बेचारे जैरामदास (जैरामदास दौलतराम नहीं, दादुभाई के भाई) टेनिस खेलने जाने का विचार कर रहे हों इस प्रकार मस्ती में घूम रहे थे। इन्होंने मुझे कहीं से 'गांधीजी बारडोली गये' की खबरवाला अखबार ला दिया और फिर चले गये।

ये जैरामदास नडिआद के जमींदार हैं और खेल के—विशेषतः टेनिस के—खूब शौकीन हैं। देखने में अपटूडेट, पर स्वभाव से बहुत अच्छे हैं। जमींदार होने के कारण इन्हें हर समय प्रजापक्ष में रहना मुश्किल हो जाता है, पर जहाँ तक हो सकता है, ये अपना मत प्रजापक्ष में देते हैं और अंत में यदि कुछ न हो सके तो तटस्थ रहने का प्रयत्न करते हैं।

इस समय ऑनरेबल सर चुन्नीलाल महेता चिंतातुर मुख से बाहर आये और एक टेबल पर बैठे हुए कितने ही महाराष्ट्रीय सदस्यों का ध्यान बारडोली के झगड़े की ओर खींचा।

श्री वल्लभभाई को गुजरात के मेंबरों की ओर से श्री दादुभाई ने उस दिन तार दे दिया था। सर चुन्नीलाल महेता बारडोली समाधान के लिए बहुत प्रयत्नशील थे। इनकी उस दिन की चिंता बहुत ही सकारण थी। सर चुन्नीलाल महेता का परिचय इस स्थान पर देना—बारडोली सत्याग्रह में इनका क्या भाग रहा है, यह देखते हुए—सकारण है। फिर भी जो इनको न जानते हों ऐसे बहुत कम गुजराती होंगे यह बात भी मैं जानती हूँ। सब जानते हैं कि सर चुन्नीलाल महेता अधिकारी पद पर न होते तो गुजरात रेल-संकट के समय एक करोड़ रुपया कभी भी न मिलता और बारडोली प्रकरण में भी श्री हरिलाल देसाई के सिर

पर सुलह का ताज पहिनाने की इनके मित्रों ने बहुत कोशिश की और बाद में यह समाधान इन्होंने ही किया। इस प्रकार जान-समाज को विश्वास दिलाने का प्रयत्न करते हुए झूठा इतिहास रचना आरंभ किया, फिर भी समाधानी का श्रेय तो सर चुन्नीलाल को ही है। इस जमाने में उन्हें आवश्यक प्रचार करना न आया और फिर अपने पद पर उतरे तो जिस प्रकार एस्क्वीथ के विषय में कहा जाता है कि जब वह प्रधान पद से उतरा तो इतने बड़े आदमी के जाने पर एक पर के गिरने जितनी भी आवाज नहीं हुई, उसी प्रकार लगभग इनके साथ भी हुआ।

परन्तु उसमें इनका बहुत दोष नहीं। बंबई सरकार के प्रधान मंडल में अंदर ही अंदर इतनी ईर्ष्या है—और उसमें भी जो व्यक्ति दूसरों से जरा श्रेष्ठ लगता हो तो उसे नीचे गिराने का इतना प्रयत्न होता है—कि इनके सहयोगी का संबोधन प्रयोग में लाऊँ तो इस 'चुनिया' के लिए ही थोड़ा बहुत स्नेह यदि दे सकें तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं।

सर चुन्नीलाल महेता चले गये तो किसी ने कहा कि "लालजीभाई गुलामहुसैन की धूल झाड़ रहे हैं।" इसलिये मैं चाय पीने का विचार स्थगित कर तुरन्त ही इनको सुनने ऊपर गई। लालजीभाई ने गुलामहुसैन को खूब फटकारा, पर मैं जरा देर में पहुँची इसलिये मैंने पूरा भाषण नहीं सुना।

[७]

चाय के बाद उठे, 'भज मिनिस्टर पद' का सतत जप करनेवाले जाधव महाराज। एक बार वे शिक्षा-विभाग के प्रधान थे और ब्राह्मण-अब्राह्मण की छड़ी उन्होंने वहाँ खूब घुमायी थी। उस पद से हटने पर भी इस पद का मोह इन्हें अभी तक नहीं छूटा और बिल्ली जिस प्रकार दूध के कटोरे की ओर निगाह गड़ाये रहे उसी प्रकार ये भी इस पद के लिए ध्यानस्थ हो बैठे हैं। हरिलालभाई खिसकें तो तुरन्त उसे झपट

लेने की इनकी तैयारी है। इस समय इनकी अपेक्षा मौलवी रफीउद्दीन सरकार को बहुत पसंद आये इसलिए इन्हें बहुत बुरा लगा। किन्तु यह समय नाराजगी दिखाने का नहीं है यह अच्छी तरह समझते हैं और दूसरे कोएलीशन नेशनलिस्ट पार्टी ने दो मिनिस्टरों को धमकी दी थी, इनमें से कोई तो जायेगा ही ऐसी इनकी आशा है इसलिए सायमन के पक्ष में इन्होंने भी अपनी राय दी।

इस समय की सेशन्स में दूसरी एक बात इनके विषय में जानने योग्य है। अवश्य ही इस बात का इनसे संबंध नहीं, फिर भी स्त्रियों की वरासत का अधिकार छीन लेने का बिल इन महाशय ने ही पेश किया था और स्त्रियों को 'बुद्धिहीन', दूसरे के कहे अनुसार चलनेवाली ऐसे कई विशेषणों का प्रयोग किया था—वे सब तो मुझे याद नहीं, पर स्त्रियों को भविष्य में इनसे सचेत तो रहना ही चाहिए। समस्त स्त्री जाति के प्रति जिसका ऐसा अभिप्राय हो उसकी ओर से स्त्री-प्रगति की कोई दूसरी आशा तो क्या की जा सकती है? सौभाग्य से यह बिल सभी सदस्यों को ऐसा हास्यास्पद लगा कि किसी ने इसका समर्थन ही नहीं किया और परिणामस्वरूप इनको यह लौटा लेना पड़ा।

श्री जाधव के बाद एलीसन, एन्डरसन 'Natural leader' सरदार मजमूदार, इत्यादि तथा दूसरे कोई अब्राह्मण बोले। अब तो बड़ा बुरा लग रहा था। पर अंत में घंटी बजी और वोटिंग शुरू हुआ।

मत गिनने पर…६४…विरुद्ध ४० मत से कमेटी नियुक्त करने का प्रस्ताव पास हो गया।

भाग तीसरा

सर चिमनलाल सीतलवाड़

मनुष्य में बुद्धि अधिक हो और एक के बाद एक सत्ता की सीढ़ियाँ चढ़ता जाय तो दुनिया की नजर में उसका जीवन सफल समझा जाता है। पर भावनारहित बुद्धि संसार की तथाकथित सफलता के पार अधिक नहीं जाती और सांसारी व्यक्ति विजय की चोटी पर अंत तक रह भी नहीं सकता। सर चिमनलाल सीतलवाड़ इस कथन के जीवित उदाहरण हैं।

सर चिमनलाल, सर फीरोजशाह मेहता की राजनीतिक पाठशाला में लिख-पढ़कर बड़े हुए हैं, और उस समय के संस्कारों की छाप इन पर इतनी अधिक है कि उसके पार ये देख ही नहीं सकते। इनके समय का राजनीतिक जीवन अर्थात् प्रार्थना-पत्रों की परंपरा; सरकार कोई गलत कानून चलाये तो उसके लिए प्रार्थना-पत्र; थोड़े अधिकार का टुकड़ा चाहते हों तो उसके लिए प्रार्थना-पत्र; प्रजा के दुःखों का अंत करना हो तो उसके लिए प्रार्थना-पत्र और देश में या परदेश में भारत-वासियों का सम्मान लूटा जा रहा हो तो उसके लिए भी प्रार्थना-पत्र। उस समय की इंडियन नेशनल कांग्रेस भी प्रस्ताव पास करने तथा प्रार्थना-पत्रों का विवरण बनाने के अतिरिक्त और कुछ न करती थी। आज सन् १९३० में भी सर चिमनलाल अभी इस प्रार्थना-पत्र वाली मनोदशा से मुक्त नहीं हुए। हर तीसरे दिन वायसराय या गवर्नर या भारत के मंत्री पर उनके अभिप्राय और प्रार्थना-पत्रों के विवरण अखबारों में छपे हुए हम पढ़ते हैं। इनके मन हिन्दुस्तान का स्वराज्य लेने का (नहीं, मैं भूली डोमिनियन

स्टेट्स से एक कदम आगे बढ़ना भी यह अस्वीकार करते हैं।) यह कान्स्टीट्यूशनल मेथड है। कदाचित् ये अरजियाँ श्री विट्ठलभाई के कहने के अनुसार 'ऐसा न हो रह जायँ' इस डर से भी इतनी जल्दी-जल्दी निकालते हों, या कदाचित् इतनी गति से बढ़ती हुई दुनिया इनको बिलकुल भूल ही न जाय यह डर भी लगता हो। कुछ भी हो, पर इनके अभिप्राय और सरकार को दिए हुए तार प्रजा मोटे अक्षरों में लगभग हर तीसरे दिन छपे हुए देखती है। पढ़ती है कि नहीं यह दूसरी बात है।

इसका कारण यह भी हो सकता है कि चिमनलाल एक अच्छे धाराशास्त्री हैं और वकालत करते-करते इनका मस्तिष्क भी एक तरफी हो गया है। हाईकोर्ट में चौबीसों घंटे अर्जी लिखना तथा अपना एक तरफी दृष्टिकोण विरोधी के गले में उतारना यह इनका जीवनभर का व्यवसाय है। हाईकोर्ट में इनका यह व्यवसाय बहुत सुन्दर चलता है, क्योंकि तर्क करने में भी ये बहुत कुशल हैं और दूसरा कारण यह है कि हाईकोर्ट में न्याय नहीं मिलता, बल्कि पैसे और बुद्धि के बैर बेचे जाते हैं। इन्होंने भूल यह की कि ये वकील की मनोदशा लेकर ही राजनीतिक क्षेत्र में उतरे। वहाँ यदि धाराशास्त्री की बुद्धि की सहायता लेकर भारत-माता के भविष्य को इन्होंने भावना की दृष्टि से देखा होता, तो बंबई प्रांत में गांधीजी के बाद आज दूसरा स्थान इनका होता। परन्तु 'होता' और 'तो' निकालना कोई आसान काम थोड़े ही है?

हाय! भविष्य के इतिहास में अमर हो जाते ऐसे कितने ही अवसर इन्हें मिले पर इन्होंने गँवा दिये! फीरोजशाह जैसे नेता की छत्रछाया में इन्होंने जीवन आरंभ किया और बंबई के राजनीतिक जीवन में इन्होंने बहुत वर्षों तक राज्य भोगा, पर उस समय न तो इन्होंने प्रजा को आकर्षित किया और न ही भारत के भविष्य को एक कदम आगे बढ़ाया। गवर्नर की धारा-सभा में पाँच साल इन्होंने एकजीक्यूटिव कौन्सिल में बिताये और प्रजा के सिर पर लायड बैरेज और बेकबे की गठरियाँ रक्खी गई

इनके समय में, इनके जानते हुए और इनकी सहायता से। आज तक इन दो विषयों में बंबई प्रांत का करोड़ों रुपया कहाँ जाता रहा यह किसी को खबर नहीं।

और बंबई यूनिवर्सिटी के वाइस चान्सलर के पद पर इन्होंने तेरह-तेरह वर्ष तक राज्य किया—और परिणाम? परिणाम यही कि यूनिवर्सिटी चली और इन्होंने पैसा बचाया। जहाँ लाखों मनुष्य ज्ञान लेने आते हों वहाँ यूनीवर्सिटी जैसी शिक्षण संस्था व्यवसाय के सिद्धांत पर चले और पैसा बचाय यह बात कहाँ तक ठीक है? बंगाल में एक आसुतोष मुकर्जी ने वाइस चान्सलर की तरह यूनिवर्सिटी शिक्षा की पूरी दिशा ही बदल डाली और घर-घर, गाँव-गाँव इन्होंने ज्ञान-प्रदीप का यथाशक्ति प्रकाश फैलाया। हाँ, कदाचित् बंगाल की यूनिवर्सिटी इतनी पैसे वाली नहीं हुई, उसका प्रदेश विस्तृत होता गया और पैसे की कमी भी पड़ती गई। पर इस देश में शिक्षा के लिए सरकार और प्रजा के पास से अधिक से अधिक पैसा न ले सके वह वाइस चान्सलर किस काम का? यूनिवर्सिटी केवल थोड़े से लड़के-लड़कियों के पास करने का कारखाना नहीं, यह तो प्रजा का ज्ञान-मंदिर है; और वाइस चान्सलर उसका मुख्य पुजारी है। इस मंदिर से प्रजा का अधिक से अधिक भाग अपना मुक्ति-मंदिर प्रकाशित करने के लिए यदि ज्ञान-दीपक न जला सके तो इस मंदिर की महत्ता कैसी? सर चिमनलाल में बुद्धि है पर भविष्य में दृष्टि गड़ाने की शक्ति नहीं। प्रतिदिन का पुराना काम ये अच्छा करना जानते हैं; नवीन काम आरंभ करना नहीं जानते और इसी कारण बंबई प्रान्त को शिक्षा की दिशा में आगे बढ़ाने के लिए इन्होंने वाइस चान्सलर रूप में कोई भी प्रभावशाली कदम नहीं उठाया। जो थोड़ा-बहुत हुआ भी हो तो उसका यश तो वर्षों से इस दिशा में काम करने वाले इधर-उधर के व्यक्तियों का है।

और जब ये इस पद से अपदस्थ हुए तो बंबई सरकार ने नयी

पसंदगी इनसे भी गिरती हुई की, इसलिए लोगों को विशेष प्रसन्नता का कारण कोई नहीं मिला। बंबई सरकार के यहाँ तो मनुष्यों का दिवाला है ! बंबई सरकार की कौन्सिल, बंबई सरकार के प्रधान और बंबई सरकार द्वारा नियुक्त वाइस चान्सलर इस कथन के प्रत्यक्ष समर्थन हैं।

और सरकार को प्रसन्न करने के इतने-इतने अभिप्राय तथा इन्टर-व्यूज होने पर भी सरकार के यहाँ उनका क्या सम्मान है ? सरकार को इस समय जिसे अंग्रेजी में Window dressing कहते हैं, करने के लिये थोड़े माडरेटों की जरूरत है परन्तु The man who can't deliver the goods has no value in their eyes. और सर चिमनलाल के अभिप्रायों के पीछे इनकी जाति के अतिरिक्त या चार-पाँच सर कावसजी और जहाँगीर पीटीट जैसे माडरेटों के और किसका बल है ? राउंडटेबिल कान्फ्रेंस में जाकर ये कुछ भी कर आयें तो इनकी स्वीकृत बातों को स्वीकार करने के लिये हिन्दुस्तान का आज एक भी मनुष्य तैयार है ? डोमिनियन स्टेट्स या इन्डेपेंडेंस आयेगी तो अत्याचारों के नीचे पिसे हुए लोगों के खून से आयेगी, न कि सर चिमनलाल सीतलवाड़ के इंटरव्युज से।

सर चिमनलाल से आज के लोगों की मनोदशा नहीं समझी जाती। इन्हें लोगों के आन्दोलन में तूफान के अतिरिक्त और कुछ दिखाई ही नहीं देता। प्रजा के हृदय में अन्यायों के विरुद्ध जो आग जलती है उसके कारणों में वे जान-बूझकर गहरा उतरना नहीं चाहते। पर सच बात तो यह है कि सर चिमनलाल में हृदय की अपेक्षा मस्तिष्क बहुत विशाल है। वे स्वयं सुख में पले, सरकारी ओहदों पर रहे, इसलिए हजारों युवक—जो यदि दूसरे देशों में पैदा हुए होते तो देश के और राज्य के आभूषण होते—आज इस देश में अवसर न मिलने के कारण बेकार सड़ते हैं और मरते हैं, यह सूर्य जैसी प्रत्यक्ष बात भी ये नहीं देख सकते। इनके पास दूसरे का दुःख समझने वाला हृदय नहीं; इनमें ब्रिटिश

एंम्पायर की भव्यता समझने का मस्तिष्क है और इनकी बुद्धि सदा ही इस भव्यता की तारीफ किया करती है।

सर चिमनलाल में किसी को मित्र बनाने की शक्ति बहुत कम है। ये अपने हृदय में किसी को जगह देते नहीं और किसी के हृदय में इनके लिए जगह है नहीं। इनका स्वभाव मौजीला है और मजा करना इनको अच्छा लगता है। पर इनके अंतःकारण का अहंकार केवल एक क्षण अतिरिक्त अधिक देर तक नहीं टिक पाता। इनकी बुद्धि के प्रति बहुतों के हृदय में सम्मान है; धाराशास्त्री की तरह कानून की गुत्थी सुलझाने में इनकी शक्ति के लिए भी दो मत नहीं; इनका बात करने का ढंग अच्छा है और उसमें हमेशा विविधता रहती है। इनकी आनन्दोत्पादक संगति में ज्ञान और आनंद दोनों मिले बिना नहीं रहते।

परन्तु इतना होने पर भी इनमें और सामान्य मनुष्यों के बीच एक बड़ी दीवार है। इनका अस्पर्श्य और अलग रहनेवाला स्वभाव केवल सम्मान का अधिकारी है, प्रेम का नहीं।

सर चिमनलाल व्यावहारिक दुनिया में चालबाज समझे जाते हैं। किसी के सुख-दुःख का इनके बर्फ जैसे मस्तिष्क पर कदाचित् ही स्पर्श होता हो और फिर भी ये हृदयहीन हैं, यह नहीं कहा जा सकता। और यह हृदय आसानी से किसी के सामने खुल सके यह बात भी नहीं है। जन्म भर अलग रहने के संस्कारों में पली हुई इनकी दूर रहने की आदत आज किसीको इनका मित्र हो जाने दे, यह सम्भव नहीं। युवावस्था में और सत्ता के शिखर पर होने से कदाचित् मित्रों की आवश्यकता न पड़ी हो। आज बुढ़ापे में—जीवन की संध्या के धुँधले प्रकाश में—इनको बात करने के लिए, अपने को समझ सके ऐसे किसी मित्र की आवश्यकता इन्हें न पड़ती होगी। पड़नी चाहिये, यह मैं मानती हूँ। और अपने अंतःकरण का अकेलापन दूर करने के लिए सर चिमनलाल ने जीवन भर जो नहीं किया वह आज कर रहे हैं। वे

प्रत्येक शनिवार को रेसेस में जाते हैं, खाने-पीने पर मित्रों को निमंत्रित करते हैं। दुनिया के प्रति दिखाई देनेवाला निर्वेद इन्होंने थोड़ा-बहुत उतार डाला है। लोग इनमें केवल सर चिमनलाल के नवीन परिवर्तन के दर्शन करते हैं। मुझे इनमें केवल मानव-हृदय की मैत्री की खोज के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं देता।

जितनी आसानी से सर चिमनलाल पैसा कमा सकते हैं उतनी ही आसानी से खर्च भी कर सकते हैं या नहीं यह मेरे ज्ञान के बाहर की बात है। पर ऊँची-नीची तो इन्होंने भी देखी है और इनके अतिरिक्त कोई दूसरा मनुष्य हो तो हिम्मत हार जाय, ऐसी गिरी हुई दशा के विरुद्ध भी बुढ़ापे में इन्होंने जिस बहादुरी से लड़ाई लड़ी है उसके लिए प्रशंसा के सिवाय और क्या कहा जा सकता ?

इनका जीवन उज्ज्वल हो सकता है, पर महान् नहीं। महान् होने के इनमें सभी लक्षण थे; केवल इनकी इच्छा ही नहीं थी। केवल इसी उदासीनता के कारण इतनी सुन्दर सामग्री योंही व्यर्थ नष्ट हो गई। अनंत काल के पथ पर इनके कदम पड़े तो क्या—न पड़े तो भी क्या !

आर्थर रोड जेल, ता० २६-७-३०

श्री एम० आर० जयकर

हिन्दुस्तान के किसी दूसरे प्रांत से कोई परदेशी मेहमान आपसे मिलने आये अथवा किसी मित्र के यहाँ मिले, अथवा हिन्दुस्तान के दूसरे प्रांतों में आप जायँ और वहाँ के किसी सज्जन का आतिथ्य स्वीकर करें, तो वातचीत का विषय भारतवर्ष के बड़े आदमी होते हैं। जिस प्रमाण में अतिथि तथा आतिथेय बड़े आदमियों से परिचित होंगे उसी प्रमाण में वातचीत का विषय भी बढ़ जाता है। बड़ा किसे समझा जाय यह अतिथि तथा आतिथेय के दृष्टिकोण तथा सामाजिक स्थिति पर अवलंबित है।

हिन्दुस्तान में बड़े आदमी अनेक हैं। उनमें श्री मुकुंद आर० जयकर का नाम बहुत ऊँचे स्वर में लिया जाता है। वातचीत भी प्रधानतः अंग्रेज़ी भाषा में होती है; क्योंकि दूसरे प्रान्तों के बीच अभी हिन्दी भाषा का उपयोग संभव नहीं बन सका। वात-वात में एक व्यक्ति पूछे, "Do you know Mr. M. R. Jayakar ?" "Yes, he is a very cultured man. Isn't he ?" यह उसका बहुत ठीक और हमेशा का उत्तर है। बहुत से लोगों के सिर पर अमुक विशेषणों की छाप हमेशा ही पड़ी रहती है। श्री जयकर के लिए 'cultured man' की उपाधि का प्रयोग सभी आदमी वातचीत करते हुए करते हैं।

श्री जयकर वास्तव में संस्कारी मनुष्य हैं भी। इनकी दूसरी शक्तियों के विषय में चाहे मतभेद हों, पर भारत सरकार से लगाकर प्रजा-जीवन में प्रेम रखनेवाला एक साधारण ग्रेज्युएट तक श्री जयकर संस्कारी मनुष्य हैं, यह एक स्वर से स्वीकार करते हैं। यद्यपि प्रत्येक की संस्कारिता

की व्याख्या अलग-अलग होती है। धारा-सभा में सुन्दर बोलें, मिनिस्टर्स के ड्राइंग रूमों में सुन्दर और तेज बात कर सकें, सरकार की आवश्यकता के समय उसका दृष्टिकोण समझ कर अपने मुद्दे पर अधिक जोर न दें, पार्टियों में सुन्दर आतिथेय और आकर्षक अतिथि दोनों बन सकें—इसका नाम है संस्कारी मनुष्य—यह सरकार की व्याख्या है। साधारण मनुष्य, इनकी बोलने की छटा पर, इनके संगीत-प्रेम के विषय में सुनी हुई बातों पर, इनके कल्पित सुन्दर स्वभाव पर और अपने पड़ोसी के अभिप्राय पर से अपनी संस्कारिता की व्याख्या का निर्माण करता है। मित्र इनके सहवास में आकर इनको संस्कारी मनुष्य गिनते हैं। सब दृष्टिकोण अलग होने पर भी, एक बात ठीक है कि श्री जयकर संस्कारी मनुष्य हैं। परन्तु यह वाक्य अलग अलग रूप में इतनी बार सुनने में आता है कि इसका वास्तविक अर्थ बहुधा खो जाता है।

श्री जयकर जन्म से और स्वभाव से (aristocrat) अमीर—वास्तव में इस शब्द का पूरा-पूरा अर्थ नहीं बैठता है। इनमें प्राचीन वंश-परंपरा और नवीन संस्कारिता दोनों का मिश्रण हो गया है। अपना घर, जैसे वह किला हो, उसे सजाने में इन्हें प्रसन्नता होती है और विन्टर रोड का बंगला इनके गर्व का खास विषय है। कोई भी मेहमान इनके चित्रों, इनके डाइनिंग रूम इत्यादि की प्रशंसा किये बिना न रहेगा। इस बँगले की प्रत्येक खूबी बताने और इसकी प्रशंसा का आनंद लेने में श्री जयकर को विशेष आनंद आता है।

संगीत से प्रेम होना यह संस्कारिता की विशेषता नहीं तो एक लक्षण अवश्य है और वह श्री जयकर में है। ये उस्ताद नहीं, पर उस्तादी को परख सकें इतने संगीत निष्णात हैं और बहुधा अपना काम छोड़कर भी संगीत सुनने के लिए ललचा जायें इतना इनका संगीत-प्रेम या संगीत-निर्बलता जो कहो, वह है।

उन्नीस सौ अट्ठाइस की दिसंबर में, कलकत्ते की एक रात मुझे याद

आ रही है। कलकत्ते में नीर्मलचंद्र ने संगीत पार्टी की योजना की थी और जयकर उस समय उनके अतिथि थे। एक ओर ऑल पार्टीज कान्फरेंस में हिन्दू-मुसलमान के प्रश्न पर विचार हो रहा था, और हिंदू महासभा के प्रमुख पद से दोपहर को, श्री जयकर ने जिन्ना की शर्तों को जमींदोज किया था। रात में उसी पर गरमागरम बहस चल रही थी। हम सब ने सोचा था कि आज जयकर पार्टी में नहीं आयेंगे, पर साढ़े दस बजे कि दरवाजे में श्री जयकर दाखिल हुए।

मैं समझती हूँ तब भी मुन्शी ने जयकर को संगीत का आनंद अच्छी तरह नहीं लेने दिया। तुम्हारे बिना इस प्रश्न पर कोई प्रभावशाली व्यक्ति वहाँ नहीं है। तुम्हें जाना ही चाहिए। 'जयकर इच्छा न होने पर भी गये।' कमला देवी (चट्टोपाध्याय) ने कुछ हँसी और कुछ क्रोध में कहा, 'मेरे और जयकर के भाग्य की कुछ ऐसी बात है कि मैं जहाँ-जहाँ जयकर से मिलने की सोचकर आती हूँ वहीं से खिसक जाते हैं।' पर इनका राजनैतिक जीवन वास्तव में वेणीलाल महेता से भी कठोर है; यह इन्हें संगीत और कलाकारों की संगति का आनंद कभी-कभी ही पूरी तरह भोगने देता है।

एक सज्जन के रूप में जयकर में अनेक गुण हैं और महत्ता के मार्ग पर आगे बढ़ने की सबसे बड़ी प्राकृतिक देन वक्तृत्व कला इनको मिली है, फिर भी न जाने क्यों वास्तविक महत्ता के बीच सदैव चार अंगुल का अंतर रहता है! महत्ता का पात्र बिलकुल ओठ तक आ जाने पर भी पिया नहीं जा सका हो, ऐसा श्री जयकर के विषय में कई बार हो चुका होगा। या तो इनमें महत्ता को झपटने का पूरा-पूरा साहस नहीं है या महत्ता के बिलकुल समीप तक जाने की इनकी शक्ति नहीं। इनसे महत्ता प्राप्त करने का एक मार्ग निश्चित नहीं हो पाता। किस प्रकार की महत्ता चाहते हैं यह भी कदाचित् ठीक-ठीक इनके मस्तिष्क के सामने न आई हो। प्रजाकीय आंदोलन की ज्वाला जब भड़क उठी तो उसकी लपटों की लहरों पर तैरते हुए नेता, लगभग अमानुषी महत्ता के अधिकारी

किनारे के मनुष्य को दिखाई दें और तैरने की पूरी-पूरी शक्ति का अनुमान लगाये बिना ही, महत्ता प्राप्त करने के लिए समुद्र में कूद पड़ें और डूबने लगें तो उसमें दोष किसका ? और राजमहल की दीवार के आगे सत्ता की नदियाँ बहती हों और झिलमिलाती महल की रोशनी के क्षीण प्रकाश में अपार्थिव गंगाजी में तैरने का मन हो यह क्या स्वाभाविक नहीं है ? मनुष्य के लिए सत्ता लेने और महत्ता प्राप्त करने के दो मार्ग हैं। एक तो लहराते हुए मानव-सागर की अगाध शक्तियों का वेग झेल कर बलवान होने का, दूसरा तोप और तलवार के बल पर राज्य करनेवाली सरकारी सत्ता के प्रतिनिधि होने का। दोनों मार्ग एकलक्षी भक्ति चाहते हैं। जो मनुष्य दोनों ओर आकर्षित हो उसके हाथ से वास्तव में दोनों मार्ग निकल जाते हैं।

आज तक का श्री जयकर का यह अनुभव है—हो सकता है। भूतकाल का पाठ श्री जयकर ने आज याद कर रक्खा हो ऐसा लगता है।

किन्तु इसमें श्री जयकर का अधिक दोष नहीं। सन् १९२१ के महान् आंदोलन के समय प्रेक्टिस छोड़कर सत्याग्रह में सम्मिलित हुए, यह एक आदर्श की सिद्धि के लिए था। शिक्षा की एक प्रजाकीय महासंस्था बनाने का इनका आदर्श था। प्रेक्टिस छोड़ें और सत्याग्रह में सम्मिलित हो जायँ तो इस संस्था के लिए आवश्यक धन तिलक-स्वराज्य-फंड में से दे देने का कितने ही प्रमुख सत्याग्रहियों ने इन्हें वचन दे दिया था, ऐसा कहा जाता है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति धर्म-परिवर्तन करनेवाला हो तब तक उसके जीवन के प्रति मिशनरियाँ रुचि रखतीं और बड़े-बड़े वचन देती हैं, परंतु धर्म-परिवर्तन के बाद उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखतीं, वैसा ही श्री जयकर के साथ सत्याग्रह के अवसर पर भी हुआ। धर्म-परिवर्तन के बाद, अब कहा जायगा, मिशीनरी की-सी मनोदशा उस समय कितने ही सत्याग्रहियों में भी थी। दूसरा जबरदस्त आदमी होता तो इनके बीच

रहता, इनके साथ आवश्यकता पड़ने पर लड़ता-झगड़ता और अपने आदर्श की प्राप्ति अवश्य करता, परन्तु जयकर के सुकुमार, खानदानी स्वभाव में डेमोक्रेसी की मोटी लातें खाने और विरोधी को खिलाने की शक्ति नहीं है। इनकी सुरक्षित कोमल आत्मा झगड़ा करने में सदैव काँपती रहती है, 'रानी गाली खाय तो महल में छिप जाय' के अनुसार सत्याग्रह की सत्याग्रही छावनी से अपने घर के किले में छिपकर जा बैठे हैं।

श्री जयकर से आलोचना नहीं सही जाती। इस प्रजामतवादी युग में चाहे जैसा हलका मनुष्य, चाहे जैसे अच्छे से अच्छे व्यक्ति के अच्छे आशय से किये हुए कृत्य की हलके से हलके विशेषणों द्वारा टीका-टिप्पणी करने का अधिकार रखता है। यह बात ये भूल जाते हैं। टीका-टीप्पणी करनेवाला जितना अधिक हलका होगा, उतना ही उसकी गालियों का जोर अधिक होगा। गाली खानेवाला जितना अधिक अच्छा होगा उतने उसके प्रत्येक कृत्य में कलुषता की कल्पना करनेवाले अधिक होंगे। प्रजा जीवन में प्रत्येक को संतोष नहीं मिलता और भूल-चूक से रास्ता चलने वाला भी यदि नाराज हो गया तो उसके लिए भी समाचार-पत्रों का द्वार खुला है। अच्छे आदमी को बदनाम किये बिना आज के समाचार-पत्र जीवित नहीं रह सकते, यह एक प्रत्यक्ष सत्य है। इसका एक छोटा-सा उदाहरण लें तो श्री जयकर पर टीका-टिप्पणी करने में हेरल्ड के कितने पृष्ठ और हार्निमेन के कितने घंटे बिगड़े होंगे?

सन् १९२१ का यह कड़ुवा अनुभव श्री जयकर ने अब भी नहीं भुलाया और दूध का जला हुआ छाछ फूँक-फूँक कर पीता है, इस प्रकार आज भी ये सत्याग्रही लड़ाकू जवानों को देखकर दूर से ही भागते हैं।

श्री जयकर के जीवन में सोने की थाली में यदि ताँबे की मेख है तो वह उनके कितने ही विरोधी हैं। गांधीजी की महत्ता की तो किसी से स्पर्धा हो नहीं सकती, पर मोतीलालजी को ही पहुँच सकें—ऐसी महत्ता भी अभी किसी को नहीं मिली—सहसा मिल जाय यह भी सम्भव

नहीं, ऐसा श्री जयकर को न लगता होगा ! और श्री जिन्ना की गर्व-भरी छटा प्रतिस्पर्धी रूप में इन्हें न खटके तो फिर ये मनुष्य कहलाने योग्य नहीं। बड़ी-बड़ी बातें करने तथा लार्ड फॉकलैंड जैसे रोब से चलने की श्री जिन्ना में एक आदत है और मुसलमानों को पुचकारने, जनता की तथा सरकार की दोनों की नीति के कारण इन्हें और भी अधिक महत्ता मिल गई है। देश में जो स्थान आज मोतीलालजी का है और उनसे भी कितने हो नीचे व्यक्तियों का है, वह भी जयकर को प्राप्त नहीं। साधारण सभा में मोतीलालजी का दरजा, श्री विट्ठलभाई की तीक्ष्ण दृष्टि और श्री जिन्ना का मिजाज बहुधा जयकर को उत्तेजित कर देता होगा यह हम मान लें, तो इसमें कुछ भूल न होगी ! आज बड़ी धारा-सभा में श्री विट्ठलभाई और पंडित मोतीलालजी की अनुपस्थिति में श्री जयकर को अपना सोचा हुआ स्थान मिल गया है और श्री जिन्ना का मिजाज दिन पर दिन पुराना होता जा रहा है इसलिए प्रतिस्पर्धी होने से श्री जयकर को 'लीडर ऑफ दी ऑपोजीशन' का स्थान मिला है, इससे यह सूचित होता है कि अब दुश्मन जीत लिया गया ! हमेशा के लिए हो यह तो श्री जयकर के मित्र अवश्य चाहेंगे। राउंड टेबल कान्फ्रेंस में तो श्री जयकर अवश्य जायँगे; पर आज की संधि के संदेशवाहक के रूप में इनका कार्य सफल हो या न हो तो भी सरकार के नवीन प्रधान मंडल में श्री जयकर को बहुत दिनों से इच्छित स्थान मिल जायगा, यदि हम ऐसा तर्क करें तो इसमें बहुत अधिक तर्क-शक्ति की आवश्यकता है, यह मुझे नहीं लगता।

श्री जयकर ने जीवन में बहुत से अवसर खोये हैं। हिन्दू महासभा के प्रेसीडेंट रूप में यदि जरा अधिक कल्पना और शक्ति से काम लिया होता तो मालवीयजी से भी बड़ा स्थान आज इनका होता। इतनी शक्ति और समृद्धि के साथ यदि इन्होंने एक दैनिक पत्र चलाया होता तो बहुत सी शंकाएँ ये दूर कर सकते थे और यदि थोड़ी सी और अधिक

इच्छाशक्ति प्रयोग में लाई होती तो इन्हें जीवन में सुअवसरों का अभाव न रहता। जो इन्हें आज इतने वर्ष बाद मिलेगा वह आज से दस वर्ष पहले मिल गया होता, पर बीती हुई तिथि तो ब्रह्मा भी नहीं बाँचते, तो फिर हम क्यों बाँचें ?

श्री जयकर मित्र की तरह बहुत अच्छे हैं, पर इनकी मित्रता का प्रवाह एक धारा-प्रवाही ही नहीं। आज नहीं तो कल सही, ऐसी इनकी मनोदशा है। कदाचित् इनकी मित्रता का अनुचित लाभ बहुतों ने उठाया हो और इसी से मूल स्वभाव निश्छल होने पर भी कभी-कभी शंकालु हो जाता हो। परन्तु श्री जयकर को अपने भावों का प्रदर्शन अच्छा लगता है और प्रशंसा इनको अप्रिय नहीं।

श्री जयकर के जीवन पर इनकी माता का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। स्वभाव से ये बातों के शौकीन और छोटी-छोटी बातों में मदद करने के लिए हमेशा तत्पर रहते हैं। इन्हें अपने आस-पास लोगों को इकट्ठे करना अच्छा लगता है।

किन्तु सब कुछ कहने के बाद इतना अवश्य है कि श्री जयकर बड़े आदमी हैं, पर महान् व्यक्ति नहीं।

श्री मुहम्मदअली जिन्ना

श्री मुहम्मदअली जिन्ना के विषय में कुछ भी लिखना बहुत कठिन काम है। पहले तो इसके नाम का प्रयोग कैसे किया जाय यह खोज निकालना आवश्यक है। देखने में पौने छः फिट ऊँचे होने पर भी इनकी उपाधि (Surname) जिन्ना है; लहके से बोला जाय तो जीइना है अथवा अंग्रेजी में रोब में बोला जाय तो मि० जिन्हा है। इस देश में अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग अंग्रेजी उच्चारण भी अपना लेते हैं इसलिए असली नाम क्या था, बहुधा यह खोज निकालना भी कठिन पड़ जाता है। मेरी पंचगनी की एक पारसी पड़ोसिन की उपाधि 'गांधी' है पर वह मिस गैंडी के नाम से परिचित है और कोई उसको गांधी कहकर बुलाए तो बड़े अपमान का अनुभव करती है। राय का रॉय और ठाकुर का टैगोर तो हमने कब का स्वीकार कर लिया है। एक बार उत्तरी भारत में यात्रा करते हुए रेलवे गाइड में मुझे मथुरा मिला ही नहीं। मत्रा या मुत्रा के उच्चारण से समझ में नहीं आनेवाला एक नाम इसी के अंदर था, पर यही थी मथुरा। वह स्टेशन आया और चला भी गया, तब मेरी समझ में आया था। पर इस समय इस नाम की माथापच्ची में न पड़कर सुविधा के लिए हम जिन्ना स्वीकार किये लेते हैं।

जिन्ना बहुत अकड़बाज और अहंकारी मनुष्य हैं यह तो सर्व-स्वीकृत सत्य है। ये मिजाजी और अकड़कर चलने वाले किसी की पर्वाह नहीं करते। स्वयं किसी के सुख-दुःख में भाग लेते नहीं और न अपने सुख-दुःख में किसी को भाग लेने देते हैं और किसी के साथ काम करते हुए जब तक अपनी सर्वोपरिता स्वीकृत न करा लें तब

तक उन्हें चैन नहीं पड़ता। अंग्रेजी में जिसे 'स्नोव' कहते हैं ऐसों के साथ इन्हें 'स्नोव' होना आता है। अपनी ओर सम्मान से देखनेवाले व्यक्ति की ओर ये हँसकर खुशमिजाजी से बातें करते हैं।

जिन्ना को अपने गौरव का खयाल बहुत है, यह अनुमान इनके व्यवहार से लगाया जा सकता है। वे स्वयं बहुत बड़े आदमी हैं इस बात को वे सहज ही नहीं भूल पाते। प्रतिस्पर्धी को बोलने में मात देने पर वह कदाचित् ही वाद-विवाद करता। सच तो यह है कि उनके बोलने की छटा से विरोधी पक्ष सहम जाता—इनके व्यवहार से, या स्पष्ट तिरस्कार से अथवा लार्ड बर्कनहेड जैसी गर्मी से। हो सकता है, लार्ड बर्कनहेड की यह बहुत कोमल आवृत्ति होगी, यह भी हम मान लें तो भी भारत में इस प्रकार के नमूनों का अभाव होने से श्री जिन्ना का एक विशेष स्थान है। खुदा ने मेहरबानी की कि ये मुसलमानों में पैदा हुए इसलिए प्रजापक्ष इनके धार्मिक कट्टरता से रहित स्वतंत्र मिजाज को पुचकारता है। सरकार को यह दिखाता है कि ऐसे स्वतंत्र मनुष्य उसके साथ हैं।

मि० जिन्ना में पहले भले ही जातीयता न हो पर इनमें थोड़े से पिछले वर्षों से जातीयता आ जाने से इनमें इतना जानने की चतुराई तो है ही कि यदि धारासभाओं में जाना हो और मत लेने हों तो जातीय दृष्टिकोण अपने कार्य-क्रम में अपनाये बिना काम नहीं चलता। महात्मा गांधी के भारत में आने के बाद, आराम कुर्सियों पर बैठकर नंबरदारी करने-वाले राजनीतिक नेता स्वतंत्र प्रजापक्ष से अधिक मतों की आशा नहीं रख सकते और श्री जिन्ना से भला कहीं खादी पहिनकर गाँव-गाँव में भटक कर, साधारण लोगों की तरह रहा जा सकता है? कांग्रेस के मंडप में या कावसजी जहाँगीर हॉल में प्लेटफार्म पर बैठे हुए मि० जिन्ना के भाषण सुनकर लोग प्रशंसा कर जायँ वहाँ तक ठीक है। पर इससे अधिक लोगों के साथ समागम में आना, वे नहीं चाहते। अमीरों और

वाइसरायों तथा बड़े आदमियों के साथ पार्टी खानेवाले मि० जिन्ना से इतने नीचे उतर आना संभव नहीं और इस कारण विवश होकर जिन्ना को जातीय दृष्टिकोण अपने राजनीतिक प्रोग्राम में लाना पड़ा। प्रत्येक कांग्रेस में तथा ऑल पार्टीज कान्फ्रेंस में श्री जिन्ना अपने आप ही मुसलमानों के प्रतिनिधि बन गये। प्रेसीडेन्ट विल्सन की तरह इनके प्रख्यात चौदह जातीय मुद्दे अभी पुराने नहीं हुए। और वाइसराय से भी अधिक रोब से, देर में आकर और बीच में बैठकर, प्रत्येक को अपने बड़प्पन का भान कराकर, बड़े रोब से बोलते, हैं 'Gentleman! do you want to take the seven crores of Mussalmans with you or not? If you do, very well then, these are the terms. Remember, they are a very important minority, unless you give then all that they want, you can't have swaraj' बस। जब तक कि जिन्ना का कथन पूरा नहीं हो जाता तब तक परमेश्वर चाहे स्वयं अवतार लें तो भी हिन्दुस्तान को स्वराज्य दिलाये बिना ही लौटना पड़े। और मुझे याद है कि उन्नीसौ अट्ठाइस की कलकत्ते की ऑल पार्टीज कान्फ्रेंस के समय यदि श्री जिन्ना का ऐसा मिजाज न होता तो मुसलमानों की बहुत सी बातें हिंदू मानने के लिए तैयार थे। पर जिन्ना का मिजाज देखकर लगभग आधा भाग जो पंडाल में इनके पक्ष में था वह भी विरोधी हो गया। 'खुदा, मेरे मित्रों से बचाओ' ऐसी प्रार्थना मुसलमान यदि किसी दिन कहेंगे तो कोई आश्चर्य नहीं।

श्री जिन्ना चाहे जैसे भी हों पर ध्यान आकर्षित करनेवाली मूर्ति हैं। इनके फैशनेबल कपड़े इनको—'क्या खूबसूरत लगूँगा?' 'दिखावट ठीक रहेगी।' 'जवानी में दिखा चुके 'अब क्या?'—अब भी दिखावटीपन है, पर कुछ पक्का होता जा रहा है। इनका रोब, धारासभा में इनका स्थान, इनके जीवन की कितनी ही घटनाएँ यह सब एक प्रकार

का निराला व्यक्तित्व श्री जिन्ना को दे देते हैं। हाइकोर्ट में भी ये धन कमाते हैं वह एक तो केस को ठीक तरह से सामने रखने की शक्ति से और दूसरे जज को प्रभावित करने की शक्ति से। कोर्ट में केस चलाते समय जैसे जजों पर मेहरबानी करते हों, देखनेवाले को ऐसा भान अवश्य होता है। और जज भले ही नये-नये आयें पर सरकार और प्रजा के माननीय सदस्य तो पुराने ही रहे। ऐसे माननीय व्यक्ति को सम्मान देना प्रत्येक जज का कर्त्तव्य हो जाता है। श्री जिन्ना को सम्मान देना यह प्राचीन रूढ़ि हो गई है, और रूढ़ि का भंग समाज में रहनेवाले बहुत थोड़े ही कर सकते हैं।

श्री जिन्ना बहुत प्रामाणिक व्यक्ति हैं यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता। पर बड़ी सरकार के एक बड़े अधिकारी व्यक्ति ने इस प्रामाणिकता की व्याख्या इस प्रकार की थी, 'He is a straight man, not because, he likes virtue, but he is too proud to do wrong.' शब्द ठीक न हों पर भाव यही था, और बात ठीक भी है। श्री जिन्ना खूब गर्विष्ठ थे, पर इनका गर्व इन्हें प्रलोभनों से बचा लेता था। 'मैं जिन्ना, कहीं ऐसा कर सकता हूँ ?' ऐसा प्रश्न कठिन समय आ जाने पर अपने मस्तिष्क से पूछते हैं और मस्तिष्क इन्कार कर देता, 'नहीं जिन्ना ! हो सकता है, लाभ हो, पर तुम्हारे स्वतंत्र मिजाज और तुम्हारी प्रतिष्ठा को यह अच्छा नहीं लगता।' तो बस, फिर जिन्ना यह बात कभी नहीं करते और एक बार किसी बात पर मस्तिष्क बंद हो गया तो फिर वह आसनी से नहीं खुलता।

साइमन कमीशन के बहिष्कार का आरंभ भी श्री जिन्ना और दूसरे एक-दो व्यक्तियों के गर्व पर आघात होने से ही हुआ था, ऐसी बातें उन दिनों हवा में उड़ती थीं, पर उनमें सत्य क्या था यह तो जिन्ना अपनी आत्मकथा किसी दिन लिखते तो मालूम होता। तब तक सब जिसे गुप्त बात समझते हैं उसे हम भी ऐसा ही समझें, यह हमारा धर्म है।

सब अच्छे आदमी अपने धर्म का पालन करते हैं और हम अच्छे आदमी हैं इसमें किसी को शंका हो ऐसा क्यों किया जाय ?

इतने वर्षों में धारा-सभा में होने पर भी श्री जिन्ना प्रधान क्यों नहीं हुए इस शंका के लिए तो अवकाश ही नहीं। जिन्ना बहुत आसानी से फुसला ये जा सकते यह सम्भव नहीं और सरकार को तो आसानी से फुसलाये जा सकें ऐसे आदमी चाहिये, और जिन्ना जैसे व्यक्ति यदि प्रधान मंडल में होते तो आजकल सर बी० एल० मित्तर जैसे किसी भी राजनीतिक रंग से रहित मनुष्य की सहायता से जिस आसानी से राज्य कार्य हो रहा है वह कैसे होता ? हमारे यहाँ शक्ति-सम्पन्न व्यक्तियों के जीवन की यह करुण कथा है। दूसरे देशों में पैदा हुए होते तो राज्य-स्तंभ होकर खड़े रहते। इस देश में पैदा होने से उन्हें धारा-सभा की कुर्सियाँ अपने आत्मसंतोष के लिए सुशोभित करने में ही इन शक्तियों की समाप्ति हो जाती है। जहाँ तक होने का प्रश्न है, यदि बंबई सरकार के प्रधान मंडल में सर गुलाम हुसैन की जगह श्री जिन्ना होते तो कोई फेर न पड़ता ? पर श्री जिन्ना में वोटिंग हाथ में रखने की शक्ति नहीं इसलिए किस काम के ? और वे यदि प्रधान मंडल में होते तो क्या होता यह एक प्रश्न है। He would have been a despot, but a benevolent despot.

श्री जिन्ना का विवाहित जीवन बहुत असुखी रहा। परन्तु यह इनके व्यक्तिगत जीवन की बात है। श्री जिन्ना के रूखेपन या कठोरता पर इसने कुछ प्रभाव डाला ही होगा। मनुष्य के जीवन-पुष्प की अनेक पंखुड़ियाँ हैं और एक पंखुड़ी कुम्हला जाय तो दूसरी बहुत देर तक हरी नहीं रह सकती।

और सुख में या दुःख में मि० जिन्ना का गर्वीला स्वभाव किसी से सहानुभूति नहीं माँगता, किसी से फरियाद नहीं करता, किसी को

अपने जीवन में रस नहीं लेने देता। इनकी वृत्तियाँ और इनकी भावनाएँ बंद पुस्तक के पृष्ठ हैं। बहुत थोड़े से मनुष्यों को ही इसमें क्या लिखा है यह अनुमान लगाने का भी अधिकार है। किसी ने इनके विषय में जो कहा था वह मुझे इस समय भी याद है—"He is neither in human nor unhuman but he is not human. He is not to my taste." "May be but he is an intersting type worth studying." मैंने कहा था और आज भी मैं यही मानती हूँ। आज प्रजा-जीवन में जिन्ना का जोड़ मिलना असम्भव है।

सर प्रभाशंकर पटणी

एक दिन टाइम्स ऑफ इन्डिया में पढ़ा कि राउंड टेबल कान्फ्रेंस में राजाओं के प्रतिनिधि रूप में जानेवालों की संशोधन लिस्ट में सर प्रभाशंकर पटणी का नाम भी लिया गया था। यह नाम लिया गया था इसमें आश्चर्य नहीं, बल्कि यह पहले रह क्यों गया था, इसमें था। ऐसे महत्वपूर्ण प्रसंग पर सर प्रभाशंकर पटणी का नाम रह गया? जहाँ हिन्दुस्तान को सब्सटैन्स आफ इंडिपेंडेंस वाला डोमिनियन स्टेट्स मिलने वाला था, वहाँ राजाओं के अधिकारों की रक्षा बहुत आवश्यक थी, ऐसी महत्वपूर्ण राउंड टेबल कान्फ्रेन्स में सर प्रभाशंकर पटणी का नाम न हो यह हो कैसे सकता है? पर सरकार बड़ी अच्छी है और सर पटणी जाग्रत हैं इसलिए भूल समय पर सुधर गई इसमें आभार किसका? खुदा का!

इस समय की राउंड टेबल कान्फ्रेंस में राजाओं के अधिकारों की रक्षा करने वाले दो गुजराती प्रधानों के नाम दिखाई देते हैं। एक सर मनुभाई महेता और दूसरे सर प्रभाशंकर पटणी। दोनों नागर हैं; दोनों सर हैं। दोनों राजनीतिक क्रीड़ा में कुशल हैं; दोनों साधारण श्रेणी से प्रधान के पद को प्राप्त हुए और राजकारण केवल सिखने के बदले कर दिखाया है। दोनों संबंध बढ़ाने में जबरदस्त हैं। दोनों अनुभवी, योग्य और चतुर खिलाड़ी हैं।

किन्तु यह सादृश्य यहीं समाप्त हो जाता है। दोनों देखने में एक दूसरे से बिलकुल भिन्न हैं। मनुभाई पक्के हैं पर भले दिखाई देते हैं, पटणी पक्के हैं और पक्के दिखाई देते हैं। मनुभाई से मिलने जाओ तो

नये मिलने वाले की समझ में नहीं आता कि इनके साथ बात कैसे की जाय। आप जाएँ तो आपकी कुशल पूछेंगे फिर आपको क्या कहना है यह सुनेंगे। जवाब देते समय आपके वाक्य का अंतिम शब्द दोहरायेंगे और यदि ऐसा न हो सके तो फिर बीच में 'हूँ' कर आपको बात आगे बढ़ाने की सूचना देंगे। आपको बातें करने में जरा भी मदद न करेंगे। आपकी बातें अच्छी लग रही हैं या नहीं यह भी न मालूम होने देंगे। स्वर में भलमनसाहत का परिचय होगा—और परिणाम? परिणाम कुछ नहीं। सर पटणी के पास जायँ तो कदाचित् परिणाम एक ही सा आता होगा। उनकी बात करनी की रीति बिलकुल भिन्न है। आप जाकर मिलें, तो मानो कितने ही जन्म की जान-पहचान हो इस प्रकार आप से घुल-मिलकर बातें करेंगे; आपकी बातों को नवीन दिशा देंगे और कुछ नहीं तो अंत में वार्तालाप को अवश्य सरस बना देंगे।

अप्रस्तुत होने पर भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न मेरे मन में इस समय आ उपस्थित होता है। ये दोनों प्रधान गुजराती हैं, देशी राज्यों के नौकर हैं, दोनों महत्वाकांक्षी हैं। दोनों के बीच कभी समानताता की मानसिक स्पर्धा चली होगी? अब भी चलती होगी?

इतना तो अवश्य है कि सर पटणी के पास मनुभाई की तरह थोड़ा बोलकर बहुत कुछ प्राप्त कर लेने की कला नहीं है। सर मनुभाई पूरी तरह सरकारी हैं और सदैव सरकार का दृष्टिकोण समझ कर अपना बर्ताव उसी के अनुसार बना लेते हैं। सर प्रभाशंकर में अभी कदाचित् थोड़ा-सा विद्रोही स्वभाव बाकी रह गया होगा इसीलिए वे विधाता-सी सरकार पूरा-पूरा बदला देने के लिए तत्पर न हों। कुछ भी हो, सरकार माई-बाप के ये दोनों लाड़ले बेटे हैं। किन्तु यह बात हम यहीं रहने देते हैं।

सर प्रभाशंकर पटणी में आकर्षक व्यक्तित्व है और उसकी साक्षी

श्री चंद्रशंकर पण्ड्या—आजकल कई वर्षों से सर पटणी के मेहमान—पूरी तरह दे सकेंगे। सर पटणी का बात करने का ढंग आकर्षक और वाणी मीठी है, परन्तु काठियावाड़ी जलवायु में ही ऐसी मीठी वाणी पैदा करने की शक्ति निहित है और उसमें भावनगरी, इसलिए पूछना ही क्या ! सर पटणी का व्यक्तित्व विविध-रंगी है और आसानी से समझ में आ सके, ऐसा नहीं। आप इनके व्यक्तित्व का एक रंग देखें और दूसरे क्षण ही वह आसानी से बदलता हुआ दिखाई देगा। अंग्रेजी में जिसे Elusive personality कहते हैं ऐसा कुछ-कुछ इनमें कदाचित् हो भी। इनमें महत्ता खोजने तथा प्राप्त करने की भी शक्ति है। जाति को जिमाने तथा अपने आस-पास लोगों को इकट्ठा करने की शक्ति है और साथ ही साथ...कदाचित् आप न मानें...इनमें कविता रचने की भी शक्ति है।

अब फिर तुलना करने का समय आया—और इस बार दुनिया के महापुरुष के साथ। यह भी काठियावाड़ी हैं और इनमें भी काठियावाड़ी मीठी वाणी है। गांधीजी के लिए हम यह कह सकते हैं। उनमें संत कहाँ समाप्त हो जाता है और राजनीतिक व्यक्ति कहाँ से आरंभ होता है यह कोई नहीं कह सकता। सर पटणी अच्छे मित्र तथा प्रजा के पालनहार हैं, पर इनके विषय में भी यही कहा जा सकता है। इनकी निःस्वार्थता कहाँ समाप्त होती है और स्वार्थ कहाँ से आरंभ होता है, यह समझ में नहीं आता।

सर पटणी की महापुरुषों के साथ समता यहीं समाप्त नहीं हो जाती। भारतवर्ष में दाढ़ीवाले तीन नेता हैं और उनमें से एक ये भी हैं। शेष रह गये श्री विट्ठलभाई पटेल और कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर इनके अतिरिक्त तीनों व्यक्तियों की दाढ़ी भव्यता प्रदान करती है, पर कविवर टैगोर की दाढ़ी से कविता झरती है, इसलिये इस कलामय दाढ़ी की बात रहने दीजिये और साथ में यदि व्यंग भी जाने दें तो श्री विट्ठलभाई और सर पटणी में केवल दाढ़ी का ही नहीं, बल्कि अनेक

प्रकार का साम्य दिखाई देता है। दोनों व्यक्ति महत्वाकांक्षी और सत्ताकांक्षी हैं, दोनों खटपटी हैं, दोनों अपने मार्ग के बीच कोई हो तो सहन नहीं कर सकते; और महत्ता दोनों की श्वास और प्राण है। आज बहुत अंशों में इन दोनों व्यक्तियों की महत्ता प्रजा को लाभदायक सिद्ध हुई है। परन्तु सर पटणी ने काठियावाड़ के बदले ब्रिटिश राज्य में अपना भाग्य आजमाया होता तो क्या होता, इस विचार से मन काँप उठता है। हिन्दुस्तान के राजप्रकरण में यदि ये दोनों दाढ़ीवाले साथ-साथ होते तो इन दोनों को अपने में समा ले और संतुष्ट कर दे ऐसा कोई स्थान नहीं, और इन दोनों योद्धाओं की लड़ाई में बेचारे हिन्दुस्तान का क्या होता ? आज श्री विट्ठलभाई की सभी शक्तियाँ प्रजापक्ष में लगी हुई हैं और कुछ नहीं तो आखिर सर पटणी प्रजापक्ष से सहानुभूति तो रखते ही हैं। दोनों व्यक्ति साथ होते तो दोनों में से एक को तो सत्ताकांक्षा की संतुष्टि के लिए सरकार के पास जाना ही पड़ता। पर जो भी होता है वह अच्छे के लिए ही होता है, ऐसा बड़े-बूढ़ों का कथन है।

परन्तु इससे कहीं ऐसा न हो कि सर प्रभाशंकर को डेमोक्रेसी अच्छी लगती है, यह मानने की भूल कर बैठें। हाँ, डेमोक्रेसी इन्हें अच्छी लगती तो है पर वह ब्रिटिश सीमा में; भावनगर में नहीं। वहाँ तो ये प्रजा के माई-बाप हैं और प्रजा को बच्चों की तरह फुसलाते हैं—केवल प्रजा को ही नहीं, बल्कि राजा को भी। सबके साथ ये मीठा बर्ताव करते हैं और सब को ठंडा, मीठा रखने का इनमें गुण है। और ऐसे रामराज्य में प्रजा को अधिकार और डेमोक्रेसी का क्या करना है ? भावनगर सुराज्य है, यह मान लें तो फिर उसे स्वराज्य की क्या आवश्यकता पड़ी ?

सर पटणी अपने को प्रजा का दास तथा राज्य का नौकर समझते हैं। मुझे याद है कि इन्होंने दो-एक जगह सब के सामने भी कहा था, "मैं तो बँधा हुआ नौकर हूँ स्वतंत्र लोगों को क्या शिक्षा दे सकता हूँ ?" आज ब्रिटिश सरकार भी अपने को प्रजा की दासी समझती है,

और अधिकारियों को प्रजा के नौकर, पर राजनीतिक डिक्शनरियों में नौकर अर्थात् सेठ ऐसा अर्थ होता है—ऐसा किसी ने कहा था, यह मुझे याद है। सर प्रभाशंकर की डिक्शनरी में नौकर अर्थात् नौकर या नौकर अर्थात् सेठ लिखा होगा। इस बात की समस्या बहुत आसानी से नहीं सुलझाई जा सकती।

जानने योग्य एक भी मनुष्य समस्त भारत में इनको न जानता हो क्या यह संभव है? सर प्रभाशंकर राजाओं के पूर्ण रूप से मित्र होने पर भी प्रजा के मित्र होने का इनका दावा है। ये सरकार के भी मित्र हैं और गांधीजी के भी परम मित्र हैं......यह भी जाने दें, इनके मित्रों की सूची तो बहुत बड़ी है और यह सूची श्री चंद्रशंकर पंड्या की तरह अच्छे ढंग से मैं नहीं बता सकती।

और मित्रों की बात याद आते ही एक मित्र के यहाँ हम एक रात भोजन के लिए इकट्ठे हुए थे, यह याद आता है। भोजन करते हुए बहुत-सी बातें हुईं, पर एक बात मुझे खास याद रह गई है। सर प्रभाशंकर की अपनी कही हुई बात है।

सर प्रभाशंकर के घर का अलिखित नियम है कि स्त्री-वर्ग को राजनीति में सिर नहीं मारना चाहिए और लेडी पटणी को किसी की सिफारिश लेकर सर प्रभाशंकर के पास नहीं आना चाहिए। एक वृद्धा के पक्ष में एक बार श्रीमती पटणी ने यह नियम भंग किया। भोजन करते समय सर प्रभाशंकर को अति प्रसन्न देखकर इन्होंने बात छेड़ी, "इतना इस बाई का काम कर दो न?"

सर प्रभाशंकर मिठास से बोले, "तुम्हें इस विषय में बीच में पड़ने की आवश्यकता नहीं, मैंने जो भी किया होगा वह सोच-विचार कर ही किया होगा।"

श्रीमती पटणी रोष में भरकर बोलीं, 'पचास वर्ष से मैंने कुछ भी

नहीं माँगा। आज इतनी-सी मेरी कही बात नहीं करोगे ?"

श्रीमती पटणी को कैसे समझाया जाय इस विचार में सर प्रभाशंकर होंगे कि इन शब्दों ने उन्हें अवसर दिया। वे खिलखिलाकर हँस पड़े। सोचे अनुसार श्रीमती पटणी ने कारण पूछा।

"तुम पचास वर्ष की बात बीच में लाती हो, पर इतने वर्षों में भी तुम मुझे पूरी तरह नहीं समझ सकीं इस विचार से मुझे हँसी न आय तो और क्या हो ? अकारण ही तो मैंने इस बुढ़िया के साथ अन्याय किया न होगा ?"

श्रीमती पटणी लज्जित हो गईं—कदाचित् क्षमा भी माँगी होगी और फिर कभी उनकी राजनीति के बीच में न पड़ने का वचन दिया।

सर प्रभाशंकर बातें कर रहे थे कि मुझे बीच में बोलने का मन हो आया, 'और श्रीमती पटणी यह नहीं कह सकती थीं कि पचास वर्ष की मैत्री तो साधारण मनुष्यों को भी बहुत-सी बातें और माँगें पूरी करने का अधिकार दे देती है ? पचास वर्ष के वैवाहिक जीवन के बाद पत्नी को इतना करने योग्य भी न समझे वह पति कैसा ?'......पर सामने बैठे हुए लल्लू काका ने (सर लल्लूभाई) मेरे सामने आँखें निकालीं और मैंने वाक्य अधूरा ही छोड़ दिया।

इतना तो है ही कि सर प्रभाशंकर में हँसने और हँसाने की—दोनों शक्तियाँ हैं। इनमें विनोदवृत्ति खूब है और मनुष्य को समझाने की कला भी'। साथ ही साथ निश्छलता भी है। इनकी तेज आँखें बात करते-करते मनुष्य को मापने का प्रयत्न करती रहती हैं।

किसी वैज्ञानिक ने अभी मनुष्य के गुण-दोष-परीक्षा का सूक्ष्मदर्शक यंत्र कहाँ आविष्कार किया है ? यदि किया है, तो सर प्रभाशंकर के लिए ऐसी कोई माप निकाल सकेगा या नहीं ? भलाई पचास प्रतिशत-परिपक्वता नव्वे प्रतिशत, मिठास पचानवें प्रतिशत, महत्वाकांक्षा......पर जब तक

ऐसा कोई यंत्र दिखाई न दे तब तक यह माथा-पच्ची क्यों करें ?

मुझसे सर प्रभाशंकर ने अपना रेखाचित्र लिखने का निषेध किया है। "देखो, यह सब कुछ रेखाचित्र में मत लिख डालना।"

"क्या इसका यह अर्थ तो नहीं होता कि मुझे आपका रेखाचित्र लिखना है ?" उन्होंने इन्कार कर दिया। परंतु जो कहे, उससे उल्टा न करे तो फिर उसका नाम स्त्री कैसा ? और राजनीतिक शब्द-कोष में नहीं का अर्थ 'हाँ' होता है क्या यह बात संसार प्रसिद्ध नहीं है ?

आर्थर रोड जेल,

२५-७-३०

पंडित मोतीलाल नेहरू

संपूर्ण जंगल के राजा जैसे किसी बूढ़े सिंह की दहाड़ जब दूर से सुनाई दे तो कलेजा काँप उठता है, शरीर शिथिल हो जाता है और दूर रहते हुए भी उसके पराक्रम के ज्ञान से मस्तिष्क आक्रान्त हो जाता है, परन्तु यही सिंह यदि पास से देखने को मिले, उसके शिथिल गात और तीक्ष्ण शिकारी दाँतों का अभाव उसमें दिखाई दे, तो क्या जिस कल्पना-भय से मस्तिष्क भरा हुआ था, उतना भय उस समय लगेगा ! तर्कशक्ति का प्रश्न है ।

उपमा छोड़कर यदि सच्ची बात पर आयें तो पंडित मोतीलालजी को देखकर मुझे कुछ-कुछ ऐसा ही भास हुआ था । पंडितजी के अधीर और गर्वीले स्वभाव के विषय में मैंने बहुत सुन रक्खा था । पंडितजी की तीक्ष्ण बुद्धि तो संसार-प्रसिद्ध है । आज तक महात्मा गांधी के बाद पंडित मोती-लालजी का स्थान समझा जाता है, वह व्यर्थ नहीं ।

पंडितजी को पास से देखने का प्रसंग तो उस समय मिला जब वे गिरफ्तार होने से पहले बंबई पधारे थे और वह भी कांग्रेस वाइस प्रेसीडेंट-शिप के पद से बायकाट कमेटी की ओर से मिल मालिकों के साथ विचार-विनिमय करना पड़ता था और मिल मालिक उनसे मिलने आवें तो हाजिर रहना पड़ता था, इससे और भी मिला ।

सचमुच बुढ़ापे में भी पंडितजी में एक प्रकार का ऊँचा व्यक्तित्व था । इनमें दिखावे का शौक है, पर साथ ही प्रसंग आने पर मीठेपन से काम लेना भी वे जानते हैं । इनके माधुर्य का—कुछ अंशों में काव्यमय माधुर्य का—एक सुन्दर प्रसंग मुझे याद है ।

मिल मालिकों के साथ मेरी बात-चीत, श्री एफ० ई० दिनशा की मारफत चलती और जब मैंने बंबई के एक्सचेंज मार्केट के इस राजा को—बिना ताज के राजा को—मिलने के लिये बुलाया तो ये दोनों किस तरह मिलेंगे, इस विषय में मुझे थोड़ी चिंता थी। पहली कठिनाई तो श्री दिनशा ने ही कम कर दी और पंडितजी को जहाँ अनुकूल हो वहाँ मिलने के लिए कहा और श्री जाल नवरोजी के यहाँ पंडितजी के स्थान पर एक सवेरे मिलने का समय ठहराया।

उस दिन सवेरे एस्पेलेनेड मैदान की संस्मरणीय रैली थी। उस दिन पंडितजी को सलामी देते हुए सैकड़ों के सिर फूटे और अनेक व्यक्ति घायल हुए और इस कारण से निश्चित समय पर आने में पंडितजी को बहुत देर हो गई। श्री दिनशा, श्री एन० पी० मोदी और लालजीभाई पंडितजी की उस समय प्रतीक्षा कर रहे थे।

पंडितजी आये। कपड़े बदलते-बदलते उन्होंने खूब प्रतीक्षा करवाई। मुझे लगा कि इन लोगों के धैर्य का अंत आ जायगा। अंत में 'पंडितजी थके होने के कारण ऊपर नहीं आ सकेंगे इसलिए नीचे ही चले आवें,' यह कहलाया गया और सब नीचे चले गये। श्री दिनशा के स्वभाव का मुझे कुछ अनुभव न होने के कारण सुनी हुई बातों पर से मुझे लगा कि कदाचित् इनका मिजाज बात करने के लायक न रह गया होगा।

परन्तु सब बैठ गये। पंडितजी दरवाजा खोल कर बाहर आये और श्री दिनशा को देखते ही हँसते हुए सामने आकर मिले और कहा, 'Oh, you Dinshow! the sun rising out of the cloud.' शब्द थोड़े, सुन्दर और छोटे थे, पर अब वातावरण बिगड़ने का मेरा भय मिट गया था।

मोतीलालजी समर्थ धाराशास्त्री थे। स्वभाव से बहुत उग्र। या तो वृद्धावस्था के कारण स्वभाव पककर मीठा हो गया हो या मूल रूप में उग्रता ही कम हो गई हो, पर इस उग्रता के दर्शन इस समय बंबई में

भाग्य से ही किसी को हुए हों। हाँ, इतना अवश्य है कि मोतीलालजी को तड़क-भड़क अच्छी लगती है, किन्तु वह कांग्रेस के प्रेसीडेंट हैं, यह बात वे कदाचित् सोते समय भी नहीं भूल पाते।

चाहे जो हो, इनमें गांधीजी जैसी परिक्वता नहीं और गांधीजी का-सा गांभीर्य भी नहीं। गांधीजी संत हैं परन्तु राजनीतिज्ञ भी पूरे-पूरे! न किसी को अपने जाल में न फँसाते हैं और न किसी की जाल में स्वयं फँसते हैं यह बात भी इतनी ही सच है। प्रत्येक बात में अंत में गांधीजी विजयी हुए और हिमालय जैसी भूल करें तो उसे स्वीकार करने में लजाते नहीं।

मोतीलालजी की बात अलग है। इनमें मानवता है, मानवता की कमजोरियाँ भी। गांधीजी की तरह इनकी आवश्यकताएँ कम नहीं थीं और आवश्यक वस्तुएँ न मिलें तो काम चल जाये यह बात भी नहीं। फिर भी वृद्धत्व, दमा और अशक्ति पर विजय पाकर यह वृद्ध इच्छा-शक्ति के बल पर इतना भार खींचता रहा।

मोतीलालजी की सबसे बड़ी प्राप्ति जवाहरलाल नेहरू हैं। हिंदुस्तान के इतिहास में पिता-पुत्र की ऐसी जोड़ी अब असंभव है। दोनों दृढ़ मन के, दोनों भिन्न दृष्टिकोणों से देखनेवाले होने पर भी इनमें इतना स्नेह रहा, यह भी इतिहास में एक बेजोड़ बात होगी। मोतीलालजी का आदर्श लोक-सत्तावाद है तो जवाहरलाल का आदर्श मजदूर-सत्तावाद है। 'काम करे वह खाये, किसी को दूसरे की कमाई पर जीवित रहने का अधिकार नहीं।' 'काम का करनेवाला नहीं, बल्कि काम की सृष्टि करनेवाला, उसकी योजना बनानेवाला महान् है और चाहे कोई भी राज्य हो वह महान् रहेगा ही, जब तक मस्तिष्क की शक्तियों में अंतर है तब तक दुनिया में भी इस प्रकार के अंतर रहेंगे ही।' दोनों भिन्न आदर्श और भिन्न विचार धारा में पैदा हुए, पर दोनों स्नेह की एक गाँठ से बँधे हुए हैं। और फिर भी मोतीलाल नेहरू के

स्वयं स्वभाव के वारिस जवाहरलाल नेहरू पर भी पिछली कांग्रेस के अवसर पर क्या आपखुदी का आरोप नहीं लगाया गया था ?

बेचारे मोतीलालजी ! अब तो बहुत-सी लड़ाइयाँ लड़-लड़कर ये जर्जरित हो गये हैं। इस लड़ाई का भार खींचते-खींचते अब तो इनको थकान लगती हुई दिखाई देती है। क्या मनुष्य जीवन भर लड़ता ही रहे ? लड़ता ही रहे ? कब तक ? किसी दिन भी वह विश्राम ले या नहीं ? पर जन्म से जिसे आदत पड़ गई हो वह विश्राम ले भी तो किस तरह ? पहली पंक्ति का लड़नेवाला यदि अपने स्थान पर न खड़ा हो जाय तो पिछली पंक्ति की नवीन प्रजा का धक्का उसे कुचल न डालेगा ? या तो लड़ना और या अपने को पीछे आनेवाले जवानों से कुचलवाना, इससे तो लड़ते-लड़ते मर जाना क्या बुरा है ?

कैसे जाना जा सकता है कि आज की लड़ाई मोतीलालजी इस विचार से न लड़ते होंगे ? जो इतने वर्षों से सबसे आगे रहकर लड़े, क्या अंत समय में इनसे शांतिमय अंधकार में विलीन हुआ जा सकता ? लड़ने के लिए शरीर में शक्ति हो या न हो, तो भी इन्हें तो अंत तक लड़ना ही है।

और मनुष्य के जीवन में महत्ता के भी कितने ही क्षण होते हैं। मनुष्य बड़ा होने पर भी वह चौबीसों घंटे बड़ा नहीं रह सकता। जीवन के सामान्य व्यवहार तो प्रतिदिन उसे भी करने पड़ते हैं; प्रतिदिन मनुष्य जैसा मनुष्य, खाये-पिये और सोये तथा जीवन के दूसरे व्यवहार देखे-भाले। इसकी महत्ता की माप इन सब बातों में नहीं होती, पर इन सब को प्रज्वलित करनेवाले थोड़े से ही प्रकाश के क्षणों में होती है। ऐसे क्षण मोतीलालजी के जीवन में बहुत आये होंगे, यह तो हम अवश्य मान लें। आज उनकी सब शक्तियाँ जिनका बहुत कुछ फल उन्हें देखने को न मिला, ऐसी लड़ाई करने में नष्ट होती रही हों। स्वतंत्र देश में ये पैदा हुए होते तो प्रजा के शक्ति-सञ्चय में इनकी शक्ति व्यय होती। गुलाब के फूल जंगल

में उगें तो कुम्हला जायँ, किसी विलासी के हाथ पड़ें तो मसल दिये जायँ, मंदिर में ले जाये जायँ, तो देवता के सिर पर चढ़ें। फूल की जाति एक-सी ही है। किस स्थान पर ये जा बैठें इसी पर इनकी महत्ता का आधार है। मोतीलालजी की शक्तियाँ भी लड़-लड़ कर व्यर्थ जा रही हैं।

मोतीलालजी महान् व्यक्ति हैं पर उनकी महत्ता उनकी अपनी होने की अपेक्षा उनकी परिस्थितियों के बल पर अधिक है। कौन सी धन्य घड़ी थी जब ये गांधीजी के हाथों चढ़े और गांधीजी के साथ मिले। और दूसरी शुभ घड़ी में जवाहरलाल जैसा युवकों का नायक पुत्र इन्हें मिला। जो व्यक्ति में अपना जबरदस्त व्यक्तित्व और दूसरे दो जबरदस्त व्यक्तित्वों की उसे चौबीसों घंटे प्रेरणा! साथ ही पैसा कमाने की शक्ति भी जबरदस्त और उससे मोतीलालजी जो आज हैं वह इन सब संयोगों के परिणामस्वरूप। मोतीलालजी अकेले होते तो आज जैसे जिन्ना, जयकर हैं उनसे अधिक ऊँचे न होते। धन, प्रतिष्ठा, महत्वाकांक्षा, मनुष्य को बहुत ऊँचे ले जा सकते हैं, पर देश का भावी निर्माण करने में तो मनुष्य को प्रेरणा तथा भावी में दूर तक देखने की शक्ति दोनों ही काम आती हैं—दूसरी शक्तियाँ भले ही सहायता करती रहें।

आज यरवदा जेल में भारतवर्ष के भविष्य का निर्माण हो रहा है और इसके निर्माण करनेवाले हैं मोतीलालजी। समय के यान पर क्या समाचार आयेगा यह तो समय ही बतायेगा, पर मेरे मन में जो एक वाक्य आया है, वह है मोतीलालजी! मोतीलालजी!! तुम जा रहे हो—पीछे मुड़कर देखते तो जाओ क्या इसमें भविष्य की कुछ दूरदर्शिता होगी?'

आर्थर रोड जेल,

१५-८-३०

भूलाभाई देसाई

कारखाने में काम करनेवाले मजदूर पर आज सारी दुनिया दया दिखा रही है। और आजकल के वातावरण में से इसे ऊपर ले जाने के लिए, इसका शरीर सुधारने के लिए, इसका मन ऊँचा करने के लिए, इसे काम करनेवाले यंत्र के बदले जीवित मनुष्य बनाने के लिए—संक्षेप में इसे जीवन में कुछ ध्येय देने के लिए दुनिया के दयालु पुरुष दुनिया-भर में कुछ न कुछ उपाय बता रहे हैं। पर जो मनुष्य शरीर से मजबूत हो, पैसे से सुखी हो, बुद्धि में तीव्र हो, लोगों में प्रतिष्ठित हो, और महत्ता को मापने की शक्ति जिसमें हो, पर फिर भी किसी कारण से आगे न बढ़ सकता हो, तो उसकी दशा और भी अधिक दयनीय है—यह तो ये दयालु पुरुष मानते ही होंगे ?

श्री भूलाभाई देसाई में यह सब है और फिर भी महत्ता के और इनके बीच एक बड़ी दीवार खड़ी हो, ऐसा लगता है। इन जैसे व्यक्तियों के लिए अवसरों का अभाव नहीं होता, अभाव होता है तो केवल ध्येय का ही।

परन्तु इस समय तो भूलाभाई अपने पर लिपटी हुई राख को झाड़ देंगे, यह बहुतों को लग रहा था। महात्मा गांधी दाँडी-यात्रा के लिए अहमदाबाद से निकले तभी दुखी मन से भूलाभाई को चुपचाप कोर्ट में फिरते देख बहुतों ने यह भी मान लिया था कि राख झड़ जाने से अग्नि प्रज्वलित हो उठी है। पर बाद में इसका कारण मालूम हुआ कि भूलाभाई की दाढ़ दुःख रही थी और राजकीय परिस्थिति से दाढ़ का दुःख उनके इस दुःख-प्रदर्शन के लिये अधिक कारणभूत था। परंतु फिर भी गांधीजी का

दाँडी-प्रयाण इन पर बिलकुल ही निष्फल नहीं गया। इन्होंने वल्लभभाई की गिरफ्तारी रोकने के लिए धारा-शास्त्रियों की एक सभा बुलायी और स्वदेशी लीग की स्थापना की। ग्रेज्युएटों को हिन्दुस्तान में बना हुआ स्वदेशी माल खरीदना चाहिये यह प्रस्ताव भी इन्होंने एक दूसरी सभा में पास किया। यह प्रस्ताव इन्हें भी पूरी तरह बन्धन में बाँधता है या नहीं यही अभी मालूम नहीं हुआ। आम जनता कला परखने वालों की दृष्टि से भले ही आये, इनका भाषण सुनकर प्रशंसा कर जाय तो भी कुछ हानि नहीं। परन्तु भारतवर्ष का स्वराज्य तो यथाशक्ति (!) स्वदेशी का प्रयोग कर ग्रेज्युएट ही लानेवाले हैं, यह भूलाभाई को पक्का विश्वास है। किसी समय ये प्रोफेसर थे इसलिए वर्षों से भूली हुई कविताओं की कड़ियाँ यादकर ग्रेज्युएटों के सामने बोल जायें तो भाषण और भी प्रभावोत्पादक बन जाता है, यह बात भी ये कभी नहीं भूल पाते।

श्री भूलाभाई के मूल स्वभाव में सद्तत्व अधिक है, पर इन पर निरुद्देश जीवन तथा पैसा कमाने की शक्ति ने बहुत से पर्त चढ़ा दिये हैं। ये पैसा कमाते हैं, केवल कमाने के लिए, जीवन में और कुछ करना नहीं और कमाने की पुरानी आदत है इसलिए! आज भूलाभाई पैसा कमाना बन्द कर दें, तो भी उनकी स्थिति में रत्तीमात्र भी अन्तर नहीं आनेवाला। धीरुभाई के अतिरिक्त दूसरे बाल-बच्चों का जंजाल इनके साथ नहीं और आजकल के जमाने में खर्चीला समझा जानेवाला पत्नी रूप प्राणी है नहीं, कि जिसके लिए जीवन भर पसीना बहाकर पैसा कमाने की आवश्यकता पड़े। और इनके जैसे शक्तिसम्पन्न तथा साधन-सम्पन्न मनुष्य की देश को आवश्यकता नहीं है यह तो कौन कह सकता है!

व्यय करने पर भी समाप्त न हो, इतनी आमदनी में से परमार्थ के कामों के लिए कोई माँगने जाय तो खासकर कोई जान-पहचान का—स्त्री हो या पुरुष भूलाभाई अवश्य उसे कुछ न कुछ देते हैं। और पैसे खर्च करने पर मैं पैसा खर्च कर रहा हूँ यह भान सदैव बना रहता है।

भूलाभाई पर बीरबल और बादशाह की पुरानी कहानी का कौन-सा उदाहरण लागू होता है यह कहना बहुत कठिन है। कहानी इस प्रकार है—

एक बार अकबर बादशाह ने बीरबल से पूछा, "बीरम्ल, तुम में कितने गुण हैं ?"

बीरबल ने विचार कर जवाब दिया, "जहाँपनाह ! मुझमें दो गुण हैं और अट्ठानवे दोष हैं।"

बादशाह बड़े खुश हुए और पूछा, "और मुझमें।"

"आलीजहाँ, आप में अट्ठानवे गुण हैं और दो दोष हैं।"

"बीरबल, तब तो मैं तुमसे कितना अच्छा हूँ ?"

"जहाँपनाह ! मुझ में जो दो गुण हैं, उनसे मेरे अट्ठानवे दोष ढँक जाते हैं। आप में जो दो दोष हैं वे आपके अट्ठानवे गुणों पर पानी फेर देते हैं।"

ये दो गुण या दो दोष सारी दुनिया जानती है। श्री भूलाभाई पर यह वर्णन बहुत अंशों में लागू होता है।

भूलाभाई में एक प्रकार का प्रखर व्यक्तित्व है, वह बहुधा सूर्य की तरह दूर से गर्मी देता है और पासवालों को जलाता है। इसलिए इनके बहुत से पास रहनेवाले के व्यक्तित्व का अविकसित रह जाना अथवा सूख जाना संभव है। अपने से भिन्न अभिप्राय शायद ही इनसे सहा जाता हो।

हमारी प्राचीन कहावत के अनुसार 'जो मिले उसे सिर दे, ऐसा इनका स्वभाव है। इनके लिए मध्यम मार्ग नहीं। या तो ये उसे चाहें अथवा धिक्कारें। भूलाभाई किसी तरफ भी तटस्थ नहीं रह सकते और कोई इनकी ओर भी कदाचित् ही तटस्थ वृत्ति रख सकता है। जो दुनिया इनके चारों ओर वर्तुलाकार न फिरे वह इनके किसी काम की नहीं। पर वास्तव में ये सब बलवान् व्यक्तित्व के लक्षण हैं, और भूलाभाई का

व्यक्तित्व देखते हुए, इन्होंने यदि अपने आप ही अपने चारों ओर दीवारें खड़ी न की होतीं तो इस व्यक्तित्व का बल बहुत ऊँचे तक पहुँचता।

परंतु ये दीवारें इन्होंने जान-बूझकर खड़ी नहीं कीं, बल्कि विवेचन-प्रिय (critical) मस्तिष्क का यह एक स्वाभाविक परिणाम है। वस्तु के गुण-दोष को ये बहुत गहराई तक देख सकते हैं और प्रत्येक विचार भावना तथा कार्य की निरर्थकता पर वे दर्शनशास्त्र के विश्लेष्णात्मक दृष्टिकोण से विचार करते हैं। 'दुनिया को सुधारने के आज तक अनेकों प्रयत्न हुए, किसी एक से भी दुनिया तिलभर ऊपर उठी है?' 'मान लो कि यह कर लिया गया तो फिर क्या होगा?' इनका मस्तिष्क हमेशा प्रत्येक विचार और कार्य के पहले यह प्रश्न पूछता है और इसका उत्तर मिलता नहीं, इसलिए इसको करने भी आवश्यकता नहीं, ऐसा ये मानते हैं। अभी इनको कोई विचार या भावना इतनी महान् दिखाई नहीं दी कि अपने प्रवाह में इनको बहा ले जाये। बहुधा इस प्रकार बह जाने तथा हमेशा की इस मस्तिष्क की अशांति से छुटकारा पाने के विषय में ये सोचते होंगे, परंतु उससे छुटकारा पाने की इनमें शक्ति नहीं है। और तर्क तथा शंका के पार जाकर किसी आदर्श या भावना की लहरें जब तक इनको बहाकर नहीं ले जायेंगी तब तक इस अशांत मस्तिष्क से इन्हें मुक्ति मिलने वाली नहीं।

भूलाभाई के मन में एक बड़ा भारी भय है। इस लोकमत-वाद के युग में चाहे जैसे बड़े आदमी को चाहे जैसे छोटे आदमी के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम करना पड़ता है और चाहे जैसे निरक्षर भट्टाचार्य को चाहे जैसे विद्वान् की आलोचना करने का अधिकार है, यह इनसे सहा जा सके, यह सम्भव नहीं। आज तक इन्होंने अपने चैंबर में बैठकर अपने आस-पास की दुनिया पर राज्य किया है। अपना स्वार्थ लेकर मुवक्किल के रूप में आनेवाले व्यक्तियों को धमका सकें, उन पर राज्य कर सकें, और स्वार्थ का मारा मनुष्य सब कुछ चुपचाप सुन भी

ले, पर जिस घड़ी भी मनुष्य की मध्यस्थता मिट जाय और ये स्वयं काम करें तब इन्हें भला या बुरा दोनों करनेवाले इस दुनिया में हैं। और कोई भी मनुष्य स्वयं मुँह पर अपने कार्यों की टीका कर जाय, ऐसी स्थिति में वह पहुँच जायें, इस बात की भूलाभाई कल्पना भी नहीं कर सकते। इनका मस्तिष्क अच्छा है; पर एकाधिकार सत्ता भोगनेवाले राजा जैसा 'मैंने तुम्हारे लिये यह भलाई की है, तुम स्वीकार करो।' और कोई भी मनुष्य इस अच्छी निष्ठा से किये हुए कार्य की ओर चाहे सकारण भी यदि बाधा उठाये तो इन्हें आश्चर्य होता है, और खीज उठते हैं। 'मैं लोगों की भलाई के लिए करता हूँ और लोग समझ नहीं पाते।' 'मैं सर्वोपरि सत्ता हूँ, मेरे सामने बोलनेवाला कौन?' ऐसी राजा जैसी मनोवृत्ति हो जाना स्वाभाविक ही है। पर चाहे जैसी भली क्यों न हो पर आज का युग ऐसी एकाधिकार सत्ता का आदर नहीं करेगा, यह बात जैसे वह परोपकारी राजा भूल जाता है उसी प्रकार भूलाभाई देसाई बुद्धि से यह बात समझते हैं, पर अपने स्वभाव के कारण इसे भूल जाते हैं। फिर ऐसे सामान्य व्यक्तियों के समूह में अपने गौरव और सम्मान की रक्षा नहीं हो सकती, यह भय भी इन्हें सदैव लगा रहता है। कदाचित् पुरानी होमरूल लीग के दिन और अपनी निष्फलता का पाठ अभी ये भूले न हों, यह भी एक कारण हो सकता है। पर भूलाभाई वन में घुसकर आधा वन पार कर चुके हैं, आज भी यदि ये ऐसा भय अपने मन से न निकालेंगे तो विलम्ब हो जायगा—हमें ऐसा भय लगे तो स्वाभाविक ही है।

और जिनमें मनुष्य की उम्र बीत गई हो ऐसी अपनी रहन-सहन, अपनी आदतें तथा अपना स्वभाव यह सब बदलना कहीं सहज है? आज के स्वतंत्रता आंदोलन में शरीक होऊँ, यह मन होने पर भी भूला-भाई से हो नहीं पाता। क्या यह इस बात का सबसे बड़ा सबूत नहीं है? मकड़ी की तरह निकाले हुए जाल में मनुष्य स्वयं बँध जाता है और

बहुत थोड़े मनुष्य ही इस बंधन को तोड़ने में सफल होते हैं। प्रत्येक अनुकूलता होने पर भी यह बंधन आज भूलाभाई से नहीं तोड़ा गया। आनेवाले कल की बात ही क्या? और रात-दिन कचोटने-वाले अपने मस्तिष्क को शांत करने के लिए बंधन में रहकर भी यथाशक्ति करने के लिए क्या ये प्रयत्न नहीं करते? इन्होंने बंबई और अहमदाबाद के बीच धक्के खाकर तथा अपने व्यवसाय को भुलाकर, अहमदाबाद के मिल मालिकों के साथ समझौता करने का प्रयत्न किया। देश-सेविका संघ की बहिनों को सलाह देने का पुण्योपार्जन किया। कपड़े के व्यापारियों को एक भी सोने की मुहर लिए बिना ही मुफ्त की सलाह दी। मकड़ी अपना जाला कब तोड़ेगी?

भूलाभाई के द्वारा काम निकालने वाले, इनके 'अहं' से बहुधा डरा करते हैं। भूलाभाई की बुद्धि तीव्र है और धाराशास्त्री की तरह इनकी बुद्धि बहुत गहराई तक पहुँचती है। भूल में भी यदि झूठा मुद्दा पकड़ लिया गया हो तो फिर ब्रह्मा भी क्यों न आ जाय, इस झूठे का सच नहीं हो सकता। इन्हें अपनी बुद्धि पर खूब विश्वास है। भूल हो जाने के बाद भी इन्होंने भूल की है, इनका 'अहं' नींद में भी इस बात को स्वीकार नहीं करने देता।

स्त्रियों के लिए भूलाभाई को आकर्षण है पर सन्मान नहीं। स्त्रियों में बहुत कुछ कर डालने की शक्ति होती है यह भी ये नहीं मानते। पर अपनी ऐसी धारणाये होने पर भी बंबई की पहली स्त्री बैरिस्टर मिस टाटा को पिता की तरह मदद करने का इन्होंने हमेशा प्रयत्न किया है, यह इनके लिए शोभनीय ही समझा जा सकता है।

प्रत्येक मनुष्य गुण और दोष का भंडार है और भूलाभाई में थोड़े गुण और थोड़े दोष दोनों का मिश्रण है। मनुष्य के उच्च हेतुओं की अपेक्षा उसके नीच हेतु इनके ध्यान में पहले आते हैं।

इन्हें ऊपरी शान-बान तथा महत्ता अच्छी लगती है, पर आयु के या

स्वभाव के कारण ये एक सीमा से आगे जाने या खतरा उठाने के लिए तैयार नहीं। अपनी कुर्सी पर बैठे-बैठे ये आपको सलाह दें, आपके कार्यों के हेतुओं का पृथक्करण करें, और आपको मार्ग बतावें पर कार्य आपको करना होगा। भूलाभाई में पंडित मोतीलाल जी जितनी बुद्धि हो भी, पर पंडितजी जितने स्वार्थ-त्याग बिना तथा स्वयं काम किये बिना, इनको ऐसा स्थान नहीं मिलने वाला, ऐसी स्पष्ट बात दुबारा कहने की क्या आवश्यकता है ?

सचमुच, भूलाभाई इस समय एक बंधनग्रस्त आत्मा हैं। बुद्धि से भावना की पाँख देखते हैं, फिर भी भावना इनसे पकड़ी नहीं जाती। पिंजरे में रहकर पक्षी के उड़ने की शक्ति कम हो जाती है, इस प्रकार आत्म-संतोष के पिंजरे में पड़ी हुई इनकी आत्मा महत्ता का विशाल व्योम देखती है फिर भी उससे उड़ा नहीं जाता। भूलाभाई में सब कुछ है पर यह साहस कब आयेगा ?

आज ये एक विजयी धारा-शास्त्री हैं। परन्तु भूलाभाई आज क्या हैं ? क्या हो सकते थे ? सिद्धि के बिना आज ये सब संभावनाएँ मात्र हैं।

आर्थर रोड जेल,

२८—७—३०

श्री नरसिंहराव भोलानाथ

कुछ वर्ष पहले एक दिन घर में बेकार बैठे-बैठे कहीं से 'शाकुंतल' की एक प्रति मेरे हाथ लगी और बीच में से खोलकर पढ़ते हुए, दुर्वासा ऋषि शकुंतला को शाप देते हैं, यह अध्याय पढ़ा। और पढ़ी हुई किताब को दुबारा पढ़ना न अच्छा लगने से सोफे पर आँख मींचकर बैठ गई। 'ये दुर्वासा ऋषि कैसे होंगे? लम्बी जटा, विशाल चमकती हुई आँखें और क्रोध से लाल हुआ मुख।' और एक विचार आया—बन्दर की तरह दूसरी डाली पर मस्तिष्क ने छलांग भरी—मुझे नरसिंहराव याद आये। क्या अनजाने भूत और वर्तमान की एक-सी मूर्तियों की समता अन्तर में सहज ही स्फुरित हो उठी होगी? हो भी सकता है।

नरसिंहराव भाई में बहुत से गुण तथा थोड़े से अवगुण हैं, और क्रोध उनमें सबसे प्रमुख है। इनको क्रोधित करने के लिए या स्वयं क्रोधित होने के लिए छोटी से छोटी बात पर्याप्त होगी। कोई इनके शब्दों पर टीका करे, कोई इनके विचारों से सहमत न हो, कोई इनकी बीमारी में देखने न जाय, किसी के शब्दों में इनका अपमान करने का भाव या ऐसी ये कल्पना करें, कोई इनकी श्रेष्ठता पर आक्रमण करता है ऐसा ये मान लें या कोई इनके गम्भीर संगीत-ज्ञान पर स्वीकारोक्ति न दे, तो इनका मिजाज अवश्य बिगड़ गया समझिये। ये सब वस्तुएँ एक साथ पूरी करनी चाहिए यह भी नहीं। इनमें से एक भी वस्तु के होने की जरा सी शंका इन्हें हो जानी चाहिये, वही बहुत है। इसके परिणाम में थोड़ी सी सादी शिक्षा सुनकर ही आपका छुटकारा हो जायगा या फिर लम्बी-लम्बी

आलोचनाएँ, उनके उत्तर और फिर उनके उत्तरों की लपेट में आप आ जायेंगे; और कभी बात इससे भी आगे बढ़ जाय तो क्या होगा, यह कल्पना करने का काम आपका है।

नरसिंहराव से लड़ाई बड़ी असाधारण की होती है। इनकी अवस्था का आपको सम्मान करना चाहिए यह आप मानेंगे और ये भी, इसलिए कि जिस भाषा तथा जिन मुहावरों का ये प्रयोग करें वह आप नहीं कर सकते। ये यदि सरस और युक्तिपूर्वक आलोचना लिखें और आपकी हँसी उड़ाने का प्रयत्न करें तो यह उनकी विद्वत्ता तथा अवस्था के योग्य है, यह समझना होगा। उनकी भाषा के प्रभुत्व की प्रशंसा हो, और उनके प्रति उदीयमान विद्वानों की श्रद्धा और भी अधिक बढ़े। उनकी आलोचना यदि निरर्थक और हँसी का मिथ्या भास कराती हो, तो उसे वृद्धावस्था की भूल समझ कर उसकी ओर ध्यान न दें। परन्तु नरसिंहराव के प्रति-स्पर्धी को इनमें से एक भी वस्तु सुलभ नहीं होती। वह विद्वानों में प्राचीन योगी (past master) न हो उसी प्रकार उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिये तत्पर न हो। उनके प्रति उद्धत या व्यंगात्मक शैली का तो प्रयोग किया नहीं जा सकता, नहीं तो आजकल के छोकरों द्वारा बड़े-बूढ़ों का अपमान कहा जायगा। और यदि इन्होंने बहुत सुन्दर तथा युक्तिपूर्ण लिख दिया तो 'बेचारे बूढ़े को खूब कह डाला, अब बुढ़ापे में उसे इस तरह न छेड़ना चाहिए।' इसके अतिरिक्त प्रशंसा का एक भी अक्षर सुनने को न मिलेगा। बूढ़े होने से जिस प्रकार असुविधाएँ बहुत बढ़ जाती हैं उसी प्रकार सुविधाएँ भी बहुत हैं।

अपनी विनोदवृत्ति में यदि किसी को श्रद्धा है तो वह श्री नरसिंह-राव को। सभी के संस्मरण ये अपने 'स्मरणमुकुर' में संग्रहीत करते हैं, और इस मुकुर से विनोदी समझे जानेवाले वक्र किरणों के प्रतिबिंब बाहर निकाल सकते हैं। इनका मुकुर संग्रहण भी अद्भुत है। श्री भोलानाथ साराभाई का कुटुम्ब इसके मध्य भाग में है और इसका

प्रतिबिंब-बहुत सुन्दर रीति से उसमें पड़ता है। शेष सभी इधर-उधर कोने में बैठे या स्मरण की अद्भुत शक्ति से संग्रहीत हों, इस प्रकार टेढ़े-मेढ़े दिखाई देते हैं। मुकुर-विनोद श्री नरसिंहराव स्वयं करते हैं, किसी के घर दाल-भात नहीं मिले, किसी का उच्चारण शुद्ध बोल-चाल के मापदंड से देहाती था ये सब बातें इन्हें बहुत सुन्दर ढंग से याद रहती हैं। विद्वत्ता और संस्कार भोलानाथ साराभाई के परिवार के अतिरिक्त और कहीं भी उपलब्ध हो सकते हैं, यह तो नरसिंहराव मानते होंगे।

परन्तु इन सब बातों के लिए नरसिंहराव अकेली स्मरण-शक्ति पर ही निर्भर नहीं रहते। इनके रोजनामचे में अथवा इनकी घंटा डायरी या मिनट डायरी जो कहो, उसमें अपने मस्तिष्क के चश्मे से देखी हुई प्रत्येक बात का उल्लेख होता है। और इसका उपयोग ये बीस या पचीस वर्ष से किसी अकस्मात् घड़ी पर करते हैं, जब कि इस बात में भाग लेनेवाले के मन से यह बात बिलकुल भूल गई होती है या इस समय साक्षी या तो मर गये हों या उनको यह बात याद न आती हो और नरसिंहराव की डायरी—यही एक लिखी हुई दस्तावेज—मिलती हो, उस समय दूसरी दस्तावेजों की गैरहाजरी में, जो ये कह रहे हैं वह झूठ है या सच, यह खोज निकालने का कोई भी साधन किसी के पास नहीं होता। और डायरी लिखते समय श्री नरसिंहराव किस क्षण किस 'मूड' में थे यह कौन कह सकता है?

श्री नरसिंहराव की विनोद-वृत्ति का चश्मा पहनी हुई आँखों में एक खूबी है। इनका विनोद दूसरे को हँसी उड़ाने में मजा लेता है, पर अपने पर होनेवाला विनोद सहन करने जितनी सहन-शक्ति प्रभु ने इन्हें नहीं दी।

किन्तु इनके झगड़ालू स्वभाव से दबा हुआ एक कोमल हृदय भी है और गर्वीले मन के साथ-साथ एक प्रकार का गौरव भी इनमें है।

इनके शब्द—बहुधा गरमागरम मस्तिष्क से जल्दी में निकले हुए शब्द—कड़ुवे भले ही हों पर इनका उद्देश्य कदाचित् ही कड़ुवा होता हो। इन्हें अपने गौरव का बहुत हलका भान है, और इस गौरव की आप रक्षा कर रहे हैं, इन्हें यह विश्वास हो जाय तो फिर ममता दिखाने में भी यह वृद्ध कसर नहीं करते।

और अपनी प्रतिष्ठा सुरक्षित रखने की उन्हें इतनी अधिक चिंता है, यह हम भी समझ सकते हैं। जिस जमाने में ये पैदा हुए थे उसमें स्वातंत्र्य की बात शब्दों में करनेवाले बहुत होंगे, पर व्यवहार में स्वातंत्र्य की रक्षा करने और बड़े आदमियों की पर्वाह न करनेवाले स्वभाव के व्यक्ति थोड़े ही होंगे। श्री भोलानाथ साराभाई जैसे आदि सुधारक के यहाँ जन्म लेकर एक तो नरसिंहराव इस प्रांत के और बंगाल आदि दूसरे प्रांतों के सुधारकों के सम्पर्क में आये। सर्वप्रथम बड़े आदमी के पुत्र, फिर सरकारी नौकर और कलक्टर तक की पदवी तक पहुँचे हुए। कवि रूप में भी अपने समय में इनका जीवन यशस्वी रहा। और इन सबके मिश्रण से इनके मन में अपने गौरव का भान विशेष हलका हो गया हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? और इस गौरव को कोई अनजान या अटकलपच्चू विद्वान असावधानी में भंग न कर दे इस बात की चिंता इन्हें हो तो क्या यह स्वाभाविक नहीं है?

और यह सब कुछ होने पर भी श्री नरसिंहराव में बालक की-सी सादगी है। इनका बात करने का ढंग कभी-कभी एक बड़े बालक जैसा लगता है, और जब ये चिढ़ते हैं तो बिलकुल एक नन्हें बालक बन जाते हैं। बालक की तरह इनसे भी समझा-फुसला कर काम निकालना पड़ता है। बालक जैसी इनमें जिद है और बालक जैसी इनमें आप-मति भी। पर जब प्रसन्न हो जायँ तो फिर बालक जैसा मीठा बर्ताव भी करते हैं। कदाचित् यह वृद्धावस्था दूसरा बचपन हो तो कौन जाने?

नरसिंहराव में सावधानी खूब है। प्रत्येक वस्तु के विषय में ये कुछ

लिख लेते हैं। प्रत्येक लेख के पीछे ये उसकी जरा-जरा-सी बातें देखने का श्रम करते हैं। और इनके 'हकार' या 'सकार' शब्द के 'ह' और 'स' कहीं ऐसा न हो कि प्रूफ में भी बदल जाये इसकी ये विशेष चिंता रखते हैं।

स्पेलिंग के विषय में इन्हें आज भी बहुत युद्ध करना पड़ा है। स्वयं योद्धा और उसमें भी यह स्पेलिंग का क्षेत्र मिला। 'ह' और 'स' इनके दो खास मूलाक्षर हैं, और 'हमारूँ', 'हेमनुँ', 'सकशुँ', 'सके' इत्यादि इनके खास शब्द हैं और शुद्ध मुखिया के मोहल्ले के घर के उच्चारण जैसे 'कांणी' के बदले 'कुहुणी' के साथ कृतज्ञतापूर्वक आज भी दृढ़ हैं। ये बातें देखने में बहुत छोटी हैं पर इनके साहित्य में हुए परिणाम बहुत चिरस्थायी हैं। और उसके लिये नरसिंहराव ने अति उग्र तपश्चर्या भी की है। इसके लिए इन्होंने बहुत से गंभीर और विनोदी घाव झेले हैं, फिर भी आज तक इन्होंने बिलकुल सिर नहीं झुकाया—और झुकायेंगे भी नहीं।

नरसिंहराव सर्वोत्तम नहीं तो अच्छे कवि हैं, यह सब कोई मानेंगे, दलपत के बाद प्राचीन कविता का युग समाप्त हो गया और नर्मद ने नवीन कविता का मार्ग दिखाया और उनके बाद नवीन कविता के जो पाँच-छः लेखक हुए उनमें से महत्वपूर्ण स्थान नरसिंहराव का है। वर्ड्स्वर्थ की तरह इनमें एक प्रकृत कवि के भी गुण हैं। कदाचित् इनके प्रिय अंग्रेजी कवियों का अनुकरण भी हो। 'तारे', 'चाँद', 'मेघ', 'व्योम' जैसे प्रकृति के तत्व इन्हें खूब आकर्षित करते हैं और इनकी मानव दुःख से प्रेरित कविताओं में भी प्रकृति-वर्णन अवश्य आता है।

नरसिंहराव केवल कवि ही नहीं, बल्कि गुजराती के एक अच्छे गद्य लेखक भी हैं, और साथ ही भाषा-शास्त्री भी। विल्सन फाइलोलॉजिक्स लेक्चर्स बहुत समय तक इनके संस्मरण रूप में सुरक्षित रहेंगे।

साथ ही ये संगीत-निपुण भी समझे जाते हैं। नरसिंहराव के सभी गुण मुझे स्वीकार हैं, पर यह अंतिम नहीं। ये कवि हैं यह मैं मानती हूँ, ये अच्छे गद्य-लेखक हैं, यह भी मैं मानती हूँ; इनके भाषा-शास्त्र के विषय में भी मुझे शंका नहीं, पर इनके संगीत विषयक ज्ञान से मैं वास्तव में घबराती हूँ। जिन दो-तीन अवसरों पर मैंने इनका संगीत सुना है, उनमें इनका स्वर, लय, तान, ताल सब संगीत से विरुद्ध थे। संगीत-शास्त्र का ज्ञान और संगीत-शक्ति ये दो भिन्न वस्तुएँ होने से यह हो भी सकता है, पर नरसिंहराव यह बात कबूल कर लें, ऐसा मुझे विश्वास नहीं।

नरसिंहराव के जीवन में सुशीला काकी का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। इनका मिजाज वस में रखने की शक्ति यदि किसी में है तो वह सुशीला काकी में। और सुशीला काकी एक ही बात में इनकी देख-भाल नहीं करतीं इनके रुग्ण शरीर की सुश्रूषा करें, ये किसी पर बिगड़ जायें और और उसे बुरा-भला कहने लगें तो इन्हें रोकें, इनकी सभी आज्ञाओं का का अनुसरण करें और इनकी प्रत्येक इच्छा को पहले से ही जान कर उसी के अनुसार अपना व्यवहार बना लें, ये सब गुण सुशीला काकी में हैं। कुछ ही बड़े आदमी अपनी पत्नियों के विषय में इतने भाग्यशाली होते हैं। गांधीजी को कस्तुरबा मिलीं, नानालाल को माणिकबा मिलीं, गोपालदास को भक्तिबा मिलीं, चंद्रशंकर को बसंतबा और सुधा मिलीं तथा नरसिंहराव को सुशीला। अभी तो और बहुत सी युगल जोड़ियाँ गिनायी जा सकतीं हैं, पर अभी इतना ही पर्याप्त होगा।

नरसिंहराव के स्नेह का एक दूसरा स्थान है और वह है उनकी पुत्री लवंगिका। देवयानी की तरह पिता-भक्ति लवंगिका के हृदय में लिखी है। यह पिता की प्रशंसा करती, पिता के आदर्शों पर जीवन व्यतीत करती, पिता की रक्षा का भार सिर पर लेती और पिता-मय जीवन बिताती है। पिता की शक्तियों और स्वभाव का पैतृक भाग भी

थोड़ा-बहुत उसको मिला है। सौ० लवंगिका नरसिंहराव की पुत्र सदृश पुत्री है।

और प्रेमल! बिना माँ-बाप का मातृहीन बालक! जिस भाव से दादा-दादी उसका पालन-पोषण करते हैं उसमें सचमुच दिव्यता का अंश है।

श्री नरसिंहराव में जितना सुन्दर हृदय है, वैसी ही मीठी यदि वाणी होती, जितनी इनमें उदारता है, उतनी ही यदि इनके स्वभाव में शांति होती, तो आज जो ये हैं, उससे बहुत अधिक महान् होते। कड़ुवी वाणी के कारण इनका स्वातंत्र्य-प्रेम बहुधा उद्धताई का रूप ले लेता है, और अपने गौरव के प्रति इनकी चिंता, अपने को बड़ा समझने के आडंबर का भास कराने लगती है। स्वभाव से ये भावना-प्रधान हैं, और 'नर्वस' भी हैं। अब तो छोटी-छोटी बातों में भी ये बिगड़ जाते और आवेश में आ जाते हैं। पर इससे क्या! स्वतंत्र स्वभाव के मनुष्यों का जब अभाव नहीं था उस युग में ये स्वतंत्र मनुष्य थे। इन्होंने समाज-सुधारों के लिए बहुत कुछ किया। गद्य-काव्य और भाषादेवी की भक्ति करने में इन्होंने रात-दिन अपना तन और मन खपाया और प्रगति के पंथ में एक लंबा मार्ग बना दिया था। यह बात इनके जीवन की सफलता सिद्ध करने के लिए बहुत है।

आर्थर रोड जेल,
१५-८-३०

श्री खुशाल शाह

पृथ्वी में जिस प्रकार गर्मी और पानी दोनों हैं, बर्फ जिस प्रकार ठंडा लगता है पर गुण में गर्म कहा जाता है, उसी प्रकार प्रो० खुशाल तलकशी शाह भी विरोधी तत्वों के भंडार हैं। इनकी बुद्धि बहुत तीव्र है, पर हठ पर चढ़ जाय तो कभी-कभी बालक जितनी बुद्धि भी इनमें नहीं रहती। इनका स्वभाव उदार है, पर बहुधा ये हलकी से हलकी बात को भी याद रखते हैं। मित्र की तरह ये सर्वस्व दे देते हैं पर शत्रु रूप में कोई भी हथियार इनके लिये त्याज्य नहीं है।

परन्तु खुशाल शाह बुरे आदमी नहीं। मूल रूप में तो ये वास्तव में अच्छे व्यक्ति हैं, पर इनके शरीर की तथा मस्तिष्क की शक्तियाँ एक दूसरे से विरोधी दिशाओं में चलती हैं और इस कारण इन दोनों के बीच संग्राम चला ही करता है। इनकी बुद्धि का लाभ उठानेवाले बहुत से मित्र इनके आस-पास आते-जाते हैं, पर अभिमानी स्वभाव के कारण दुश्मन बनाने में भी इन्हें देर नहीं लगती और इन जैसे जिद्दी आदमी मिलने बहुत कठिन हैं।

खुशाल शाह की बात करने की शक्ति विविधतामयी तथा आकर्षक है और उसमें साथ ही दूसरे तत्व लाकर ये बात को और भी अधिक सरस बना सकते हैं। इनकी वाणी में अमृत और विष दोनों हैं और इन दोनों का उपयोग ये अपनी इच्छानुसार कर सकते हैं। बुद्धि के ऊँचे से ऊँचे प्रदेश पर से निंदा के गांभीर्य में दो-चार डुबकियाँ लगाकर फिर ये समतल पर आते हैं। कभी ये डूबते हैं और कभी तैरते। सामनेवाले मनुष्य का तात्कालिक विश्वास खींचने की शक्ति इनमें है; परन्तु क्या

यह विश्वास रखना इन्हें आता है? अलग-अलग लोगों के अलग-अलग अनुभव हैं।

संतुलन शाह के स्वभाव का विशेष गुण नहीं और अपनी बुद्धि का बहुत गर्व होने पर भी दूसरों से—विशेषकर स्त्रियों से—ये आकर्षित बहुत होते हैं। शाह के हृदय में स्त्रियों के प्रति सम्मान है और इन्हें स्त्रियों की संगति अच्छी लगती है। स्त्रियों की संगति अच्छी लगती तो है बहुतों को, पर शाह इस विषय में कोई बात गुप्त नहीं रखते और दूसरे रखते हैं। आज बंबई के बहुत से बुद्धिशाली मित्रों की स्त्री-मित्र हैं तो शाह के भी हैं और इसका कारण यह है कि शाह स्त्रियों को पुरुषों के साथ समानता की अधिकारिणी समझते हैं। इनके आत्म-सम्मान का संसार में कई जगह से पहुँचनेवाले आघातों को ये मित्र जरा सहला आते हैं और इससे इनमें फिर से आत्मविश्वास पैदा हो जाता है। श्री शाह स्त्रियों की अपनी बुद्धि से सहायता करते हैं और यह बुद्धि इन्हीं की है इसका अनुभव कराते हैं। श्री शाह स्त्रियों को कभी भी उनके अधिकार नहीं भूलने देते, सदैव याद दिलाते रहते हैं और किसी जगह उद्धतपन भी हो तो उसे स्वतंत्रता का सुन्दर नाम देने में शाह को संकोच नहीं होता।

शाह का स्वभाव जितना बुद्धि-प्रधान है उससे अधिक भावना-प्रधान है। जीवन में इन्हें स्त्री का साथ नहीं मिला, पर स्त्रियों का सहवास इनका स्वभाव चाहता खूब है और जिस किसी स्त्री के सहवास में ये आते हैं उसे पूर्णतया देखने की इनमें इच्छा या शक्ति नहीं। इनके स्वभाव या शरीर में दो एक प्रकार के लावण्य की शाह कल्पना करें और फिर शेष व्यक्तित्व जैसा इनको अच्छा लगे वैसा अपने मन में बना लेते हैं। इस कल्पना-मूर्ति और वास्तविक स्त्री से संबंध होना चाहिए यह बात भी नहीं। प्राचीन काल के फ्रेंच नाइटों की तरह स्त्री-मित्रों का प्रत्येक काम करने के लिए शाह हर समय तत्पर रहते हैं।

श्री शाह की दृष्टि सीमित है। अपने से दो हाथ दूर जानेवाले व्यक्ति

को भी ये कदाचित् ही पहचान सकें। यह शारीरिक कारण शाह को कम दुःख नहीं देता और शाह के मानसिक भ्रम भी बहुत कुछ इसी से पैदा होते हैं। मनुष्य के भ्रम जितने अधिक बढ़ते हैं उतनी ही उनको नष्ट करने की संभावना कम होती जाती है और इस भ्रम से भरे हुए 'अपार संसार समुद्र मध्ये, निमज्जतो मां शरणम् किमस्ति।'*

शाह के स्वभाव में 'जर्नलीज्म' भरा हुआ है। और अनेक दुःखों का वह कारण होने पर भी शाह उसे छोड़ नहीं पाते। युनिवर्सिटी के प्रोफेसरों के विषय में इनकी धारणा है कि इनसे 'जर्नलीज्म' हो नहीं सकता और समाचार-पत्रों में लेख भी नहीं लिखे जा सकते। कहा जाता है कि युनिवर्सिटी में रहकर अंतिम घड़ी तक शाह ने इस नियम का पालन नहीं किया और परिणामस्वरूप शाह आज युनिवर्सिटी के प्रोफेसर पद पर नहीं हैं। सबसे पहले शाह को युनिवर्सिटी में से निकालने का मूल कारण यही था। शाह से अपने अभिप्राय प्रदर्शित किये बिना रहा नहीं जाता। 'क्रॉनीकल' के बहुत से संपादकीय और लेख शाह बिना नाम के ही लिखते हैं, इस बात में निहित सत्य आज कदाचित् ही किसी से छिपा हो। दूसरे बेलगाँववालों की मैत्री तथा 'बाम्बे क्रॉनीकल' के साथ इनका संबंध इनकी सत्ताकांक्षा को पोषित करने का एक साधन है। इससे शाह की यह धारणा है कि वह जिसे चाहें चढ़ा सकते हैं और जिसे चाहें गिरा सकते हैं। शाह से स्वयं तो ताज नहीं पहना जाता पर इनको 'किंग-मेकर' बनने की अदम्य लालसा है। 'वह पुतला बनायें और इनकी मरजी के अनुसार वह नाचे तो कैसा आनन्द आयेगा!' पर शाह का पुतला अधिकतर शाह की इच्छा के अनुसार नहीं नाचता। और जिसे शाह पुतला समझते हैं वह वास्तव में शाह को अपना हथियार बनाना चाहता है।

---

*इस संसार रूपी अपार समुद्र में डूबते हुए मुझको कहाँ शरण है?

शाह का अपने व्यक्तित्व के विषय में बहुत ऊँचा मत है। "I am a personality" यदि कोई भूल जाय तो उसे कह सुनाते हैं। 'And he is a personality of a kind' साधारण दुनिया में बहुत बार धोखा खाने के कारण इन्हें इस दुनिया पर बहुत विश्वास नहीं रहा फिर भी दुनिया का मोह इनसे नहीं छूटता। बहुधा कई दिनों तक इनकी आत्मा निराशा के गड्ढे में डुबकियाँ लगाती रहती है, और उस समय इस कठोर दुनिया में कहीं दूर चला जाने का मन होने लगता है। उस समय किसी आदमी का मुँह इन्हें अच्छा नहीं लगता और फिर भी कोई आकर इनको इस दशा से छुड़ा ले, यह चाहे बिना इनका मन नहीं रहता।

शाह में काम करने की शक्ति बहुत है और अपनी दुखी आत्मा का विश्राम वे काम में खोजते हैं। शाह को दुःख अनेक प्रकार के हैं। इनकी महत्वाकांक्षा को संतुष्ट करे ऐसा कोई महान् क्षेत्र इन्हें दिखाई नहीं देता, यह एक दुःख है। इनकी भावना-प्रधान आत्मा की आकांक्षाएँ सदैव अपूर्ण रहेंगी यह भान, इनको निराशा के गड्ढे में ढकेल दे इतना महान् दुःख है। अपूर्ण आकांक्षाओं और वासनाओं के भूत शाह के हृदय को व्यथित कर डालते हैं और इनकी जलती-भुनती, बावली बनी हुई आत्मा शांति खोजने के लिए नये-नये विषयों में डुबकी लगाती है और जहाँ इनका अंतर इनका पीछा न कर सके, ऐसे काम में इन्हें डूब जाना पड़ता है। पर विस्मृति की गंभीर शांति शाह के जीवन के लिए नहीं है। इनकी इच्छाओं के भूत सोते या जागते इनके सामने ही खड़े रहते हैं। फिर ये भूलें कैसे ?

शक्तिशाली मनुष्य की शक्ति व्यर्थ हो जाय, यह एक खेद का विषय है और फिर भी शाह की बहुत सी शक्तियाँ व्यर्थ चली जाती हैं इसमें किसी को शंका नहीं हो सकती। सच बात तो यह है कि इनकी मानवता को पूर्ण कर दे ऐसी इनके स्वप्नों की सुन्दरी इन्हें मिली नहीं, और

इसी कारण इनकी मानवता अधूरी रह गई है। घड़ीभर में अहंकारी और घमंडी, घड़ी भर में निराशामय, तो घड़ीभर में उदार और संकुचित, घड़ीभर में उग्र और घड़ीभर में माया से भरपूर, घड़ीभर में विद्वत्ता के भंडार और घड़ीभर में मूर्खता समझी जाय ऐसा पागलपन, ये सब बादल के विविध रंगों की तरह शाह के स्वभाव के विविध रंग हैं। इन्हें किसी में भी संतोष नहीं मिलता। इनके असंतोष की सीमा नहीं। इनकी कल्पना तीव्र है और देवदूतों तथा भूतों के दर्शन ये बारी-बारी से किया करते हैं। इन जैसे मनुष्य पर दया दिखाने का अधिकार किसी को नहीं, पर फिर भी इनका दुःख हृदय में दया जगाये बिना नहीं रहता।

शाह की बुद्धि सार-संग्रह करनेवाली है, नवीन का सृजन करनेवाली नहीं। विषयों का अभ्यास करनेवाली शक्ति विषयों को मस्तिष्क में रखने वाली शक्ति, विषयों का वर्गीकरण करनेवाली शक्ति इनमें बहुत है। किसी जादूगर के पिटारे की तरह बहुत सी सोची हुई चीजें इनके मस्तिष्क रूपी पिटारी में भरी होती हैं और कभी-कभी कोई बिना सोचे निकल भी आती हैं। ये बिना सोची हुई वस्तुएँ नवीन हैं, अनजान व्यक्ति को यह भी लगेगा, पर सच बात तो यह है कि शाह को अपने मस्तिष्क में बहुत सी आकर्षित वस्तुएँ इकट्ठी कर रखने की आदत है। शाह की पुस्तकें तथा शाह की बातचीत यह इस संग्रह के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। शाह जिनको अपनी सृजनात्मक कृतियाँ समझते हैं उन्हें साहित्य में स्थान नहीं मिला और इनमें भी जो अच्छी हैं वे संग्रहीत या दूसरी भाषाओं से अनूदित होती हैं, यह बात निर्विवाद है।

सृजन और संग्रह के बीच भेद इतना ही है कि पढ़े हुए विचार अन्न की तरह पच जायँ और उसके रक्त से नवीन साहित्य बने वह सृजन है और दूसरे गाँव से आया हुआ अन्न अपनी कोठी में रहे और उसे समय पर पकाकर एक नवीन वस्तु बना लें वह संग्रह है। पर इस

व्याख्या में मुझे बहुत श्रद्धा नहीं। जंगल के निवासी कच्चा अन्न खायँ और इसी अन्न का यदि एक नवीन स्वरूप किसी सुन्दर रसोई द्वारा बनावे तो क्या वह सृजन नहीं है ? पर शाह का सृजन तो इस प्रकार का भी नहीं। ये तो केवल संग्रह करते हैं, और योग्य स्थान पर उसका उपयोग करते हैं, उपयोग अच्छा कर सकते हैं इसी में इनके संग्रह की खूबी है।

शाह को अपने गौरव की बहुत अधिक चिंता है और स्वभाव झगड़ालू है। इसका कारण यह है कि गरीबी से इस स्थिति में आने तक अपने भविष्य का शाह ने स्वयं ही निर्माण किया है। अपनी स्थिति का ऐसा न हो कि कोई लाभ उठाकर उनके गौरव को ठेस पहुँचा दे। "इन सभी मूर्खों से मैं हजार गुना अधिक जानता हूँ, फिर किस लिए ये लोग इतना घमंड करते हैं ?" "ये लोग मुझे कहने वाले कौन होते हैं ?" ऐसे-ऐसे भावों ने इनके झगड़ालु स्वभाव को जन्म दिया है। स्वयं अपने पर और अपने मस्तिष्क पर इनको आवश्यकता से अधिक विश्वास है। लोगों की—साथ में काम करनेवालों की—मूर्खता देखकर ये अधीर हो जाते हैं और इनकी सलाह तथा महत्ता स्वीकृत करने से यदि कोई इन्कार कर दे तो फिर इनके क्रोध का पार नहीं रहता। इनके क्रोध में भी एक प्रकार की उच्छृङ्खलता है। छोटा बालक गुस्सा हो जाय और 'बस मुझे तो यह चाहिए ही।' वही बात शाह में भी है। यदि इनकी सोची हुई वस्तु न मिले या न हो तो यह इनके स्वभाव से नहीं सहा जाता; और उसमें भी यदि कहीं इनके गर्विष्ठ स्वभाव को आघात पहुँचा हो तो बस हो चुका! पागलपन और विद्वत्ता का एक अद्भुत मिश्रण शाह में है।

अच्छे और होशियार व्यक्ति हैं, पर मस्तिष्क का संतुलन नहीं। गुलाब में काँटा और कीचड़ में कमल ! आह ! इस संसार की ऐसी रचना क्यों हुई ?

३११

आर्थर रोड जेल,

१७-६-३०